॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥

जैनधर्मका-
-अहिंसातत्व ।

ट्रैक्ट नं०

लेखक—

मुनिश्री जिनविजयजी ।

(महावीरसे उद्धृत)

प्रकाशक—

मंत्री, श्री आत्मानन्द जैन ट्रैक्ट सोसायटी,
अम्बालाशहर ।

वीर स० २४५० आत्म स० २९

इस्वीसन १९२४ विक्रम स०

जैनधर्मका अहिंसातत्त्व।

जैनधर्मसे सब ही 'आचार' और 'विचार' एक मात्र 'अहिंसा' के तत्त्वपर रचे गये हैं। यों तो भारतके ब्राह्मण, बौद्ध आदि सभी प्रसिद्ध धर्मोंने अहिंसाको ' परम धर्म ' माना है और सभी ऋषि, मुनि, साधु संत इत्यादि उपदेष्टाओंने अहिंसाका महत्त्व और उपादेयत्व बतलाया है; तथापि इस तत्वको जितना विस्तृत, जितना सूक्ष्म, जितना गहन और जितना आचरणीय जैनधर्मने बनाया है, उतना अन्य किसीने नहीं। जैनधर्मके प्रवर्तकोंने अहिंसा तत्वको चरम सीमा तक पहुचा दिया है। उन्होंने केवल अहिंसाका कथन मात्र ही नहीं किया है परन्तु उसका आचरण भी वैसा ही कर दिखाया है। और और धर्मोंका अहिंसा तत्व केवल कायिक बनकर रह गया है, परन्तु जैनधर्मका अहिंसातत्व उससे बहुत कुछ आगे बढकर वाचिक और मानसिकसे भी पर-आत्मिक रूप बन गया है। औरोंकी अहिंसाको मर्यादा मनुष्य और उससे ज्यादह हुआ तो पशु-पक्षीके जगत् तक जाकर समाप्त हो जाती है, परन्तु जैनी अहिंसाकी कोई मर्यादा ही नहीं है। उसकी मर्यादामें सारी सचराचर जीव जाति समा जाती है और तो भी वह वैसी ही अमित रहती है। वह विश्वकी तरह अमर्याद-अनंत है और आकाशकी तरह सर्व पदार्थव्यापी है।

परन्तु जैनधर्मके इस महत् तत्वके यथार्थ रहस्यको समझनेके लिये बहुत ही थोड़े मनुष्योंने प्रयत्न किया है। जैनकी इस अहिंसाके बारेमें लोगोंमें बडी अज्ञानता और बेसमझी फैली हुई है। कोई इसे अव्यवहार्य बतलाता है तो कोई इसे अनाचरणीय

बतलाता है। कोई इसे आत्मघातिनी कहता है और कोई राष्ट्र-नाशिनी। कोई कहता है जैनधर्मकी अहिंसाने देशको पराधीन बना दिया है और कोई कहता है इसने प्रजाको निर्वीर्य बना दिया है। इस प्रकार जैनी अहिंसाके बारेमें अनेक मनुष्योंके अनेक कुविचार सुनाई देते हैं। कुछ वर्ष पहले देशभक्त पंजाब-केशरी लालाजी तकने भी एक ऐसा ही भ्रमात्मक विचार प्रका-शित कराया था, जिसमें महात्मा गांधीजी द्वारा प्रचारित अहिं-साके तत्वका विरोध किया था, और फिर जिसका समाधायक उत्तर स्वय महात्माजीने दिया था। लालाजी जैसे गहरे विद्वान और प्रसिद्ध देशनायक होकर तथा जैन साधुओंका पूरा परिचय रखकर भी जब इस अहिंसाके विषयमें वैसे भ्रान्त विचार रख सकते है तो फिर अन्य साधारण मनुष्योंकी तो बात ही क्या की जाय? हाल ही में—कुछ दिन पहले—जी. के. नरीमान नामक एक पारसी विद्वान्‌ने महात्मा गांधीजीको सम्बोधनकर एक लेख लिखा है, जिसमें उन्होंने जैनोंकी अहिंसाके विषयमें ऐसे ही भ्रमपूर्ण उद्गार प्रकट किये हैं। मि. नरीमान एक अच्छे ओरि-एन्टल स्कॉलर हैं, और उनको जैन साहित्य तथा जैन विद्वानोंका कुछ परिचय भी मालूम देता है। जैनधर्मसे परिचित और पुरा-तन इतिहाससे अभिज्ञ विद्वानोंके मुंहसे जब ऐसे अविचारित उद्-गार सुनाई देते हैं, तब साधारण मनुष्योंके मनमें उक्त प्रकारकी भ्रांतिका ठस जाना साहजिक है। इसलिये हम यहां पर संक्षेपमें आज जैनधर्मकी अहिंसाके बारेमें जो उक्त प्रकारकी भ्रांतियां जनसमाजमें फैली हुई है, उनका मिथ्यापन दिखाते हैं।

जैनी अहिंसाके विषयमें पहला आक्षेप यह किया जाता है कि जैनधर्मके प्रवर्तकोंने अहिंसाकी मर्यादाको इतनी लम्बी और इतनी विस्तृत बना दी है कि, जिससे लगभग वह अव्यवहार्यकी कोटिमें जा पहुंची है। जो कोई इस अहिंसाका पूर्णरूपसे पालन करना चाहे तो उसे अपनी समग्र जीवनक्रियायें बंध करनी होंगी और निश्चेष्ट होकर देहत्याग करना होगा। जीवनव्यवहारको चालू रखना और इस अहिंसाका पालन भी करना, ये दोनों बातें परस्पर विरुद्ध हैं। अतः इस अहिंसाके पालनका मतलब आत्म-घात करना है; इत्यादि।

यद्यपि इसमें कोई शक नहीं है कि-जैन अहिंसाकी मर्यादा बहुत ही विस्तृत है और इसलिये उसका पालन करना सबके लिये बहुत ही कठिन है। तथापि यह सर्वथा अव्यवहार्य है या आत्मघातक है, इस कथनमें किंचित् भी तथ्य नहीं है न यह अव्यवहार्य ही है और न आत्मघातक ही। यह बात तो सब कोई स्वीकारते और मानते है कि, इस अहिसा तत्त्वके प्रवर्तकोंने इसका आचरण अपने जीवनमें पूर्णरूपसे किया था। वे इसका पूर्णतया पालन करते हुए भी वर्षोंतक जीवित रहे और जगत्को अपना परम तत्त्व समझाते रहे। उनके उपदेशानुसार अन्य असंख्य मनुष्योंने आज तक इस तत्त्वका यथार्थ पालन किया है, परंतु किसीको आत्मघात करनेका काम नहीं पड़ा। इसलिये यह बात तो सर्वानुभवसिद्ध जैसी है कि जैन अहिंसा अव्यवहार्य भी नहीं है और इसका पालन करनेके लिये आत्माघातकी भी आवश्यकता नहीं है। यह विचार तो वैसा ही है जैसा कि महात्मा गांधीजीने

देशके उद्धार निमित्त जब असहयोगकी योजना उद्घोषित की, तब अनेक विद्वान और नेता कहलानेवाले मनुष्योंने उनकी इस योजनाको अव्यवहार्य और राष्ट्रनाशक बतानेकी बड़ी लंबी लंबी बातें की थीं और जनताको उनसे सावधान रहनेकी हिदायत दी थी। परंतु अनुभव और आचरणसे यह अब निस्संदेह सिद्ध हो गया कि न असहयोगकी योजना न अव्यवहार्य ही है और न राष्ट्र नाशक ही। हां जो अपने स्वार्थका भोग देनेके लिये तैयार नहीं और अपने सुखोंका त्याग करनेको तत्पर नहीं उनके लिये ये दोनों बातें अवश्य अव्यवहार्य हैं; इसमें कोई संदेह नहीं है। आत्मा या राष्ट्रका उद्धार बिना स्वार्थत्याग और सुख परिहारके कभी नहीं होता। राष्ट्रको स्वतन्त्र और सुखी बनानेके लिये जैसे सर्वस्व अर्पणकी आवश्यकता है वैसे ही आत्माको आधिव्याधि उपाधिसे स्वतंत्र और दुःख द्वंद्वसे निर्मुक्त बनानेके लिये भी सर्व मायिक सुखोंके बलिदान करदेनेकी आवश्यकता है। इस लिये जो "मुमुक्षु" (बंधनोंसे मुक्त होनेकी इच्छा रखनेवाला) है—राष्ट्र और आत्माके उद्धारका इच्छुक है उसे तो यह जैन अहिंसा कभी भी अव्यवहार्य या आत्मनाशक नहीं मालूम देगी परन्तु स्वार्थलोलुप और सुखैषी जीवोंकी बात अलग है।

जैन धर्मकी अहिंसा पर दूसरा परतु बड़ा आक्षेप यह किया जाता है कि–इस अहिंसाके प्रचारने भारतको पराधीन और प्रजाको निर्वीर्य बना दिया है। इस आक्षेपके करनेवालोंका मत है कि अहिंसाके प्रचारसे लोकोंमें शौर्य नहीं रहा, क्योंकि अहिंसा-जन्य पापसे डरकर लोगोंने मांस भक्षण छोड़ दिया; और बिना मांस

भक्षणके शरीरमें बल और मनमें शौर्य नहीं पैदा होता। इसलिये प्रजाके दिलमेंसे युद्धकी भावना नष्ट होगई और उसके कारण विदेशी और विधर्मी लोकोंने भारतपर आक्रमणकर उसे अपने आधीन बना लिया। इस प्रकार अहिंसाके प्रचारसे देश पराधीन और प्रजा पराक्रमशून्य होगई"।

अहिंसाके बारेमें की गई यह कल्पना नितान्त युक्तिशून्य और सत्यसे पराङ्मुख है। इस कल्पनाके मूलमें बड़ी भारी अज्ञानता और अनुभवशून्यता रही हुई है। जो यह विचार प्रदर्शित करते है उनको न तो भारतके प्राचीन इतिहासका पता होना चाहिए और न जगतके मानव समाजकी परिस्थतिका ज्ञान होना चाहिए। भारतकी पराधीनताका कारण अहिंसा नहीं है परन्तु भारतकी अकर्मण्यता, अज्ञानता और असहिष्णुता है और इन सबका मूल हिंसा है! भारतका पुरातन इतिहास प्रगट रूपसे बतला रहा है कि जब तक भारतमें अहिंसाप्रधान धर्मोका अभ्युदय रहा तब तक प्रजामें शांति, शौर्य, सुख और संतोष यथेष्ट व्याप्त थे। अहिंसा धर्मके महान् उपासक और प्रचारक नृपति मौर्य, सम्राट् चद्रगुप्त और अशोक थे; क्या इनके समयमें भारत पराधीन हुआ था? अहिंसा धर्मके कट्टर अनुयायी दक्षिणके कदंब, पल्लव और चौलुक्य वंशोंके प्रसिद्ध प्रसिद्ध महाराजा थे; क्या उनके राजत्वकालमें किसी परचक्रने आकर भारतको सताया था? अहिंसा तत्वका अनुयायी चक्रवर्ती सम्राट् श्रीहर्ष था, क्या उसके समयमें भारतको किसीने पददलित किया था? अहिंसा मतका पालन करनेवाला दक्षिणका राष्ट्रकूट वंशीय नृपति अमोघवर्ष और

गुजरातका चालुक्य वंशीय प्रजापति कुमारपाल था; क्या इनकी अहिंसोपासनासे देशकी स्वतंत्रता नष्ट हुई थी ? इतिहास तो साक्षी दे रहा है कि भारत इन राजाओंके राजत्व कालमें अभ्यु-दयके शिखर पर पहुंचा था। जब तक भारतमें बौद्ध और जैन धर्मका जोर था और जब तक ये धर्म राष्ट्रीय धर्म कहलाते थे तब तक भारतमें स्वतंत्रता, शांति, संपत्ति इत्यादि पूर्ण रूपसे विराजित थी। अहिंसाके इन परम उपासक नृपतियोंने अहिंसा धर्मका पालन करते हुए भी अनेक युद्ध किये, अनेक शत्रुओंको पराजित किये और अनेक दुष्टजनोंको दण्डित किये। इनकी अहिंसोपास-नाने न देशको पराधीन बनाया और न प्रजाको निर्वीर्य बनाया। जिनको गुजरात और राजपूतानेके इतिहासका थोडा बहुत भी वास्तविक ज्ञान है वे जान सकते हैं कि इन देशोंको स्वतंत्र, समुन्नत और सुरक्षित रखनेके लिये जैनोंने कैसे कैसे पराक्रम किये थे। जिस समय गुजरातका राज्यकार्यभार जैनोंके अधीन था— महामात्य, मत्री, सेनापति, कोषाध्यक्ष आदि बडे बडे अधिकारपद जैनोंके आधीन थे, उस समय गुजरातका ऐश्वर्य उन्नतिकी चरम सीमापर चढा हुआ था। गुजरातके सिंहासनका तेज दिगूदिगंत व्यापी था। गुजरातके इतिहासमें दंडनायक विमलशाहा, मंत्री मुंजाल, मंत्री शांतु, महामात्य उदयन और बाहड, वस्तुपाल और तेजपाल; आभू और जगडू, इत्यादि जैन राजद्वारी पुरुषोंको जो स्थान है वह औरोंको नहीं है। केवल गुजरात हीके इति नहीं परन्तु समूचे भारतके इतिहासमें भी इन ।। परमोपासकोंके पराक्रमकी तुलना रखनेवाले पुरुष बहुत

जिस धर्मके परम अनुयायी स्वयं ऐसे शूरवीर और पराक्रमशाली थे और जिन्होंने अपने पुरुषार्थसे देश और राज्यको खूब समृद्ध और सत्वशील बनाया था; उस धर्मके प्रचारसे देशकी या प्रजाकी अधोगति कैसे हो सकती है ? देशकी पराधीनता या प्रजाकी निर्वीर्यतामें कारणभूत 'अहिंसा' कभी नहीं हो सकती। जिन देशोंमें 'हिंसा' का खूब प्रचार है, जो अहिंसाका नाम तक नहीं जानते हैं, एक मात्र मांस ही जिनका शास्वत भक्षण है और पशुसे भी जो अधिक क्रूर होते हैं क्या वे सदैव स्वतंत्र बने रहते हैं। रोमन साम्राज्यने किस दिन अहिंसाका नाम सुना था? और मांस भक्षण छोड़ा था ? फिर क्यों उसका नाम संसारसे उठ गया। तुर्क प्रजामेंसे कब हिंसाभाव नष्ट हुआ और क्रूरताका लोप हुआ ? फिर क्यों उसके साम्राज्यकी आज यह दीन दशा हो रही है ? आयर्लेण्डमें कब अहिंसाकी उद्घोषणा की गई थी ? फिर क्यों वह आज शताब्दियोंसे स्वाधीन होनेके लिये तडफडा रहा है ? दूसरे देशोंकी बात जाने दीजिए, खुद भारत हीके उदाहरण लीजिए। मुगल साम्राज्यके चालकोंने कब अहिंसाकी उपासना की थी जिससे उनका प्रभुत्व नामशेष हो गया और उसके विरुद्ध पेशवाओंने कब मांस भक्षण किया था जिससे उनमें एकदम वीरत्वका वेग उमड आया। इससे स्पष्ट है कि देशकी राजनैतिक उन्नति-अवनतिमें हिंसा-अहिंसा कोई कारण नहीं है। इसमें तो कारण केवल राजकर्ताओंकी कार्यदक्षता और कर्तव्यपरायणता ही मुख्य है।

हां, प्रजाकी नैतिक उन्नति-अवनतिमें तत्त्वतः अहिंसा-हिंसा

अवश्य कारणभूत होती है। अहिंसाकी भावनासे प्रजामें सात्विक वृत्ति खिलती है और जहां सात्विक वृत्तिका विकास है वहां सत्वका निवास है। सत्वशाली प्रजा हीका जीवन श्रेष्ठ और उच्च समझा जाता है इससे विपरीत सत्त्वहीन जीवन कनिष्ट और नीच गिना जाता है। जिस प्रजामें सत्व नहीं वहां, संपत्ति, स्वतंत्रता आदि कुछ नहीं! इस लिये प्रजाकी नैतिक उन्नतिमें अहिंसा एक प्रधान कारण है। नैतिक उन्नतिके मुकाबलेमें भौतिक प्रगतिको कोई स्थान नहीं है और इसी विचारसे भारतवर्षके पुरातन ऋषि-मुनियोंने अपनी प्रजाको शुद्ध नीतिमान बनने हीका सर्वाधिक सदुपदेश दिया है। युरोपकी प्रजाने नैतिक उन्नतिको गौणकर भौतिक प्रगतिकी ओर जो आंख मींचकर दौडना शुरू किया था उसका कटु परिणाम आज सारा संसार भोग रहा है। संसारमें यदि सच्ची शांति और वास्तविक स्वतंत्रताके स्थापित होनेकी आवश्यकता है तो मनुष्योंको शुद्ध नीतिमान बनना चाहिए।

शुद्ध नीतिमान् वही बन सकता है जो अहिंसाके तत्वको ठीक ठीक समझकर उसका पालन करता है। अहिंसा शांति, शक्ति, शुचिता, दया, प्रेम, क्षमा, सहिष्णुता, निर्लोभता इत्यादि सर्व प्रकारके सद्गुणोंकी जननी है। अहिंसाके आचरणसे मनुष्यके हृदयमें पवित्र भावोंका संचार होता है, वैर विरोधकी भावना नष्ट होती है और सबके साथ बंधुत्वका नाता जुडता है। जिस प्रजामें ये भाव खिलते हैं वहां ऐक्यका साम्राज्य होता है और एकता ही आज हमारे देशके अभ्युदय और स्वातंत्र्यका मूल बीज है। इस लिये अहिंसा यह देशकी अवनतिका कारण

नहीं है परन्तु उन्नतिका एकमात्र और अमोघ साधन है।

'हिंसा' शब्द हननार्थक 'हिंसि' धातुपरसे बना है इस लिए 'हिंसा' का अर्थ होता है, किसी प्राणीको हनना या मारना। भारतीय ऋषि-मुनियोंने हिंसाकी स्पष्ट व्याख्या इस प्रकार की है–' प्राणवियोगप्रयोजनव्यापारः ' अथवा ' प्राणिदुःखसाधनव्यापारो हिंसा अर्थात् प्राणीके प्राणका वियोग करनेके लिये अथवा प्राणीको दुःख देनेके लिये जो प्रयत्न किया उसका नाम हिंसा है। इसके विपरीत–किसी भी जीवको दुःख या कष्ट न पहुंचाना अहिंसा है। ' पातंजल ' योगसूत्रके भाष्यकार महर्षि व्यासने 'अहिंसा' का लक्षण यह किया है–'सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानामनभिद्रोहः–अहिंसा' अर्थात् सब तरहसे, सर्व समयमें, सभी प्राणियोंके साथ अद्रोह भावसे बर्तना–प्रेमभाव रखना उसका नाम अहिंसा है। इसी अर्थको विशेष स्पष्ट करनेके लिये ईश्वरगीता में लिखा है कि—

> कर्मणा मनसा वाचा सर्वभूतेषु सर्वदा
> अक्लेशजननं प्रोक्ता अहिंसा परमर्षिभिः।

अर्थात्–मन, वचन और कर्मसे सर्वदा किसी भी प्राणीको क्लेश नहीं पहुंचानेका नाम महर्षियोंने ' अहिंसा ' कहा है। इस प्रकारकी अहिंसाके पालनकी क्या आवश्यक्ता है। इसके लिये आचार्य हेमचन्द्रने कहा है कि—

> आत्मवत् सर्वभूतेषु सुखदुःखे प्रियाप्रिये।
> चिन्तयन्नात्मनोऽनिष्टां हिंसामन्यस्य नाचरेत॥

अर्थात्—जैसे अपनी आत्माको सुख प्रिय लगता है और दुःख अप्रिय लगता है, वैसे ही सब प्राणियोंको लगता है। इस लिये अपनी आत्माके समान अन्य आत्माओंके प्रति भी अनिष्ट ऐसी हिंसाका आचरण कभी नहीं करना चाहिये। यही बात स्वयं श्रमणभगवान् श्री महावीरने भी इस प्रकार कही है—

" सव्वे पाणा पिया, सुहसाया, दुहपडिकूला, अप्पिय वहा, पियजीविणो, जीविउकामा। (तम्हा) णातिवाएज्ज किंचणं।"

अर्थात्—सर्व प्राणियोंको आयुष्य प्रिय है, सब सुखके अभिलाषी है, दुःख सबको प्रतिकूल है, वध सबको अप्रिय है, जीवित सभीको प्रिय लगता है—सभी जीनेकी इच्छा रखते हैं। इसलिये किसीको मारना या कष्ट न देना चाहिए। अहिंसाके आचरणकी आवश्यकताके लिये इससे बढकर और कोई दलील नहीं है—और कोई दलील हो ही नहीं सकती।

परन्तु यहांपर एक प्रश्न यह उपस्थित होता है कि, इस प्रकारकी अहिंसाका पालन सभी मनुष्य किस तरह कर सकते हैं। क्योंकि जैसा कि शास्त्रोंमें कहा है—

जले जीवाः स्थले जीवा जीवाः पर्वतमस्तके।
ज्वालमालाकुले जीवाः सर्वं जीवमयं जगत्॥

अर्थात् जलमें, स्थलमें, पर्वतमें, अग्निमें इत्यादि सब जगह जीव भरे हुए है—सारा जगत जीवमय है। इसलिये मनुष्यके प्रत्येक व्यवहारमें—खानमें, पानमें, चलनेमें, बैठनेमें, व्यापारमें, विहारमें इत्यादि सब प्रकारके व्यवहारमें—जीवहिंसा होती है। विना हिंसाके कोई भी प्रवृत्ति नहीं की जासकती। अतः इस प्रकारकी सपूण

अहिंसाके पालन करनेका अर्थ तो यह हो सकता है कि मनुष्य अपनी सभी जीवन क्रियाओंको बन्धकर, योगीके समान समाधिस्थ हो इस नरदेहका बलात् नाश कर दे। ऐसा करनेके सिवाय, अहिंसाका भी पालन करना और जीवनको भी बचाये रखना, यह तो आकाश-कुसुमकी गन्धकी अभिलाषाके समान ही निरर्थक और निर्विचार है। अतः पूर्ण अहिंसा यह केवल विचारका ही विषय हो सकता है, आचारका नहीं।

यह प्रश्न यथार्थ है। इस प्रश्नका समाधान अहिंसाके भेद और अधिकारीका निरूपण करनेसे होगा। इसलिये प्रथम अहिंसाके भेद बतलाये जाते हैं। जैनशास्त्रकारोंने अहिंसाके अनेक प्रकार बतलाये हैं; जैसे स्थूल अहिंसा; और सुक्ष्म अहिंसा; द्रव्य अहिंसा और भाव अहिंसा; स्वरूप अहिंसा और परमार्थ अहिंसा; देश अहिंसा और सर्व अहिंसा; इत्यादि किसी भी चलते फिरते प्राणी या जीवको जीजानसे न मारनेकी प्रतिज्ञाका नाम स्थूल अहिंसा है, और सर्व प्रकारके प्राणियोंको सब तरहसे क्लेश न पहुंचानेके आचरणका नाम सुक्ष्म अहिंसा है। किसी भी जीवको अपने शरीरसे दुःख न देनेका नाम द्रव्य अहिंसा है और सब आत्माओंके कल्याणकी कामनाका नाम भाव अहिंसा है। यही बात स्वरूप और परमार्थ अहिंसाके बारेमें भी कही जासकती है। किसी अंशमें अहिंसाका पालन करना देश अहिंसा कहलाती है और सर्व प्रकार-संपूर्णतया अहिंसाका पालन करना सर्व अहिंसा कहलाती है।

यद्यपि आत्माको अमरत्वकी प्राप्तिके लिये और संसारके सर्व बचनोंसे मुक्त होनेके लिये अहिंसाका संपूर्ण रूपसे आचरण

करना परमावश्यक है। बिना वैसा किये मुक्ति कदापि नहीं मिल सकती। तथापि संसारनिवासी सभी मनुष्योंमें एकदम ऐसी पूर्ण अहिंसाके पालन करनेकी शक्ति और योग्यता नहीं आसकती इसीलिये न्यूनाधिक शक्ति और योग्यतावाले मनुष्योंके लिये उपर्युक्त रीतिसे तत्वज्ञोंने अहिंसाके भेद कर क्रमशः इस विषयमें मनुष्यको उन्नत होनेकी सुविधा बतलादी है। अहिंसाके इन भेदोंके कारण उसके अधिकारियोंमें भेद कर दिया गया है। जो मनुष्य अहिंसाका संपूर्णतया पालन नहीं कर सकते, वे गृहस्थ-श्रावक-उपासक-अणुव्रती-देशव्रती इत्यादि कहलाते हैं। जब तक जिस मनुष्यमें संसारके सब प्रकारके मोह और प्रलोभनको सर्वथा छोड़ देनेकी जितनी आत्मशक्ति प्रगट नहीं होती तबतक वह संसारमें रहा हुआ और अपना गृहव्यवहार चलाता हुआ धीरे धीरे अहिंसाव्रतके पालनमें उन्नति करता चला जाय। जहां-तक हो सके वह अपने स्वार्थोंको कम करता जाय और निजी स्वार्थके लिये प्राणियोंके प्रति मारनताडन-छेदन-आक्रोशन आदि क्लेशजनक व्यवहारोंका परिहार करता जाय। ऐसे गृहस्थके लिये कुटुम्ब देश या धर्मके रक्षणके निमित्त यदि स्थूल हिंसा करनी पड़े तो उसे अपने व्रतमें कोई हानि नहीं पहुंचती। क्योंकि जब-तक वह गृहस्थी लेकर बैठा है तब तक समाज, देश और धर्मका यथाशक्ति रक्षण करना यह उसका परम कर्तव्य है। यदि किसी भ्रांतिवश वह अपने कर्तव्यसे भ्रष्ट होता है तो उसका नैतिक अधःपात होता है, और नैतिक अधःपात यह एक सूक्ष्म हिं है। क्योंकि इससे आत्माकी उच्चवृत्तिका हनन होता है। अहिं

धर्मके उपासकके लिये निजी स्वार्थ—निजी लोभके निमित्त स्थूल हिंसाका त्याग पूर्ण आवश्यक है। जो मनुष्य अपनी विषय-तृष्णाकी पूर्तिके लिये स्थूल प्राणियोंको क्लेश पहुंचाता है, वह कभी किसी प्रकार अहिंसाधर्मी नहीं कहलाता। अहिंसक गृहस्थके लिये यदि हिंसा कर्तव्य है तो वह केवल परार्थक है। इस सिद्धांतसे विचारक समझ सकते हैं कि, अहिंसाव्रतका पालन करता हुआ, भी गृहस्थ अपने समाज और देशका रक्षण करनेके लिये युद्ध कर सकता है—लड़ाई लड सकता है। इस विषयकी सत्यताके लिये हम यहांपर ऐतिहासिक प्रमाण भी दे देते हैं—

गुजरातके अंतिम चौलुक्य नृपति दूसरे भीम (जिसको भोला भीम भी कहते है) के समयमें, एक दफह उसकी राजधानी अणहिलपुर पर मुसलमानोंका हमला हुआ। राजा उस समय राजधानीमें हाजर न था—केवल राणी मौजूद थी। मुसलमानोंके हमलेसे शहरका संरक्षण कैसे करना इसकी सब अधिकारियोंको बड़ी चिन्ता हुई। दंडनायक (सेनाधिपति) के पद पर उस समय एक आभु नामक श्रीमालिक वणिक श्रावक था। वह अपने अधिकार पर नया ही आया हुआ था, और साथमें वह बड़ा धर्माचरणी पुरुष था। इसलिये उसके युद्धविषयक सामर्थ्यके बारेमें किसीको निश्चित विश्वास नहीं था। इधर एक तो राजा स्वयं अनुपस्थित था, दूसरा राज्यमें कोई वैसा अन्य पराक्रमी पुरुष न था, और तीसरा, न राज्यमें यथेष्ट सैन्य ही था। इस लिये राणीको बडी चिन्ता हुई। उसने किसी विश्वस्त और योग्य मनुष्यके पाससे दंडनायक आभुकी क्षमताका कुछ हाल जानकर स्वयं

उसे अपने पास बुलाया और नगर पर आई हुई आपत्तिके सम्बन्धमें क्या उपाय किया जाय इसकी सलाह पूछी। तब दंडनायकने कहा कि यदि महाराणीका मुझ पर विश्वास हो और युद्ध संबंधी पूरी सत्ता मुझे सौंप दी जाय तो मुझे श्रद्धा है कि मैं अपने देशको शत्रुके हाथसे बालबाल बचा लूंगा। आभूके इस तरह उत्साहजनक कथनको सुनकर राणी खुश हुई और युद्ध सम्बन्धी संपूर्ण सत्ता उसको देकर युद्धकी घोषणा कर दी। दंडनायक आभुने उसी क्षण सैनिक सघटनकर लढाईके मैदानमें डेरा किया। दूसरे दिन प्रातःकालसे युद्ध शुरू होनेवाला था। पहले दिन अपनी सेनाका जमाव करते करते उसे संध्या होगई। वह व्रतधारी श्रावक था इसलिये प्रतिदिन उभय काल प्रतिक्रमण करनेका उसको नियम था। संध्याके पड़ने पर प्रतिक्रमणका समय हुआ देख उसने कहीं एकांतमें जाकर वैसा करनेका विचार किया। परंतु उसी क्षण मालूम हुआ कि उस समय उसका वहांसे अन्यत्र जाना इच्छित कार्यमें विघ्नकर था, इसलिये उसने वहीं हाथीके होदे पर बैठ ही बैठे एकाग्रतापूर्वक प्रतिक्रमण करना शुरू कर दिया। जब वह प्रतिक्रमणमें आनेवाले—"जे मे जीवा विराहिया—एगिंदिया—वेइंदिया" इत्यादि पाठका उच्चारण करता था तब किसी सैनिकने उसे सुनकर किसी अन्य अफसरसे कहा कि—देखिए जनाब हमारे सेनाधिपति साहब तो इस लढ़ाईके मैदानमें भी—जहां पर शस्त्रास्त्रकी झनाझन हो रही है मारो मारोकी पुकारें बुलाई जा रही हैं वहाँ—एगिंदिया वेइंदिया कर रहे हैं। नरम नरम सीरा खानेवाले ये श्रावक साहब क्या बहादुरी बतायेंगे?

धीरे धीरे यह बात ठेठ रानीके कान तक पहुंची। वह यह सुनकर बहुत संदिग्ध हुई परन्तु उस समय अन्य कोई विचार करनेका नहीं था, इसलिये भावीके ऊपर आधार रखकर वह मौन रही। दूसरे दिन प्रातःकाल ही से युद्धका प्रारम्भ हुआ। योग्य संधि पाकर दण्डनायक आभूने इस शौर्य और चातुर्यसे शत्रु पर आक्रमण किया कि जिससे क्षणभरमें शत्रुके सैन्यका भारी संहार होगया और उसके नायकने अपने शस्त्र नीचे रखकर युद्ध बन्ध करनेकी प्रार्थना की। आभूका इस प्रकार विजय हुआ देखकर अणहिलपुरकी प्रजामें जय जयका आनंद फैल गया। राणीने बड़े सम्मानपूर्वक उसका स्वागत किया और फिर बड़ा दरबार करके राजा और प्रजाकी तरफसे उसे योग्य मान दिया गया। उस समय हँसकर राणीने दंडनायकसे कहा कि—सेनाधिपति, जब युद्धकी व्यूह रचना करते करते बीच ही में आप—" एगिंदिया बेइंदिया " बोलने लग गये तब तो आपके सैनिकोंको ही यह सदेह होगया था कि, आपके जैसा धर्मशील और अहिंसाप्रिय पुरुष मुसलमानों जैसोंके साथ लड़नेवाले इस क्रूर कार्यमें कैसे धैर्य रख सकेगा। परन्तु आपकी वीरताको देखकर सबको आश्चर्य निमग्न होना पड़ा है। यह सुनकर कर्तव्यदक्ष उस दंडनायकने कहा कि—महाराणि, मेरा जो अहिंसाव्रत है, वह मेरी आत्माके साथ संबंध रखता है। मैंने जो " एगिंदिया बेइंदिया " के वध न करनेका नियम लिया है वह अपने स्वार्थकी अपेक्षासे है। देशकी रक्षाके लिये और राज्यकी आज्ञाके लिये यदि मुझे वध कर्मकी आवश्यकता पड़े तो वैसा करना मेरा कर्तव्य है। मेरा शरीर यह राष्ट्रकी

संपत्ति है। इसलिये राष्ट्रकी आज्ञा और आवश्यकतानुसार उसका उपयोग होना ही चाहिए। शरीरस्थ आत्मा या मन मेरी निजी संपत्ति है उसे स्वार्थीय हिंसाभावसे अलिप्त रखना यही मेरे अहिंसाव्रतका लक्षण है। इत्यादि इस ऐतिहासिक और रसिक उदाहरणसे विज्ञ पाठक भली भांति समझ सकेंगे कि, जैन गृहस्थके पालने योग्य अहिंसाव्रतका यथार्थ स्वरूप क्या है?

सर्व-अहिंसा और उसके अधिकारी।

जो मनुष्य अहिंसाव्रतका पूर्ण रूपसे पालन करते हैं वे यति मुनि-भिक्षु श्रमण संन्यासी महाव्रती इत्यादि शब्दोंसे संबोधे जाते है। वे संसारके सब कामोंसे दूर और अलिप्त रहते है। उनका कर्तव्य केवल निजका आत्मकल्याण करना और जो मुमुक्षु उनके पास आवे उसको आत्मकल्याणका मार्ग बताना है। विषय विकार और कषायभावसे उनका आत्मा ऊपर रहता है। जगतके सभो प्राणी उनके लिये आत्मवत् हैं—यह मैं और यह दूसरा, इस प्रकारका द्वैत-भाव उनके हृदयमेंसे नष्ट होजाता है। उनके मन, वचन और कर्म तीनों एकरूप होते हैं। सुख दुःख या हर्ष शोक उनके मनमें एक ही स्वरूप दिखाई देते है। जो पुरुष इस प्रकारकी स्वरूपावस्थाको प्राप्त कर लेता है वही महाव्रती है, और उसीसे अहिंसाका सर्वतः पालन किया जासकता है। ऐसे महाव्रतीके लिये न स्व-अर्थ हिंसा कर्तव्य है और परार्थ। वह स्थूल या सूक्ष्म सभी प्रकारकी हिंसासे मुक्त रहता है।

यहां पर यह एक प्रश्न होता है कि, क्या इस प्रकारके जो महाव्रती होते हैं वे खाते पीते या चलते बैठते हैं कि नहीं ? अगर वे वैसा करते हैं तो फिर वे अहिंसाका सर्वतः पालन करनेवाले कैसे कहे जा सकते हैं ? क्योंकि खाने पीने या चलने बैठनेमें भी तो जीव हिंसा होती ही है।

इसका समाधान यह है कि—यद्यपि यह बात सही है कि, इन महाव्रतियोंसे भी उक्त क्रियायोंके करनेमें सूक्ष्म प्रकारकी जीवहिंसा होती रहती है; परंतु उनकी उच्च मनोदशाके कारण उनको उस [illegible]-जन्य पापका स्पर्श बिलकुल नहीं होता और इस लिये उनका [illegible]त्मा इस पाप बंधनसे मुक्त ही रहता है। जब तक मनुष्यका आत्मा इस स्थूल शरीरमें अधिष्ठाता होकर वास करता रहता है तब तक इस शरीरसे वैसी सूक्ष्म हिंसाका होना अनिवार्य है। परन्तु उस हिंसामें आत्माका किसी प्रकारका संकल्प विकल्प न होनेसे वह उससे अलिप्त ही रहता है। महाव्रतियोंके शरीरसे होनेवाली यह हिंसा द्रव्यहिंसा या स्वरूप हिंसा कहलाती है; भाव-हिंसा या परमार्थ-हिंसा नहीं, क्योंकि इस हिंसामें आत्माका कोई हिंसक-भाव नहीं है। हिंसा-जन्य पापसे वही आत्मा बद्ध होता है जो हिंसक भावसे हिंसा करता है। जैनोंके तत्त्वार्थसूत्रमें हिंसाका लक्षण बताते हुए यह लिखा है कि—

'प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा।'

अर्थात्—प्रमत्तभावसे जो प्राणियोंके प्राणका नाश किया जाता है वह हिंसा है। प्रमत्तभावका तात्पर्य है कि विषय कषाययुक्त

होकर, जो जीव विषय कषायके वश होकर किसी भी प्राणीको दुख या कष्ट पहुंचाता है वह हिंसाके पापका बन्धन करता है। इस हिंसाकी व्याप्ति केवल शरीरसे कष्ट पहुंचाने तक ही नहीं है परंतु बचनसे वैसा उच्चारण और मनसे वैसा चिन्तन करने तक है। जो विषय-कषायके वश हो होकर दुसरोंके लिये अनिष्ट भाषण या अनिष्ट चिन्तन करता है वह भी भाव हिंसा या परमार्थ हिंसा करता है। और इसके विपरीत, जो विषय-कषायसे विरक्त है, उससे यदि कभी किसी प्रकारकी हिंसा हो भी गई तो उसकी वह हिंसा परमार्थसे हिंसा नहीं है। एक व्यवहारिक उदाहरणसे इसका स्वरुप स्पष्ट समझमें आजायगा।

एक पिता अपने पुत्रकी या गुरु अपने शिष्यकी किसी बुरी प्रवृत्तिसे रुष्ट होकर उसके कल्याणके लिये कठोर बचनसे या शरीरसे उसकी ताडना करता है, तो वह पिता या गुरु लोकदृष्टिमें कोई निन्दनीय या दण्डनीय नहीं समझा जाता, क्योंकि पिता या गुरुका वह व्यवहार द्वेष-जन्य नहीं है। उस व्यवहारमें सद्बुद्धि रही हुई है। इसके विपरीत जो कोई मनुष्य द्वेषवश होकर किसी मनुष्यको गाली गलोच या मारपीट करता है, तो वह राज्य या समाजकी दृष्टिमें दण्डनीय और निन्दनीय समझा जाता है, क्योंकि वैसा व्यवहार करनेमें उसका आशय दुष्ट है। यद्यपि इन दोनों प्रकारके व्यवहारोंका बाह्य स्वरूप समान ही है तथापि आशय भेदसे उनके भीतरीरूपमें बड़ा भेद है। इसी प्रकारका भेद द्रव्य और भाव हिंसादिके स्वरूपमें समझना चाहिए।

वास्तवमें हिंसा और अहिंसाका रहस्य मनुष्यकी भावनाओं पर अवलम्बित है। किसी भी कर्म या कार्यके शुभाशुभ बन्धनका आधार कर्ताके मनोभाव ऊपर है। मनुष्य जिस भावसे जो कर्म करता है, उसी अनुसार उसे फल मिलता है। कर्मका शुभाशुभपना उसके स्वरूपमें नहीं रहा हुआ है, किन्तु कर्ताके विचारमें रहा हुआ है। जिस कर्मके करनेमें कर्ताका विचार शुभ है, वह शुभ कर्म कहलाता है और जिस कर्मके करनेमें कर्ताका विचार अशुभ है वह अशुभ कर्म कहलाता है। एक डॉक्टर किसी मनुष्यको शस्त्रक्रिया करनेके लिये जो क्लोरोफॉर्म सुंघाकर वेहोश बनाता है उसमें और एक चोर या खूनी किसी मनुष्यको धन या जीवित हरन करनेके लिये जो क्लोरोफॉर्म सुंघाकर, वेहोश करता है उसमें कर्मकी—क्रियाकी दृष्टिसे किंचित् भी फरक नहीं है, परन्तु फलकी दृष्टिसे जब देखा जाता है, तब डॉक्टरको बडा सन्मान मिलता है और चोर या खूनीको भयंकर शिक्षा दी जाती है। यह उदाहरण जगत्की दृष्टिसे हुआ। अब एक दूसरा उदाहरण लीजिए, जो स्वयं मनुष्यकी अंतरात्माकी दृष्टिमें अनुभूत होता है। एक पुरुष अपने शरीरसे जिस प्रकार अपनी स्त्रीसे आलिंगन करता है, उसी प्रकार वह अपनी माता बहिन या पुत्रीसे आलिंगन करता है। आलिंगनके बाह्य प्रकारमें कुछ भेद न होनेपर भी आलिंगन कर्ताके आंतरिक भावोंमें बडा भारी भेद अनुभूत होता है। पत्नीसे आलिंगन करते हुए पुरुषका मन और शरीर जब मलिन विकारभावसे भरा होता है, तब माता आदिके साथ आलिंगन करनेमें मनुष्यका मन निर्मल और शुद्ध सात्त्विक—वत्सल—भावसे भरा होता है।

कर्मके स्वरूपमें किंचित फरक न होनेपर भी फलके स्वरूपमें इतना विपर्यय क्यों है ? इसका जब विचार किया जाता है, तो स्पष्ट ही मालूम होता है कि, कर्म करनेवालेके भावमें विपर्यय होनेसे फलके स्वरूपमें विपर्यय है। इसी फलके परिणाम ऊपरसे कर्ताके मनोभावका अच्छा या बुरापन निर्णित किया जाता है; उसी मनोभावके अनुसार कर्मका शुभाशुभपना माना जाता है। अतः इससे यह सिद्ध होगया कि धर्म-अधर्म, पुण्य-पाप, सुकृत-दुष्कृतका मूलभूत केवल मन ही है। भागवतधर्मके नारद पंचरात्र नामक ग्रंथमें एक जगह कहा गया है कि—

> मानसं प्राणिनामेव सर्वकर्मैककारणम् ।
> मनोऽरूपं वाक्यं च वाक्येन प्रस्फुटं मनः ॥

अर्थात् प्राणियोंके सर्व कर्मोंका मूल एक मात्र मन ही है। मनके अनुरूप ही मनुष्यकी वचन (आदि) प्रवृत्ति होती है और उस प्रवृत्तिसे उसका मन प्रकट होता है।

इस प्रकार सब कर्मोंमें मन हीकी प्रधानता है। इसलिये आत्मिक विकासमें सबसे प्रथम मनको शुद्ध और संयत बनानेकी आवश्यकता है। जिसका मन इस प्रकार शुद्ध और संयत होता है वह फिर किसी प्रकारके कर्मोंसे लिप्त नहीं होता। यद्यपि जबतक आत्मा देहको धारण किये हुए हैं, तबतक उससे कर्मका सर्वथा त्याग किया जाना असंभव है, क्योंकि गीताका कथन है कि—

" नहि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः । "

तथापि—

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेंद्रियः ।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥

इस गीतोक्त कथनानुसार—जो योगयुक्त विशुद्धात्मा, जितेंद्रिय और सर्व भूतोंमें आत्मबुद्धि रखनेवाला पुरुष है, वह कर्म करके भी उससे अलिप्त रहता है।

ऊपरके इस सिद्धान्तसे पाठकोंकी समझमें अब यह अच्छी तरह आजायगा कि, जो सर्वव्रती—पूर्णत्यागी मनुष्य है उनसे जो कुछ सूक्ष्म कायिक हिंसा होती है उसका फल उनको क्यों नहीं मिलता। इसी लिये कि उनसे होनेवाली हिंसामें उनका भाव हिंसक नहीं है। और विना हिंसक-भावसे हुई हिंसा, हिंसा नहीं कही जाती। इसलिये आवश्यक महाभाष्य नामक आप्त जैन ग्रंथमें कहा है कि—

असुभपरिण महेऊ जीवाबाहो त्ति तो मयं हिंसा।
जस्स उ न सो निमित्तं सतो विन तस्स सा हिंसा॥

अर्थात् किसी जीवको कष्ट पहुंचानेमें जो अशुभ परिणाम निमित्तभूत है तो वह हिंसा है, और ऊपरसे हिंसा मालूम देने पर भी जिसमें वह अशुभ परिणाम निमित्त नहीं है, वह हिंसा नहीं कहलाती। यही बात एक और ग्रंथमें इस प्रकार कही हुई है:—

जं न हु भणिओ बंधो जीवस्स वहेवि समिइगुत्ताणं।
भावो तत्थ पमाणं न पमाणं कायवबारो॥

(धर्मरत्नमंजूषा, पृ. ८३२)

अर्थात् समिति-गुप्तियुक्त महाव्रतियोंसे किसी जीवका वध होजाने पर भी उसका उनको बन्ध नहीं होता क्योंकि बन्धमें मानसिक भाव ही कारणभूत है—कायिक व्यापार नहीं। यही बात भगवद्गीतामें भी कही हुई है। यथा:—

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वापि स इमांल्लोकान् न हन्ति न निबध्यते॥

अर्थात् जिसके हृदयमेंसे 'अहंभाव' नष्ट होगया है और जिसकी बुद्धि अलिप्त रहती है वह पुरुष कदाचित् लोकदृष्टिसे लोगोंको-प्राणियोंको मारनेवाला दीखने पर भी न वह उनको मारता है, और न उस कर्मसे बद्ध होता है।

इसके विपरीत जिसका मन शुद्ध और संयत नहीं है—जो विषय और कषायसे लिप्त है वह बाह्य स्वरूपसे अहिंसक दीखने पर भी तत्त्वसे वह हिंसक ही है। उसके लिये स्पष्ट कहा गया है कि—

अहणंतो वि हिंसो दुट्ठत्तणओ मओ अहिमरोव्व।

जिसका मन दुष्ट-भावोंसे भरा होता है वह किसीको नहीं मारकर भी हिंसक ही है। इस प्रकार जैनधर्मकी अहिंसाका संक्षिप्त स्वरूप है। (महावीरसे उद्धृत)

मुद्रक—
मूलचन्द किसनदास कापड़िया,
"जैनविजय" प्रि० प्रेस—सूरत।
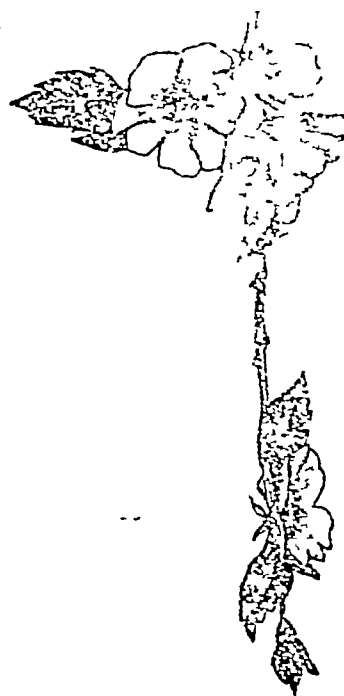
प्रकाशक—
चिरंजीलाल जैनी मंत्री,
आत्मानंद जैन ट्रैक्ट सोसायटी,
अम्बालाशहर।

॥ श्री ॥

॥ वन्दे वीरम् ॥

(श्री मद्विजयानन्दसूरिभ्यो नमः)

॥ संबोध सत्तरि ॥

(आर्यावृत्तम्)

नमिऊण तिलोअगुरुं, लोआलोअप्पयासयं वीरं।
संबोह सत्तरि-महं, रएमि उद्धार गाहाहिं ॥१॥

(आत्मानंद करं विभुं गुरुवरं वीरं समाधि प्रदं,
नत्वा सौख्यकरं तथैव कमलं ज्ञानाब्धि सूरीश्वरम्ः
स्तुत्वा लब्धि महो निशं ममगुरुं संबोध दां सत्तरिं,
कुर्वे हिन्दी सुभाषया गुण करां भव्यात्मनां शान्तये ॥१॥

स्वर्ग, मृत्यु और पातालरूप तीन लोकके गुरू और लोकालोकके प्रकाशक ऐसे श्रीमन्महावीर स्वामीको नमस्कार करके सूत्रोंसे प्राकृत गाथाएं उद्धृत कर मैं यह संबोध सत्तरि नामक पुस्तक सर्व साधारणके लाभार्थ रचता हूं ॥१॥

सेयंबरो य आसं, बरो य बुद्धो अ अहव अन्नो वा।
समभावभावि अप्पा, लहेइ मुक्खं न सन्देहो ॥२॥

चाहे श्वेताम्बर हो या दिगम्बर, चाहे बौद्ध हो या अन्य कोई मतावलम्बी, परंतु जिसकी आत्मा समभावमें भावित हो चुकी हो, उसको मोक्षपद प्राप्त होता है, इसमें कोइ सन्देह नहीं ॥२॥

देव, धर्म और गुरूका स्वरूप ।

अट्ठदस दोस रहिओ, देवो धम्मोवि निउणदय सहिओ ।
सुगुरूवि बंभ यारी, आरंभ परिग्गहा विरओ ॥ ३॥

अठारह दूषणोंसे रहितको देव समझना, और पूर्ण दयायुक्त धर्म जानना, और इसी तरह ब्रह्मचारी, आरंभ सारंभ और परिग्रहसे जो विरक्त हो उसे सुगुरु समझना चाहिए। अब देवमें न होनेवाले अठारह दूषण बतलाते हैं, जिनके नष्ट होनेसेही देवपद प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

अन्नाण कोह मय माण, लोह माया रईय अरईय ।
निद्दा सोअ अलिय वयण, चोरिआ मच्छर भया य ॥४॥
पाणीवह पेम कीलापसंग, हासा यजस्स ए दोसा ।
अट्ठार सवि पणट्ठा, नमामि देवाहि देवंतं ॥ ५ ॥

अज्ञान १ क्रोध २ मद ३ मान ४ लोभ ५ माया (फरेब) ६ रति ७ अरति ८ निद्रा ९ शोक १० असत्य वचन ११ चोरी १२ मत्सर (ईर्ष्या) १३ भय १४ प्राणीवध (हींसा) १५ प्रेम १६ क्रीडा प्रसंग १७ और हास्य १८ यह अट्ठारह दूषण जिसके बिल्कुल नष्ट हो गए हैं, उन देवधिदेवको मैं नमस्कार करता हूँ ॥४॥५॥

धर्मका स्वरूप ।

सव्वा ओवि नईओ, कमेण जह सायरंमि निवडंति ।
तह भगवई अहिंसिं, सव्वे धम्मा समिल्लंति ॥ ६ ॥

जिस तरह सब नदियें समुद्रमें जा मिलती हैं, उसी तरह अहिंसा देवीकी गोदमें सब धर्म आ बैठते हैं ॥६॥

गुरूका स्वरूप ॥

ससरी रेवि निरीहा, बज्झब्भिंतरपरिग्गह विमुक्का ।
धम्मो विगरण मित्तं, धरंत्ति चारित्तर खवट्ठा ॥७॥
पंचिंदिय दमण परा, जिणुत्तसिद्धंत गाहियं परमत्था ।
पंच समिया तिगुत्ता, सरणं मह एरिसा गुरुणो ॥८॥

अपने शरीरसे भी ममता रहित, बाह्य धनादिक और अभ्यंतर (क्रोद्धादि) परिग्रहसे विमुक्त हुये, चारित्रकी रक्षाके लिये केवल धर्मोपकरण (वस्त्र पात्रादि) को धारण करनेवाले, पाच इन्द्रियोंके दमन करनेमें तत्पर, जिन्होंने जिन कथित सिद्धान्तके परमार्थको स्वीकार किया है, और पंच समितिको पालन करनेवाले और तीन गुप्तिके गुप्त (मन वचन कायाको रोकनेवाले) ऐसे गुरु महाराजका मुझको शरण प्राप्त हो ॥७॥८॥

कुगुरुका स्वरूप ।

पासत्थो ओसन्नो, होइ कुसीलो तहेव संसत्तो ॥
अहछंदोवि य ए ए, अवंदणिज्जा जिण मयंमि ॥९॥

१ पासत्थो (शिथिल) कुशील (दुराचारी) आसन्नो (चारित्रमें प्रमाद करनेवाला) संसक्त (त्यागियोंमें त्यागी हो जाय और भोगी-योंमें भोगी) यथासन्द (गुरु महाराजकी आज्ञासे बाहर) यह सब जैन मतके अनुसार अवंदनीय हैं अर्थात् इनकों वन्दना करनी योग्य नहीं ॥ ९ ॥

कु(त्याज्य)गुरुको वंदन करनेका परिणाम।

पासत्थाइ वंदमाणस्स नेव किती न निज्जरा होई ।
जायइ कायकिलेसो, बंधो कम्मस्स आणाई ॥१०॥

पहिले जिनके नाम बतलाए हैं ऐसे पासत्थे आदिको वंदन करना निष्फल है क्योंकि ऐसोंको वन्दन करनेसे न तो कीर्ति और न निर्जरा (कर्म क्षय) होती है। किन्तु कायक्लेश उत्पन्न होता है। और दुराचारीको वन्दन करनेसे अष्ट प्रकारके कर्मोंका बंधन होता है और साथ ही जिनाज्ञाका भंग भी होता है इत्यादि ॥१०॥

पासत्थादिमें जो २ मनुष्य ब्रह्मचर्य्यसे रहित तथा विलासको चाहनेवाले हैं उनकों नमस्कार करनेसे पूर्वोक्त कथनानुसार नमस्कार करनेवालेको तो हानि होती ही है परन्तु नमस्कार करानेवाले (त्याज्य गुरु—छोड़ देने योग्य) गुरुको क्या हानि होती है सो शास्त्रकार अब दिखलाते हैं ॥१०॥

जे बंभचेर भट्ठा, पाए पाडंति बभयारीणं ।
ते हुंति टुंटमुंटा, बोहिवि सुदुल्लहा तेसिं ॥ ११ ॥

जो मनुष्य ब्रह्मचर्यसे पतित होकर अपने आपको ब्रह्मचारी मनुष्यसे नमस्कार कराते हैं वे दूसरे जन्ममें लूले लंगड़े होते हैं और

उनके लिए सम्यक्त्वका प्राप्त होना भी अत्यन्त कठीन हो जाता है ॥ ११ ॥

दंसण भट्ठो भट्ठो, दंसण भट्ठस्स नत्थि निवाणं ।
सिज्झंति चरण रहिआ, दंसणरहिआ न सिज्झंति ॥१२॥

दर्शन (सम्यत्त्व)से जो भ्रष्ट है वह भ्रष्ट कहलाता है तथा दर्शनभ्रष्टको मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती क्योंकि द्रव्य (चारित्र)से रहित मोक्षपदको प्राप्त करता है लेकिन सम्यत्त्वहीन मोक्षपदको प्राप्त नहीं कर सक्ता ॥ १२ ॥

अब श्री जिनेश्वर देवकी आज्ञाका उल्लंघन करना इस विषयमें कहते हैं ।

तित्थयरसमो सूरी, सम्मं जो जिणमयं पयासेई ।
आणाइ अइक्कंतो, सो कापुरिसो न सप्पुरिसो ॥१३॥

जो श्री तीर्थंकर देवके समान प्रभाविक आचार्य हैं और भगवानके कहे हुए सिद्धान्तोंका भली प्रकारसे सर्वत्र प्रचार करते हैं लेकिन स्वयम् उनकी आज्ञाका उलंघन करते हैं तो उनको दुष्ट पुरुष समझना न कि सत्यपुरुष ॥१३॥

जह लोहसिला अप्पंपि बोलए तह विलग्गपुरिसंपि ।
इय सारंभो य गुरू, परमप्पाणं च बोलेई ॥१४॥

जिस प्रकार (लोह युक्त) शिला स्वयम् डूबती है और उसको पकडनेवाले भी डूबजाते है इसी तरह आरंभी सारंभी (गृहस्थोंकीतरह सांसारिक कार्योंको करने वाला) गुरु अपने आपको डूबाताहै और साथमें सेवकोंको भी ॥१४॥

किइ कम्मं च पसंसा, सुहसीलजणंमि कम्म बंधाय ।
जें जे परमायठाणा, ते ते उवबूहिया हुंति ॥१५॥

(अनुष्टुब वृत्तम्)

एवं णाऊण संसग्गि, दंसणालावसंथवं ।
संवासं च हिया कंखी, सव्वो वाणहिं वज्जए ॥१६॥

सांसारिक सुखोंकी इच्छा करनेवाले भ्रष्टाचारी गुरुको द्वादशा-वर्त्तनवन्दन (प्रतिक्रमणमें जो गुरु वन्दन कीयी जाती है) और प्रशंसा करेतो कर्म बंधका हेतू है । और इस प्रकार उनका मान करनेसे वो अधिक प्रमादी होजाते हैं ।उस पापकी वृद्धि करनेवाला वोही वन्दन--प्रशंसा करनेवाला पुरुष माना जायगा सो भव्यात्माओं (आत्माको सुधारने वाले मनुष्यों)को उचित है कि पासत्थादिक (ढिले पसत्थे) कुगुरुओंका संबंध व दर्शन तथा उनके साथ आलाप संलाप (वातचित) स्तुति सहवासादि बातोंसे दूर रहे ॥१५॥१६॥

अब जो मनुष्य चारित्रको ग्रहण करके फिर उसको त्यागनेका विचार करे उसे शास्त्रकार ऐसे कहते हैं।

(आर्यावृत्तम्)

अहिगिलइ गलइ उअरं, अहवा पच्चुग्गलंनि नयणाइं ।
हावि समा कज्जगई, अहिणा छच्छुंदरि गहिज्जा ॥१७॥

चारित्र ग्रहण करनेके पश्चात् जिसके चारित्रमें शिथिलता हो जाती है उसके लिये “ सर्पने छछुंदर ” पकडा सो न्याय होता है क्योंकि सर्प यदि छछुंदरको मुंहमें पकडनेके बाद निगल जाय तो कुष्टी हो जाता है और यदि उगल दे तो अन्धा हो जाता है इसी तरह साधु भी दुःखित हो जाता है ॥ १७ ॥

अब ऐसे शिथिल परिणामवालोंको स्थिर रखनेके लिए चारित्र धर्मका विशेष प्रकारसे सर्वोत्कृष्ट-पना बतलाते है—

को चक्कवट्टि रिद्धिं, चउउं दासत्तणं समभिलसई।
को व रयणाइं मुत्तुं, परिगिन्हइ उवलखंडाई ॥१८॥

चक्रवर्तीकी ऋद्धि छोड़कर दास होनेकी अभिलापा कौन कर सक्ता है? क्योंकि रत्नको छोड़कर पाषाणके टूकड़ेको सिवाय मुर्खके (जो लाभालाभके विचारसे शून्य है) कोई ग्रहण नहीं करता ॥१८॥

अब प्राप्त किया हुआ जो दुःख है वह नष्ट कैसे हो सक्ता है सो शास्त्रकार दृष्टान्तपूर्वक भव्यात्मा-ओंको समझाते हैं—

नेरइकाणवि दुक्खं, जिज्झइ कालेण किं पुणनराणं।
ता न चिरं तुह होई, दुक्ख मिणं मा समुव्वियसु ॥१९॥

नर्कके जीवोंको जो कष्ट है वह भी समयान्तर पर नाश होता है! तो मनुष्यके लिए तो कहना ही क्या!! इसलिए मुझको भी यह दुःख चिरकाल तक नहीं रहेगा। अत. हृदयके अन्दर तूं खेद मत कर ॥१९॥

परम पवित्र चारित्रको ग्रहण करके त्याग देना बहुत ही बुरा है इस बातको दिखानेके लिए शास्त्रकार कहते हैं।

वरं अग्गिमि पवेसो, वरं विसुद्धेणकम्मणा मरणं।
मा गहियव्वय भंगो, मा जीअं खलिअसीलस्स ॥२०॥

अग्निके अन्दर प्रवेश करना अच्छा है और विशुद्ध भावसे अणसण (चार प्रकारके आहारका त्याग) कर शरीरके मोहको छोडदेना अच्छा है परन्तु ग्रहण कियेहुए व्रतोंका भंग करना अच्छा नही है और जो मनुष्य ब्रह्मचर्यका भंग करता है उसके लिए संसारमें जीनाभी बहुत बुरा है ॥ २० ॥

अब प्रसंगोपात धर्म श्रद्धामें दृढ़ता करनेके लिए सम्यक्त्वका स्वरूप और उसकी दुर्लभता और फल बतलाता हैं।

अरिहं देवो गुणो, सुसाहुणो जिणमयं मह पमाणं ।
इच्चार सुहो भावो, सम्मत्तं बिंति जगगुरुणो ॥ २१ ॥

श्री अरिहन्त देव, सुसाधु गुरु और जैनशासन ही मुझे मंजूर है इत्यदि शुद्ध भावको जगद्गुरू श्री तीर्थंकर महाराज सम्यक्त्व कहते हैं और ऐसे भाववालेको ही सम्यक्त्वी जीव कहते हैं ॥२१॥

सम्यक्त्वकी दुर्लभता ॥

लब्भइ सुरसामित्तं, लब्भइ पहुअत्तणं न सन्देहो ।
एगं नंविह न लाभइ, दुल्लहरयणं च सम्मत्तं ॥ २२ ॥

देवोंका अधिपतत्व (स्वामीत्व) प्राप्त करना और प्रभुता (ऐश्वर्यता ठकुराइपना)का मिलना कोई बडी बात नहीं, परंतु विशेष विचार करनेसे एक दुर्लभ चिन्तामणी रत्न के सदृश्य सम्यक्त्वको प्राप्त करना जीवोंके लिए बड़ाही कठीन है ॥ २२ ॥

सम्यकत्वका फल।

सम्मत्तंमि उलद्धे, विमाणवज्जं न बंधए आउं।
जइवि न सम्मत्तजडो, अहव न वद्धाउओ पुव्विं ॥२३॥

सम्यत्त्व के प्राप्त करनेसे जीव वैमानिक देवका आयुष्य बंधन करता है। यदि वह सम्यत्त्वसे पतित न हुआ हो ओर सम्यत्त्व प्राप्तिसे पूर्व कोइ अन्यगतिका उसने आयुष्य बन्दन न किया हो ॥२३॥

सामायिकका फल।

(अर्थात् दो घडी तक संभाव धारण करनेका फल बतलाते हैं)

दिवसे दिवसे लख्खं, देइ सुवन्नस खंडियं, एगो।
एगो पुण सामाइयं, करेइ न पहुप्पए तस्स ॥ २४ ॥

एक पुरूष प्रति दिन लक्ष २ पांसे सोनेके दान देता है और एक धर्माभिलाषी पुरुष सामायिक करता है, यहाँपर सामायिक करनेवालेकी तुलना सोनेके पांसोंका दान देनेवाला पुरुष कदापि नहीं कर सक्ता; अर्थात् सामायिकका फल विशेष है ॥२४॥

सामायिकमें स्थित पुरुष कैसा होना चाहिए?

निंदपसंसासु समो, समो अ माणावमाणाकारीसु।
समयसणपरियमणो, सामाइयसंगओ जीवो ॥ २५ ॥

निन्दा तथा प्रशंसामें, मान और अपमानमें, स्वजन तथा पर-जनमें, जिसका समानभाव है उसको सामायिक स्थित पुरुष कहना चाहिए ॥ २५ ॥

निरर्थक सामायिकका लक्षण ।

सामाइयं तु काउं, गिहिकज्जं जोवि चिंतए सड्ढो ।
अट्टव सट्टो वगओ, निरत्थयं तस्स सामाइयं ॥ २६ ॥

जो कोई श्रावक सामायिक करते हुए सांसारिक कार्य्योंका विचार करे और आर्त्त, रौद्रध्यानके वश हो जाय तो उसकी सामायिक निरर्थक है ॥ २६ ॥

श्री आचार्य्य महाराजके छत्तिस गुण ।

पडिरूवाइ चउद्दस, खंतीमाई ये दसविहो धम्मो ।
बारस ये भावणाओ, सूरिगुणा हुंति छत्तीसं ॥ २७ ॥

प्रतिरूप १ तेजस्वी २ युगप्रधान (सर्व आगमके जानकार अर्थात सर्व शास्त्रोंके ज्ञाता) ३ मधुर वचन वाले गंभीर ५ धैर्यवान ६ उपदेशमें तत्पर और श्रेष्ठ आचार वाले ७ प्रबल धारणा शक्तिवाले ८ सौम्य ९ संग्रह शील १० अभिग्रहमाति वाले ११ विकथाको नहीं करने वाले १२ अचपल १३ और प्रशांत हृदयवाले १४ यह प्रतिरूपादिक चौदहगुण और क्षमा १ आर्जव २ मार्दव ३ मुक्ति ४ तप ५ संयम ६ सत्य ७ शौच ८ अकिंचन ९ ब्रह्मचर्य १० यह क्षमादिक दस प्रकारका यति धर्म और अनित्य १ अशरण २ संसार ३ एकत्त्व ४ अन्यत्व ५ अशुचि ६ आश्रव ७ संवर ८ निर्ज्जरा ९ लोकस्वरूप १० वोधिदुर्लभ ११ और धर्म १२ यह बारह भावना, इस प्रकार सूरीश्वर महाराज के छत्तिस गुण होते हैं ॥२७॥

साधु मुनिराजके सत्ताइस गुण ॥

छव्वय छक्कायरक्खा, पंचिंदियलोहनिग्गहो खंती।
भावविसुद्धि पडिले, हणाय करणे विसुद्धि य ॥२९॥
संजम जोइ जुत्तो, अकुसल मणावयणकायसंरोहो ।
सीयापीड सहणं, मरणं उवसग्गसहणं च ॥२९॥

प्राणातिपात १ मृषावाद २ अदत्तादान ३ मैथून ४ परिग्रह ५ और रात्री भोजन ६ इन छः बातोंका त्याग करना, पृथ्वीकाय १ अप २ तेऊ ३ वायु ४ वनस्पति ५ और त्रसकाय ६ इन छः कायोंकि रक्षा करनी, स्पर्शेन्द्रिय १ रसेन्द्रिय २ घ्राणेन्द्रिय ३ चक्षुरेन्द्रिय ४ और श्रोत्रेन्द्रिय ५ इन पांच इन्द्रियोंकों वश करना, लोभका जीतना १८ क्षमा १९ भावकी विशुद्धि २० पडिलेहणा करनेमें विशुद्धि २१ संयमयोय युक्त रहना २२ अकुशल मन २३ अकुशल वचन २४ अकुशल कायाका संरोध (रोकना) २५ शीतादिक पीड़ाका सहन २६ मरणान्तोपसर्ग (मरणान्त कष्टको सहन करना) २७ यह सत्ताइस गुण मुनि महाराजके हैं ॥२८॥२९॥

सत्तावीसगुणोहीं, एएहिं जो विभूसिओ साहू ।
तं पणमिज्जइ भत्ति भ्भरेण हियएण रे जीव ॥३०॥

पूर्वोक्त सताइस गुणों करके युक्त जो मुनि निर्मल चारित्रका पालन करते हैं या जो मुनिराज उक्त गुणोंसे विभूषित हैं उनको हे आत्मन्! तूं प्रतिदिन शुभ भाव अत्यन्त भक्तिपूर्वक नमस्कार कर ॥ ३० ॥

श्रावकके इकिस गुण ।

(धर्मरत्नके योग्य जो श्रावक इन २१ गुणों करके युक्त हो उन २१ गुणोंको शास्त्रकार दर्शाते हैं।)

धम्मरयणस्स जुग्गो, अक्खुद्दो रूवव पगइ सोमो ।
लोगप्पिओ अक्रूरो, भीरू असढो सुदक्खिन्नो ॥३१॥
लज्जालू अ दयालू, मज्झत्थो सोमदिट्ठी गुणरागी ॥
सक्कह सुपक्खजुत्तो, सुदीहदंसी विसेसन्नु ॥३२॥
वुड्ढाणूगो विणिओ, कयन्नुओ परहिअत्थकारी अ ।
तहचेव लद्ध लक्खो, इगवीसगुणोऽहवइ सड्ढो ॥३३॥

अक्षुद्र (उदार चित्त) १ रूपवंत २ प्रकृतिसे सौम्य ४ अक्रुर ५ भीरू (पापसे हटनेवाला) ६ अशठ (दुर्जनतासे रहित) ७ सुदाक्षन्यवान (दूसरेके कामको कर देनेवाला) ८ लज्जालु ९ मध्यस्थ (सौम्य दृष्टि) १० गुणानुरागी ११ सत्कथ १२ सुपक्षयुक्त १३ सुदीर्घदर्शी १४ विशेषज्ञ १५ वृद्धानुग (वडोकी मर्यादामें चलने वाला) १६ विनीत १७ कृतज्ञ १८ परहितार्थकारी १९ लब्ध लक्ष २० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३॥

॥ जिनागमका महत्व ॥

(अनुष्टुब वृत्तम्)

कत्थ अम्हारिसा पाणी, दूसमा दोस दूसिआ ।
ह अणाहा कहं हुंता, न हुंतो जइ जिणागमो ॥३४॥

दूषम कालके दोष करके दूषित, ऐसे हमारे जैसे मनुष्योंकी, है जिनागम न होतेतो क्या दशा होती अर्थात स्वामी रहित को इस पंचमकालमें जिनागमकाही आधार है ॥३४॥

॥ आगमके आदर करनेमें समाया हुआ तात्पर्य ॥

आगमं आयरंतेणं, अत्तणो हियकांखिणो
तित्थनाहो गुरू धम्मो, सेव्व ते वहुमन्निया ॥३५॥

आगमके अर्थात् आगमके रहस्यको आचरते हुए आत्माके हितेच्छुओंको तीर्थनाथ श्री अरिहन्त भगवन्त, तथा सद्गुरु महाराज और श्री केवली महाराजका प्ररूपित धर्म यह सव वहुत माननीय हैं। वि० अज्ञानवश जो हम पाप करते हैं उन पापोंसे वचानेवाले श्री वीतराग देवके अभावमें वोध देनेवाले केवल जिनागम समर्थ हैं ।३५।

॥ कैसे संघको संघ नहीं कहना ॥

(आर्यावृत्तम्.)

सुहसीलाओ सच्छंद चारिणो वेरिणो सिव पहस्स ॥
आणा भट्ठाओ वहुजणाओ मा भणह संघुत्ति ॥ ३६ ॥

श्री गौतम स्वामीजीको श्रीमन्महावीर स्वामी फरमाते हैं कि हे गौतम ! सुखशीलिये अर्थात् सांसारिक सुखोंमें स्थापन किये हैं, अपने आत्माको जिन्होंने, ऐसे स्वच्छन्दाचारी (मरजी मुताबिक चलने वाले) तथा मोक्ष मार्गके वैरी और जिज्ञासे भ्रष्ट, ऐसे वहुतसे मनुष्य हों तो भी उनको संघ नहीं कहना चाहिए ॥ ३६ ॥

कैसे संघको संघ कहेना ॥

एगो साहू एगा, य साहुणी साव ओवि सड्ढी वा ।
आणाजुत्तो संघो, सेसो पुण अठ्ठी संघाओ ॥ ३७ ॥

एक साधु, एक साध्वी, एक श्रावक, एक श्राविका हो यह चारों मिलकर जिनाज्ञाका पालन करते हों, उनके समुदादायको संघ कहना चाहिए और जो जिनाज्ञासे वाहिर हैं, उनके समुदायको संघ नहीं मानना किन्तु अस्थियोंका समुदाय समझना चाहिए।

वि० थोड़ासा समुदाय वीतरागकी आज्ञामें चलता है तो भी वह माननीय है लेकिन वीतरागकी आज्ञासे बाहिर चलता हो ऐसा बहुत समुदाय हो तो भी उसके अप्रमाणिक होनेसे मानने योग्य नहीं कहा जाता ॥ ३७ ॥

संघका लक्षण ॥

निम्मलनाणपहाणो, दंसणजुत्तो चरित्तगुणवंतो ।
तित्थयराण य पुज्जो, वुच्चइ एयारिसो संघो ॥ ३८ ॥

निर्मल ज्ञानकी प्रधानता जिनके अन्दर है और दर्शन सम्यक्त्व करके युक्त और चारीत्रके गुणोंसे अलंकृत ऐसा जो संघ है वह श्री तीर्थंकर भगवानको भी पूज्य है। ऐसे गुणवानको ही संघ कहना चाहिए ॥३८॥

जिनाज्ञाकी मुख्यता ॥

जहतुसखंडण मयमंडणाइ रुण्णाइ सुन्नरन्नमि ।
विहलाई तहजाणसु, आणारहियं अणुठाणं ॥ ३९ ॥

जिस प्रकार छिलकोंको कूटना मूर्दोंको अलंकृत करना और शून्य जंगलमें रोना यह सब निष्फल है, वैसे हीं वीतरागकी आज्ञा रहित क्रियाकांड अनुष्ठानादिक भी निष्फल हैं ॥३९॥

आणाइ तवो आणाइ संजमो तह य दाणमाणाए ।
आणारहिओ धम्मो, पलाल पुल्लुव पडिहाई ॥४०॥

आज्ञानुसार जप, तप, चारित्र और दान करना उचित है क्योंकि आज्ञा रहित जो धर्मध्यान करता है वह घासके समुदायके माफीक शोभाको प्राप्त नही होता है ॥४०॥

आज्ञा रहित कीयी हुई क्रिया निरर्थक है ।

आणा खंडणाकारी, जइवि तिकाल महा विभूईए ।
पूएइ वीयरायं, सव्वंपि निरत्थयं तस्स ॥ ४१ ॥

श्री वीतरागकी आज्ञाका भंग करनेवाला पुरुष जो के बडी सम्पदा करके युक्त तीन काल तक श्री वीतराग देवकी पूजा करे तो भी वह सर्व क्रिया, जिसकी पूजा करता है, उनकी आज्ञाके बाहिर होनेसे निरर्थक है ॥ ४१ ॥

रन्नो आणाभंगे, इक्कुच्चि य होइ निग्गहो लोए ।
सव्वन्नुआणभंगे, अणंतसो निग्गहो होई ॥ ४२ ॥

इस संसारमें राजाकी आज्ञा भंग करनेसे एक ही वक्त निग्रह (दंड) होता है लेकिन सर्वज्ञकी आज्ञाका भंग करनेसे अनेकवार जन्मान्तरोंमें रुलना पडता है और छेदन भेदन, जन्ममरण, रोग, शोक आदि अनेक यातनाएं (तकलीव) सहन करनी पड़ती हैं ॥४२॥

विधियुक्त व विधिरहित किये हुए धर्मका अंतर ।

जह भोयणमविहिकयं, विणासए विहिकयं जियावेई ।
तह अविहिकओ धम्मो, देइ भव विहिकओ मुक्खं ॥४३॥

विधिसे और अविधिसे किये हुए धर्ममें अन्तर है। जैसे अविधिसे किया हुआ भोजन शरीरका नाश करता है और विधिसे किया हुआ भोजन शरीरकी रक्षा करता है, वैसे हीं अविधिसे किया हुआ धर्म संसारमें भ्रमण कराता है और विधिसे किया हुआ धर्म मोक्ष पदका दाता है ॥ ४३ ॥

द्रव्यस्तव और भावस्तवका अन्तर कहते हैं।

मेरुस्स सरिवस्स य, जित्तिय।मित्तं तु अंतरं होई।
दव्वत्थय भावत्थय, अंतरमिह तित्तियं नेयं ॥ ४४ ॥

मेरू पर्वत और सरसवमें जितना अन्तर है उतनाही अन्तर द्रव्यस्तव और भावस्तवमें यहाँ जानना।

विना समझ ओर अन्तरंग अभिलाषाके जो वीतरागका गुणानुमोदन करना है उसको 'द्रव्यस्तव' कहते हैं ओर उसका फल वहुतही अल्प है। समझकर भावसे गुणनुवाद करना उसको 'भावस्तव' कहते हैं, उसका फल वेशुमार है। इसका अर्थ और तरहसे भी होता है कि गृहस्थोंका द्रव्यस्तवका फल अल्प है और साधुओंका भावस्तवका फल वहुत वढकर है सो अगली गाथामें देखो ॥ ४४ ॥

द्रव्यस्तव और भावस्तवका उत्कृष्ट फल।

उक्कोस दव्वत्थयं, आराहिय जाय अच्चुयं जाव।
भावत्थएण पावइ, अंत मुहुत्तेण निव्वाणं ॥४५॥

द्रव्यस्तवका आराधक उत्कृष्ट। अच्युतनामा वारहवें देवलोक तक जाय और भावस्तव करके अन्तर मूहुर्त्तमें निर्वाणपद प्राप्त करता

है । वि० जिनेश्वर देवके मन्दिरमें द्रव्य पूजामें लाखों रुपैये खर्च कर जैनशासनकी महिमाको बढ़ानेवाला भव्यात्मा श्रावक उत्कृष्टा बारहवें देवलोक तक जाता हैं । लेकिन निग्रंथ साधु सिर्फ भगवान की आज्ञानुसार संयम पालनेवाला और भगवानके गुणोंको गाता हुआ अध्यात्म दशामें निमग्न होकर अल्प कालमें केवलज्ञानको धारण कर मोक्षपदको प्राप्त करता है । परन्तु मूर्त्तिपूजामें दृढ श्रद्धानका होना अत्यन्त आवश्यक है ॥४५॥

कैसे गच्छको त्याग करना—छोडना चाहिए? ॥

जत्थ य मुणिणो कयविक्क याइ कुव्वंति निच्चभट्ठा ।
तं गच्छं गुणसायर, विसंव दूर परिहरिज्जा ॥४६॥

जिस गच्छमें मुनि हमेशा भ्रष्टाचारी रहते हैं और क्रय विक्रयादि करते हैं, उस गच्छको हे गुणसागर ! जहरकी तरह छोड़ दो ! वि० जो साधुके भेषमें रहकर गृहस्थोंकी तरह द्रव्य संग्रह करके व्यापारादिक करते हैं और दुराचारका सेवन करते हैं वैसे आरंभ परिग्रहमें लिप्त साधुओंको छोडकर त्यागी सुशील साधुओंकी सोवतमें रहना चाहिए । क्योंकी भ्रष्टाचारी विष तुल्य है ॥४६॥

जत्थ य अज्जालद्धं, पडिग्गहमाइय विविहमुवगरणं ।
पडि भुंजइ साहू हिं, तं गोयम केरिसं गच्छं ॥४७॥

जिस गच्छमें साध्वीके लाए हुए वस्त्र पात्रादि उपकरणोंको साधु भोगमें लेते हैं, हे गौतम! वह गच्छ निकम्मा ही नहीं वरन सर्वथा छोड़ देने योग्य है ।

वि० मोक्षाभिलाषी साधुओंको साध्वियोंका विशेष परिचय रहनेसे संयममें मलिनता पैदा होती है । इसलिए उत्तम साधुओंको साध्वियोंका विशेष परिचय नहीं चाहिए । और उनकी लाई हुई चीजोंको कदापि ग्रहण करना नहीं चाहिए ॥ ४७ ॥

जहिं नत्थि सारणा वारणा य पडिचायणा यगच्छंमि ।
सो अ अगच्छो गच्छो, संजमकामीहि मुत्तव्वो ॥ ४८ ॥

जिस गच्छमें ' सारण ' ' वारणा ' च शब्दसे ' चायणा ' और ' पडिचोयणा ' नहीं होती है, वह गच्छ अगच्छ समान है। इसलिए संयमके वांछक मुनियोंको वह गच्छ त्याग देना चाहिए ।

वि. शिष्योंको पढ़ाना, भूले हुएको सुधारना, प्रमादिको जागृत करना, ज्यादह प्रमादीको समय२ पर सुमार्गमें लाना यह वड़ोंकी फ़र्ज़ है । जिस समुदायमें वड़े होकर, शिष्योंको सुधारते नहीं उस समुदायमें विशेष लाभ नहीं होता । अतएव उस गच्छको त्यागना ही उचित है ॥ ४८ ॥

गच्छकी उपेक्षा करने और पालन करनेका फल ।

गच्छं तु उवेहंतो, कुव्वइ दीहंभवे विहीएओ ।
पालंतो पुण सिज्झइ, तइअ भवे भगवई सिद्धं ॥४९॥

गच्छकी उपेक्षा करे तो दीर्घ (वहुत) भव करे और विधि-पूर्वक पालन करे तो तीसरे भवमें मोक्षपद प्राप्त करे । ऐसा श्री भगवतिजी सूत्रमें साफ कहा है ।

वि. साधु समुदायको सद्बोध देनेमें ख्याल न रखे और अच्छे रास्तेपर न लावे तो साधुओंकी दशा विगड़ जाती है । उसका

पाप प्रवर्त्तकको लगता है, जिससे प्रवर्त्तकको भवभ्रमण करने पड़ते हैं। और जो प्रवर्त्तक शिष्योंका पालन कर सुमार्गमें लाता है वह बहुत निर्जराको प्राप्त कर तीसरे भवमें मुक्तिको प्राप्त करता है ऐसा श्री भगवतिजीमें कहा है ॥४९॥

जत्थ हिरन्नसुवन्नं, हत्थेणपराणगंपि नो छिप्पे।
कारणसमाप्पियंपि हु गोयं गच्छ तयं भणियं ॥५०॥

जिस गच्छमें मुनिलोक कारणसे देने पर भी पराए द्रव्य और सुवर्णको हाथ भी नहीं लगाते ऐसे गच्छको गच्छ कहना उचित है।

वि- धनवान सेवक या राजा होकर परमगुरूको उपकारके बदले में "चांदी, सोना" या और कोइ धनादि देवे तो भी मोक्षाभिलाषी मुनि उसे बिल्कुल ग्रहण न करे, वही त्यागी मुनियोंका गच्छ यथार्थ गच्छकी तुलनामें है ॥ ५० ॥

पुढविदगअगणिमारुअवणस्सइ तह तसाण विविहाणं।
मरणंतेवि न पीड़ा, कीरइ मणसा तयं गच्छं ॥५१॥

पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति और अनेक प्रकारके त्रस जीवोंको अपने मरनेतक भी मनसे नहीं मारते और बचाने में तत्पर रहते हैं।

वि. मनवचन, कायासे त्रस, स्थावरका रक्षण करे, कारण पडे तो स्वयम् मरणान्त कष्टको सहन करे, लेकिन दूसरे जीवोंको न मारे—न पिडे, ऐसे गच्छको गच्छ कहते है ॥५१॥

मूलगुणेहिं विमुक्कं, बहुगुणकलियंपि लद्धिसंपन्न ।
उत्तंकुलेवि जायं, निद्धाडिज्जइ तयं गच्छं ॥५२॥

कोई भी मुनि दूसरे बहुतही गुणोंसें अलंकृत और लब्धि संपन्न हो तथा श्रेष्ठ कुलमें भी उत्पन्न हुआ हो, परन्तु वास्तविक गुणोंसे विमुक्त हो तो उसको स्वगच्छसे निकाल दे। उसका ही नाम गच्छ है।

वि० प्रमादी होकर जीवोंका घात करे, असत्य वचन बोले, चोरी करे, कुशील सेवे, परिग्रह रखे, ऐसे दुषणोंसे युक्त पुरुषोंमें और बहुतसे अच्छे गुण होवे तो भी, पूर्वोक्त दुर्गुणोंसे, मूल गुणोंके घातक होनेसे, उसको समुदायसे दूर कर देना चाहिए। तबही दूसरे साधुओंकी संयम रक्षा भली प्रकार हो सक्ती है और जिससे गच्छ भी पूजनीक होता है ॥५२॥

जत्थ य उसहादीणं, तित्थयराणं सुरिंद महियाणं ।
कम्मठविमुक्काणं, आणं न खलिज्जइ स गच्छो ॥५३॥

जिस गच्छमें आठ कर्म रहित और सुरेन्द्र पूजित ऋषभादि तीर्थकरोंकी आज्ञाके विरूद्ध बरताव नहीं होते उस गच्छको गच्छ समझना। अर्थात तीर्थंकरकी सर्व प्रकारदसे आज्ञा पालन करनेवाला गच्छ है ॥५३॥

जत्थ य अज्जाहिं समं, थेणावि न उल्लवंति गयदसणा ।
न य झायंतित्थीणं, अंगोवंगाइं तं गच्छं ॥५४॥

जिस गच्छके अन्दर, दांत जिनके गिरगये हैं ऐसे स्थिविर साधु भी साध्वीके साथ नहीं बोलते और स्त्रीके अंगोपांग भी नहीं देखते। बस, उसीका नाम गच्छ है।

वि० जिस गच्छमें अत्यंत वृद्ध होने पर भी साध्वियोंका परिचय नहीं रखते और स्त्रियोंके साथ आलाप संलाप न करते हुए अपने संयमकी आराधना करते हैं, और युवक साधु पर सुशीलताकी छाप डालते हैं, ऐसे महात्माओंसे गच्छ महान यशको प्राप्त होता है ॥५४॥

वज्जेइ अप्पमत्ता, अज्जासंसग्गि आग्गि विससरिसी ।
अज्जाणुचरो साहू, लहइ अकित्ति खु अचिरेण ॥५५॥

अप्रमत्त (अप्रमादी) मुनि महाराजोंको साध्वीका संग अग्नि और विषके बराबर है, उनको छोड देना अच्छा है क्योंकि साध्वीका अनुचर मुनि निश्चय ही थोड़े समयमेंअपकी र्त्तिको प्राप्त होता है ॥५५॥

शीलकी पुष्टि ।

जो देइ कणयकोडिं, अहवा कारेइ कणयजिणभवणं ।
तस्स न तत्तिय पुन्नं, जत्तिय बंभव्वए धरिए ॥५६॥॥

जो कोई पुरुष सुवर्णकी कोटी अर्थात् क्रोडों अशरफियों की किम्मतका सुवर्ण याचकोंको देवे अथवा कंचनका जिनभवन बनावे तो भी उसका उतना पुन्य नहीं होता है ॥५६॥

सीलं कुल आहारणं, सीलं रूवं च उत्तमं होई ।
सीलं चिय पंडित्तं, सीलं चिय निरुवमं धम्मं ॥ ५७ ॥

शील, कुलका आभूषण है, शीलही उत्तम रूप है । शीलही पांडित्य है, और शीलही निरुपम धर्म है ॥५७॥

दुष्ट मित्रको छोड़नेके लिए उपदेश।

(अनुष्टुब वृत्तम्)

वरं वाही वरं मच्चू, वरं दारिद्दसंगमो।
वरं अण्णवासो अ, मा कुमित्ताण संगमो ॥ ५८ ॥

व्याधि, मृत्यु और दरिद्रका संग और ऐसेही जंगलमें रहना यह सब अच्छा है, लेकिन दुष्ट मित्रोंका संग अच्छा नहीं ॥५८॥

अगीयत्थ कुसीलेहिं, संगंतिविहेण वोसिरे।
मुक्खमग्गंसिमे विग्धं, पहंमि तेणगे, जहा ॥ ५९ ॥

अज्ञानी और कुशीलियोंका संग बिल्कुल छोड़देना चाहिए। क्योंकि रास्तेमें चोरोंकी तरह, वे मोक्षमार्गमें विघ्न डालते हैं- वि० द्रव्य क्षेत्रकाल भावसे और शास्त्र रहस्यसे अज्ञात और दुराचारी साधुओंका सहवास अच्छा नहीं है। उनके बुरे चाल चलनसे अच्छे साधु भी बिगड़ जाते हैं। इसलिए चोरोंकी तरह कुसाधु मोक्ष मार्गमें विघ्न करनेवाले होते हैं ॥५९॥

अज्ञानी और कुशीलियोंको आँखसे भी देखना बुरा है।

(आर्यावृत्तम्.)

उम्मग्गदेसणाए, चरणं नासंति जिणवरिंदाणं।
वावन्नदंसणा खलु, न हु लप्भा तारिसं दुट्ठं ॥६०॥

उन्मार्गकी देशना देनेसे श्री जिनेश्वर देवका कहा हुआ रित्र नाश होता है। इसलिए जिसका सम्यक्त्व नष्ट होगया ऐसे पुरुषको देखना भी बुरा है।

वि० वीतरागकी आज्ञासे विरुद्ध अगीतार्थ उपदेश करनेसे भव्यात्माओंके चारित्रमें हानि पहुँचती है (यहाँतककी सम्यत्क्वसे भी पतीत होता है) इसलिए ऐसोंका दर्शन करना भी अनुचित है ॥६०॥

चारित्र विमुखके सहवाससें दूर रहनेका उपदेश देते हैं।

परिवारपूअहेऊ, असन्नाणं च आणुवित्तीए ।
चरण करणनिगूहई, तं दुलहबोहिअं जाणां ॥६१॥

परिवारकी पूजाके हेतू उसन्ना (चारित्रहीन) की आज्ञानुसार चले और चरणसित्तरी, करणसित्तरीको छुपाए उसको समकित दुर्लभ समझना ।

वि. चारित्रसे हीन है किन्तू पूजा जाता है, उसके सहवासमें रहनेसे मान होता है, लेकिन चारित्रमें प्रमादके बढनेसे " चरणा सित्तरी " " करणा सित्तरी " में हानी पहुँचती है ॥ ६१ ॥

उसन्नाकी सहायतासें चलनेसे अच्छे मुनिराजोंमें भी दूषण प्राप्त होते हैं सो दृष्टान्तद्वारा समझाते हैं।

अंबस्स य निंबस्स य, दुण्हंपि समागयाइं मूलाइं ।
संसग्गेण विणठो, अंबो निंवत्तणं पत्तो ॥६२॥

आम और नीम इन दोनोंकी जडे परस्पर मिली हुई हों तो नीमके संसर्गसे आमका स्वभाव नष्ट होकर नीमके स्वभावको प्राप्त

हो जाता है । वि- इसीतरह चारित्रमें प्रमाद करनेवालेके सहवाससे अच्छा साधु भी प्रमादी हो जाता है ॥ ६२ ॥

पंक्कणकुले वसंतो, सउणी पारोवि गहहिओ होई ।
इय दंसण सुविहिआ, मज्झि वसंता कुसीलाणं ॥६३॥

चंडाल (भंगी)के कुलमें निवास करनेवाला ज्योतिषी निन्दनीक होता है, इसीतरह शुद्ध ब्रह्मचारी भी कुशीलियोंकी सोवतमें रहनेसे जगतमें निन्दनिक हो जाता है ॥६३॥

॥ उत्तम पुरुषकी संगतसे होनेवाला लाभ ॥

उत्तम जण संसग्गी, सील दरिद्दंपि कुणइं ।
जह मेरुगिरिविलग्गं, तणंपि कणगत्तण सुवेई ॥६४॥

उत्तम पुरुषकी सद्संगति कुशीलियेको शीलवान बना देती है। जिसतरह मेरू पर्वतके साथ लगा हुआ घासका तृण भी सुवर्णमय बन जाता है । इस लिए अच्छे साधु मुनिराजोंकी सोवत करनी चाहिए ॥६४॥

मिथ्यात्व, महादोषको उत्पन्न करता है ।

नवि तं करेसी अग्गी, नेव विसं नेव किन्हसप्पो अ ।
जं कुणइ महादोसं, तिंव्व जीवस्स मिच्छत्तं ॥ ६४ ॥

तिव्र मिथ्यात्व, आत्माको जितना दुखित करता है उतना दुखित अग्नि, विष (जहर) और काला सर्प भी नहीं करता.॥६५॥

मिथ्यात्वके होनेसे सब निरर्थक है ।

कट्ठं करेसि अप्पं, दमेसि अत्थं चयंसि धम्मत्थं ।
इक्क न चयंसि मिच्छत्त विसलवं जेणवुड्डिहसि ॥ ६६ ॥

काष्टको सहन कर आत्माका दमन करता है और धर्मार्थ द्रव्यको त्याग करता है, फिर भी जहरके समान मिथ्यात्वको जो नहिं छोडती है तो पूर्वोक्त सभी बातें निरर्थक हैं। क्योंकि जीव मिथ्यात्वसे संसार समुद्रमें डूबता है॥ ६६ ॥

यत्नाकी प्राधान्यता ।

जयणा य धम्मजणणी, जयणा धम्मस्स पालणी चेव ।
तवबुड्ढिकरी जयणा, एगंतसुहावहा जयणा ॥६७॥

जयणा धर्मका मत्ता है, जयणा धर्मकी रक्षक है, जयणा तप की वृद्धि करनेवाली है और एकान्त सुखको देनेवाली भी जयणा ही है। वि. सम्यक् ज्ञानसे विचार करके जो क्रिया करते हैं उसको यतना (जयणा) कहते हैं और यत्नापूर्वक यत्न करनेसे "स्व" "पर" जीवों की रक्षा होती है और धर्मका पालन भी होता है ॥६७॥

कषायका फल ।

जं अज्जिअं चरित्तं, देसूणाए अ पुव्वकोडीए ।
तं पुण कसाय मित्तो, हारेइ नरो मुहुत्तेणं ॥६८॥

कुछ कम पूर्व क्रोड वर्ष तक चारित्र पालन करनेसे जो चारित्रगुण पैदा होता है, उसको प्राणीमात्र कषायके उत्पन्न होनेसे एक क्षण भरमें हारजाता है।

वि. महाविदेह क्षेत्रमें और भरत क्षेत्रमें श्री ऋषभदेवजी के समयमें चौरासी लक्ष वर्षका एक पूर्वांग और चौरासी लक्ष पूर्वांगका एक पूर्व होता है ऐसा एक क्रोड पूर्वका आयुष्य होता

है । कोई भव्यात्मा पुरुष आठ वर्ष तक चारित्र पाले उससे जो गुण प्राप्त हो उन सब गुणोंको क्रोद्धादिक कषाय करनेवाला पुरुष क्षणभरमें नाश कर डालता है ॥६८॥

चारों कषायके दोषोंकों अलग २ बताते हैं।

(अनुष्टुब वृत्तम्)

कोहो पीई पणासेई, माणो विणयनासणो ।
माया पित्ताणि नासेई, लोहो सव्व विणासणो ॥ ६९ ॥

क्रोद्ध प्रीतिका नाश करता है, मान विनयका नाश करता है, माया मित्राईका नाश करती है, और लोभ सब (गुणों) चीजोंका नाश करता है। इसलिए चारो कषायोंको छोडनाही अच्छा है ॥६९॥

क्षमाके गुण ।

(आर्यावृत्तम्)

खंती सुहाण मूलं, मूलं धम्मस्स उत्तमा खंती ।
हरइ महा विज्जा इव, खंती दुरियाइं सव्वाइं ॥ ७० ॥

क्षमा सुखोंका मूल है । धर्मका मूल भी क्षमा ही है। महा विद्या (चमत्कारि) की तरह क्षमा सर्व दुरित (पाप) को दूर करती है ॥७०॥

पापी साधुका लक्षण ।

(अनुष्टुब् वृत्तम्)

सयं गेहं परिच्चज्ज, परगेहं च वावडे ।
निमित्तेण य ववहरई, पावसमणुत्ति वुच्चई ॥७१॥

अपना घर छोड़कर पराये घरोंको देखा करता है, दूसरेके ताईं ममत्वको धारण करता है और निमित्तसे व्यवसायोंको (ज्योतिष वतलाकर) करता है, उसको पापाश्रम कहते हैं ॥७१॥

दुद्ध दही विगईओ, आहारेई अभिक्खणं ।
न करेइ तवोकम्मं, पावसमणुत्ति वुच्चई ॥७२॥

' दूध ' ' दहीं ' घृतादि विगयों (वीर्यवर्धक पुष्ट पदार्थों) को पुनः२ खाता पीता है और तपश्चर्यादि कर्म नही करता है उसको " पापाश्रमण " कहते हैं ॥ ७२ ॥

पांच प्रमादोंको सेवन करनेका नतीजा ॥

(आर्यावृत्तम्)

मज्जं विसय कसाया, निंदा विकहा य पंचमी भणिया ।
ए ए पंच पमाया, जीवं पाडंति संसारे ॥७३॥

मद्य (शराव—दारू) विषय (पांच इन्द्रियोंका) कषाय, निद्रा, और पांचमी विकथा इन पांच प्रमादोंको जो पुरुष प्रतिदिन सेवन करता रहता है वह संसारमें डूवता ही रहता है ।

वि. मदिराका सेवन सव दोषोंको उत्पन्न करनेवाला है पांच इन्द्रियोंके विषयि मनोहर पदार्थमें मूर्छा करता है । क्रोद्धादि आत्म हितको नाश करता है । निद्रा ज्ञान ध्यानमें व्याघात डालती है । और विकथा अमुल्य समयको नष्ट करती है । इसलिए इन पांच प्रमादोंसे जीवोंको संसारमे जन्म मरण करना पड़ता है।७३।

अधिक निद्रासे हानी ।

जइ चउदसपुव्वधरो, वसई निगोएसुऽणं तयं कालं ।
निद्दापमायवसओ, ता होहिसि कह तुमं जीव ॥७४॥

जब निद्रारूप प्रमादके वश होकर चौदह पूर्वधारी निगोदके अन्दर अनन्तकाल तक रहते हैं तो हे जीव! तेरा क्या होगा? अर्थात् तूं रात और दिन निद्रारूपी प्रमादके वश पड़ा है तो कदापि आत्म कल्याण नहीं कर सकेगा। इसलिए अधिक निद्राको छोड़! और ज्ञान ध्यानमें लीन हो! ॥७४॥

ज्ञान और क्रियाकी आवश्यक्ता ।

(अनुष्टुब वृत्तम्)

हयं नाणं कियाहीणं, हया अन्नाणओ किया ।
पासंतो पंगुलो दड्ढो, धावमाणो अ अंधओ ॥७५॥

क्रियाहीन जो ज्ञान वह हणाया हुआ है। और ज्ञानहीन क्रिया सोभी हणाई हुई है अर्थात् ज्ञानसे शुभाशुभ कृत्य जानता है, परंतु जो शुभ क्रिया नहीं करता है तो कुछ भी सिद्धि नहीं होती। दृष्टान्तसे भी सिद्ध है कि पंगुला देखता हुआ जलता है और अन्धा दौड़कर जलता है।

वि० धर्मक्रियामें प्रमाद करनेवाला पुरुष वस्त्र, पात्र, रहनेका स्थानादिकी तपास–चौकस नहीं करता, प्रमार्जन नहीं करता, जिससे अंधेरेमें अपनी आत्मघात होती है इसलिए ज्ञानीको भी निरंतर क्रियामें रक्त रहना उचित है। और सचित, अचितका भेद

ज्ञानसे होता है इसलिए ज्ञानाभ्यास अवश्य करना चाहिए । ज्ञान और क्रियाके मिलनेसे ही मुक्तिकी प्राप्ति होती है । जैसे किसी जंगलमें आग लगने पर अंधा पंगुको लेकर आज्ञानीसे वच सकता है परन्तु अकेला नहीं वच सक्ता ॥ ७५ ॥

(उपजाति वृत्तम्)

संजोग सिद्धि अ फलं वयंति, न हु एग चक्केण रहो पयाई ।
अंधो य पंगोय वणए समिच्चा, ते संपणठ्ठा नगरं पविट्ठा॥७६॥

विद्वान पुरुष ज्ञान और क्रियाके संयोगसे ही मोक्षपदकी प्राप्ति करते है, क्योंकि एक पहियेसे रथ चल नहीं सकता, जवतक कि दो पहियोंका ममागम न हो । जैसे अंधेके कंधे पर पगुला वैठ गया और सिधा रास्ता वतलाता गया जिससे दोनों अपने नगरको पहुँच गए ॥ ७६ ॥

चारित्रकी प्राधान्यता ॥

(आर्यावृत्तम्)

सुवहुंपि सुअममहीअं,, किंकाही चरणविप्पहीणस्स ।
अंधस्स जह पलित्ता, दीवसयसहस्सकोड़ीओ ॥७७॥

अत्यन्त ज्ञानाभ्यास क्रिया हो तो भी वह ज्ञानाभ्यास चारित्र रहितको मोक्षके लिए नहीं होता है । और वह चारित्र रहित पुरुष कुछ परमार्थ नहीं कर सक्ता है । अर्थात् कुछ भी आत्म तत्त्वज्ञान नहीं मिल सक्ता । जैसे लाखों क्रोड़ों दीपक प्रज्वलित करनेसे अन्धेको कुछ भी लाभ नहीं पहुँचता, इस तरहसे चारित्रहीन ज्ञानीका हाल है ॥७७॥

अप्पंपि सुअमहीअं, पयासगं होइ चरण जुत्तस्स ।
इक्कोवि जह पईवो, सचक्खु अस्सा पयासेई ॥ ७८ ॥

चारित्रयुक्त पुरुषोंको कम पढी हुई विद्या भी प्रकाश करनेवाली होती है, जैसे चक्षुवालेको एक दीपक भी प्रकाश देता है वैसेही अच्छे उद्यमसे 'क्षयोपशम' के अनुसार थोडासा विद्याभ्यास कर अच्छा चारित्र पालकर श्रुत पारंगामी होकर केवलज्ञानको प्राप्त करता हुआ मोक्षपदको प्राप्त करता है ॥७८॥

श्रावककी ग्यारह पडिमा ।

दंसण वय सामाइय, पोसह पडिमा अबंभ सच्चित्ते ।
आरंभ पेस उद्दिठ्ठ वज्जए समणभूए अ ॥ ७९ ॥

समकित प्रतिमा १ व्रत प्रतिमा २ सामायिक प्रतिमा ३ पौषध प्रतिमा ४ कायोत्सर्ग प्रतिमा ५ अब्रह्मवर्जक प्रतिमा ६ सचित वर्जक प्रतिमा ७ आरंभ वर्जक प्रतिमा ८ प्रेष्यवर्जक प्रतिमा ९ उद्दिष्ट बर्जक प्रतिमा १० और श्रमणभूत प्रतिमा ११ इनका विशेष वर्णन श्रीमान् न्यायांभोनिधि जैनाचार्य्य श्रीमद्विजयानंद-सूरीश्वर (श्री आत्मारामजी महाराज) के बनाए हुए ग्रथ 'जैनतत्त्वादर्श' आदिसे देख लेवें ॥७९॥

श्रावकको प्रतिदिन क्या श्रवण करना चाहिए।

संपत्तदंसणाई, पईदियह जइजणाओ निसुणेई ।
सामायारिं परमं, जो खलुं तं सावगं बिंति ॥ ८० ॥

जिसने सम्यक्त्व प्राप्त किया है अर्थात् निखिल दर्शनादि प्रतिमाएं जिसने आराधन की है ऐसे श्रावक प्रतिदिन मुनिजनोंके

पास परम उत्कृष्ट ऐसी समाचारीको सुने । निस्सन्देह श्री तीर्थंकर देव उसको श्रावक कहते हैं ॥८०॥

(उपजाति वृत्तम्)

जहा खरो चंदण भारवाही, भारस्स भागी न हु चंदणस्स ।
एवं खु नाणी चरणेण हीणो, भारस्सभागी न हु सुग्गईए ॥८१॥

चन्दनके काष्टको उठानेवाला गर्दभ, केवल भारमात्रको ही उठाता है । लेकिन वह चन्दनके लेपकी शीतलताको प्राप्त नहीं कर सक्ता, वैसेही चारित्र, धर्महीन ज्ञानी पुरुष सिर्फ ज्ञानका बोझ उठानेका ही भागी है न कि सद्गतिके परम शान्तिके स्थानका भागी है ॥८१॥

स्त्रीसंगमें रहे हुए दोषोंका वर्णन ।

(अनुष्टुब वृत्तम्.)

नहिं पंचिंदि आजीवा, इत्थीजोणी निवासिणो ।
मणुआणं नवलक्खा, सव्वे पासेई केवली ॥८२॥

स्त्रीकी योनिके निवासी, ऐसे नौ लक्ष पंचेंद्रिय मनुष्य हैं उन सबको केवल ज्ञानी देख सक्ते हैं । वि. स्त्रीका रूधिर (खून) और पुरूषके वीर्यके मिलनेसे नौलक्ष पंचेन्द्रिय मनुष्य उत्पन्न होते हैं। उनमेंसे दो तीन जीवोंको छोड कर बाकीके सब नाश भावको प्राप्त होते हैं। इस वर्णनको केवली भगवान जानते हैं ॥८२॥

(आर्यावृत्तम्)

इत्थीणं जोणीसु, हवंति बेइन्दिया य जे जीवा ।
इक्कोय दुन्नि तिन्निवि, लक्खपहुत्तं तु उक्कोसं ॥८३॥

स्त्रीकी योनीके अंदर बेइन्द्रि जीव जो हैं उनकी संख्या शास्त्रकारने एक, दो या तीन उत्कृष्टा लाख पृथक्त्व कही हुई है ॥८३॥

पुरिसेण सहगयाए, तेसिं जीवाण होइ उद्दवणं ।
वेणुअ दिट्ठंतेणं, तत्ताइ सिलागनाराणं ॥ ८४ ॥

गरम की हुई लोहेकी सली को रूईसे भरी हुई नलीमें दाखिल करनेके दृष्टान्तसे पुरुष स्त्रीके संयोग होनेसे उन पूर्वोक्त जीवोंका नाश होता है।

वि० शरीरके मलीन स्थानोंमें, योनी अधिक मलिनताका स्थान है। उसमें अनेक सूक्ष्म जीव उत्पन्न होते हैं, उन सभीका नाश पुरुषके समागमसे ही होता है। शास्त्रकार कहते है कि पोले वांसकी भूंगलीमें अच्छी तरह रूई भरकर उसमें खूब गरम कियी हुई लोहकी सली डालनेसे वह रूई फोरन जलजाती है। इसी तरह पुरुषके संयोगसे स्त्रीकी योनीके जीवोंका नाश होता है ॥८४॥

इत्थीण जोणिमज्झे, गप्भगयाइं हवंति जे जीवा ।
उप्पज्जंति चयंति य, समुच्छिमा असंखया भणिया ॥८५॥

स्त्रीकी योनीमें उत्पन्न होनेवाले जो जीव हैं; वे उत्पन्न होते हैं और नाश होते हैं और सम्मूर्छिम जीव भी असंख्यात कहे है।८५।

मेहुण सन्नारूढो, नवलक्ख हणेई सुहुम जीवाणं ।
तित्थयरेणं भणियं, सद्दहियव्वं पयत्तेणं ॥ ८६ ॥

स्त्रियोंका कामी मनुष्य नव लाख सूक्ष्म् जीवोंका नाश करता है। इसलिए श्री तीर्थंकर देवने कहा है कि तुच्छ सुखके कारण आत्म हितका नाश करना उचित नहीं ॥८६॥

(उपजाति वृत्तम्.)

असंख इत्थी नर मेहुणाओ, मुच्छंति पंचिंदिय माणुसाओ।
निसेस अंगाण विभत्ति अंगे, भणई जिणो पन्नवणा उवंगे।८७।

स्त्री और पुरुषके मैथुनसे असंख्यात सम्मूर्छिम मनुष्य उत्पन्न होते हैं, ऐसा सम्पूर्ण सूत्रोंमें कहा है ॥८७॥

(अनुष्टुब वृत्तम्.)

मज्जे महुंमि मंसंमि, नवणीयंमि चउत्थए ।
उप्पज्जंति असंखा, तव्वन्ना तत्थ जंतुणो ॥८८॥

मदिरा (शराब) में, मांस में, मधु (शहद)में, और मक्खन मे, इनहीके सदृश असंख्य जन्तु पैदा होते हैं ॥८८॥

(आर्यावृत्तम्.)

आमासु अ पक्कासु अ, विपच्चमाणासु मंसपेसीसु ।
सययं चिय उववाओ, भणिओ अ निगोअजीवाणं।८९।

कच्चे मांसमें, पक्के मांसमें, पकते हुए मांसकी पेसी (टूकडे) में निरन्तर निगोदिये जीवोंकी उत्पत्ति कही है ॥८९॥

व्रत [नियम] तोड़नेका परिणाम ।

आजम्मं जं पाव, बंधइ मिच्छत्त संजुओ कोई ।
वयभंग काउमणो, बंधइ तंचेव अट्ठगुणं ॥९०॥

मिथ्यात्त्वसे युक्त प्राणी जन्मपर्यन्त जितना पाप उपार्जन करते हैं, उससे भी आठगुणा पाप व्रत (नियम) को तोड़नेके परिणामवालेको लगता है ।

(अनुष्टुब्‌ वृत्तम्‌)

सयसहस्साण नारीणं, पिट्टं फाडेइ निग्घिणो ।
सत्तट्ठमासिए गब्भे, गप्फडंते निकत्तइ ॥ ९१ ॥

(आर्यावृत्तम्‌)

तं तस्स जत्तियं, पावं तं नवगुणिय मेलियं हुज्जा ।
एगित्थि य जोगणं, साहुवंधिज्ज मेहुणओ ॥ ९२ ॥

एक लाख गर्भवती स्त्रियोंके पेट निर्दयतासे फाड दिये जायं, और उनमेंसे बाहार निकले हुए सात आठ मासके तडफते हुए गर्भोंको मारडाले तो प्राणी को जितना पाप लगता है उससे नौ गुणा पाप साधु को एक स्त्री के संयोग से मैथुन सेवन करने में लगता है ॥९१॥ ९२॥

सम्यक्त्व किसके पास ग्रहण करना योग्य है ।

अखंडीय चारित्तो, वयधारी जो व होई गीहत्थो ।
तस्स सगासे दंसण, वयगहणं सोहिकरणं च ॥ ९३ ॥

अखंड चारित्रवंत मुनि अथवा व्रत धारि गृहस्थ हो उसके पाससे सम्यक्त्व (समकित) तथा व्रत (नियम) ग्रहण करना और प्रायश्चित्त भी उससे लेना योग्य है ॥९३॥

स्थावर जीवोंमें रहे हुए जीव ।

अद्दामलय पमाणे, पुढवीकाए हवंति जे जीवा ।
तं पारेवय मित्ता, जंबू दीवे न मायंति ॥ ९४ ॥

हरे आमले माफीक पृथ्वीकायमें जो जीव रहते हैं उन

सबका शरीर यदि कबुतरके समान हो जाय तो जम्बु द्विपके अन्दर भी वे जीव नहीं समा सक्ते ॥९४॥

एगंमि उदगबिंदुमि,जे जीवा जिणवरे हिं पन्नत्ता।

ते जइ सरिसवमित्ता, जंबूदीवे न मायंति ॥९५॥

एक पानीकी बूंदमें जो जीव जिनेश्वरदेवने कहे हैं वे सिर्फ सरसवके दाने जितने शरीर होजायं तो वे जीव जंबुद्विपके अंदर भी नहीं समा सक्ते ॥९५॥

बरंटतंदुलमित्ता, तेउकाए हवंति जे जीवा।

ते जइखस खसमित्ता, जंबू दिवे न मायंति ॥९६॥

बंटी–तन्दुल (चावल) सिर्फ तेउकायके अन्दर जितने जीव है उनको यदि खसखसके दाने समान शरीरवाले करे तो वे जीव भी जंबूद्विपके अन्दर आ नही सक्ते ॥९६॥

जे लिंब पत्तमित्ता, वाउकाए हवंति जे जीवा ।

तं मत्थयलिक्खमित्ता, जंबू दीवे न मायंति ॥९७॥

नीमके पत्ते जितने स्थानके रोकनेवाले वायुकायमें जो जीव है वे प्रत्येक सीर की लीख जितने ही शरीरवाले करे तो जंबूद्विपमें नहीं समा सक्ते ॥ ९७ ॥

असुइठाणे पडिआ, चंपकमाला न कीरइ सीसे ।

पासत्थाई ठाणे, सुवट्टमाणो तह अपुज्जे ॥ ९८ ॥

पासत्थाके संगमें निवास करनेवाले मुनि अवन्दनिक है। अपवित्र स्थानके अंदर गिरी हुई चमेलीके पुष्पकी मालाको पुरुष पुन उसे ग्रहण नहीं करता उसी तरह पासत्थादिकके सहवासमे

निवास करनेवाले मुनि भी अपूज्य हैं अर्थात् पूजनेके योग्य नहीं हैं॥९८॥

छट्ठट्ठम दसम दुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं ।
इत्तोउ अणेगगुणा, सोहा जिमियस्स नाणिस्स ॥९९॥

'छट्ठम' 'अट्ठम' 'दसम' 'दुवालस' और मास खमण करनेसे जो शोभा देता है उससे भी अधिक शोभा प्रतिदिन भोजन करनेवाले ज्ञानीकी है ।

वि० ज्ञानसे विमुख गृहस्थ या लोकोंको खुश करनेके लिए जो तपश्चर्या करे और शोभा प्राप्त करे, उससे भी अधिक ज्ञान ध्यानमें रक्त साधु किसी कारण विशेषसे तपश्चर्या न करे तो भी शोभा पाता है ॥९९॥

जं अन्नाणी कम्मं, खवेइ बहुआइं वासकोडीहिं ।
तन्नाणी तिहिगुत्तो, खवेइ उस्सासमित्तेणं ॥१००॥

क्रोड़ों वर्ष तक अज्ञानी जितने कर्मोंको क्षय करता है उतने कर्मोंको ज्ञानी पुरुष तीन गुप्ति युक्त वर्त्तता हुआ सिर्फ श्वासोस्वासमें क्षय करता है ॥ १०० ॥

देव द्रव्यकी रक्षा करनेका फल ।

जिणपवयणवुड्ढिकरं, पभावगं नाणदंसणगुणाणं ।
रक्खंतो जिणदव्वं, तित्थयरत्तं लहइ जीवो ॥१०१॥

जिन प्रवचनकी वृद्धि करनेवाला और ज्ञान दर्शन गुणका प्रभावक तथा देवद्रव्यका रक्षण करनेवाला जीव तीर्थंकर गोत्रको प्राप्त करता है ।

वि० जिनेश्वरदेवके तत्वज्ञानको जगतभरमें फैलावे और जिनेश्वरदेवके कहे हुए तत्त्वोंकी उत्तमताको भव्यात्माओंके हृदयमें श्रद्धान करवावे और देवद्रव्यकी रक्षा करे। इन कृत्योंके करनेसे जीव तीर्थंकर गोत्र प्राप्त करता है ॥ १०१ ॥

जिणपवयणवुड्ढिकरं, पभावगं नाणदंसणगुणाणं ।
भरक्खवतो जिणदव्वं, अणंतसंसारिओ होई ॥१०२॥

जिन प्रवचनकी वृद्धि करने वाला और ज्ञान दर्शन गुणका प्रभावक हो लेकिन प्रमादवश होकर देव द्रव्यका नाश करे या दुरुपयोग करे तो वह जीव अनंत संसारी हो जाता है ॥ १०२ ॥

(अनुष्टुब् वृत्तम्.)

भक्खंवेइ जो उवेक्खंवेई, जिणदव्वं तु सावओ ।
पन्नाहीणो भवे जीवो, लिप्पइ पावकम्मुणा ॥१०३॥

जो श्रावक देव द्रव्यका भक्षण करता है, अथवा नाश होते हुए उपेक्षा करे तो वह जीव बुद्धिहीन हो जाता है। और पापोंसे लिप्त हो जाता है ॥ १०३ ॥

चार बड़े अकार्योंको छोड़ना चाहिए।

(आर्यावृत्तम्.)

चेइअदव्वविणासे, रिसिघाए पवयणस्सउड्डाहे ।
संजइचउत्थभंगे, मूलग्गी बोहिलाभस्स ॥१०४॥

देव द्रव्यका नाश करनेवाला, एवं मुनिकी घात करनेवाला, प्रवचनका उड्डाह करनेवाला और साध्वीके चतुर्थ व्रत (ब्रह्मचर्य)

का भंग करनेवाला, समकित रूपी वृक्षके मूलमें अग्निको रखता है अर्थात् सम्यक्त्व प्राप्त करके नाश कर देता है और दुर्लभ बोधि हो जाता है ॥ १०४ ॥

पूजा करनेके भाव भी अत्यंत ही फलदायक हैं।

सुव्वइ दुग्गयनारी, जगगुरुणो सिंदुवारकुसुमेहिं ।
पूआपणिहाणेहिं, उप्पन्ना तियसलोगंमि ॥१०५॥

सुनते हैं कि एक दरिद्री स्त्रीने सिन्दवर (फूलकी एक जाति)के पुष्पोंसे प्रभूकी पूजा करनेमें दृढ भावना रखी थी, जिससे देवलोकमें उत्पन्न हुई। इसलिए भव्यात्माओंको शक्ति अनुसार देव पूजनमें समय लगाना चाहिए ॥१०५॥

गुरुको वन्दन करनेका फल।

तित्थयरत्तं सम्मत्तखाइयं सत्तमी तईयाए ।
वंदण एणं विहिणा, बद्धं च दसारसीहेणं ॥१०६॥

श्री तीर्थंकर पद, क्षायिक समकित, और सातवीं नरकसे तीसरी नरकका बंध गुरुको वदन करने (विधिपूर्वक वांदने) से कृष्णजीने उपार्जन किया।

वि० श्री कृष्णजीने सातवी नरकके कर्मके दलये एकठे किये थे किन्तू श्रीनेमिनाथको अठारह हज़ार साधुओंके साथ विधिपूर्वक वन्दन किया जिससे क्षायिक समकित, तीर्थंकर गोत्र, प्राप्त कर चार नारकीके दुःखको दूर किया। निश्चल समकितको क्षायिक समकित कहते है, जो प्राप्त हो जाने बाद नष्ट नहीं होता ॥१०६॥

द्रव्यस्तवका स्थापन ।

अकसिणपवत्तगाणं, विरयाविरयाण एस खलु जुत्तो ।
संसारपयणु करणे, दव्वत्थए कूवदिट्ठंतो ॥१०७॥

समस्त प्रकारसे धर्मकार्यमे नहीं प्रवृत्त हुए, ऐसे विरता-विरतिश्रावकको उस संसारको पतला करनेके लिए द्रव्यस्तव आचरने योग्य है । उसके लिए कूपका दृष्टान्त देते है ।

वि० संसारमें मोह नष्ट होनेसे गृहस्थि श्रावक भी यथा-शक्ति व्रत (नियम) पच्चाखाणको धारण करता हुआ देश विरति होकर वीतरागका वहुत मान करके अपनी संपत्ति (धन) को जिनेन्द्रको पूजनमें लगावे । और संसारमें परिग्रह कम रखे, तो पूजामें अल्प हिंसा होनेपर भी वहुत लाभ प्राप्त करता है । क्योंकि कूएको खोदते वक्त कितना ही कष्ट होता है लेकिन जब पानी निकलता है उस समय सब कष्ट दूर हो जाता है और परमानंद प्राप्त होता है । इसी तरह वीतरागकी पूजन कर-नेसे द्रव्य मूर्छा कम हो जानेसे, भविष्यमें साधु पदको प्राप्त करता है ॥ १०७ ॥

क्रोधका फल ।

अणथोवं वणथोवं, अग्गीथोवं च कसायथोवं च ।
न हुते विससिअव्वं, थोवंपि हु तं बहू होई

ऋण (कर्ज) कम हो, व्रण (फोड़ा
अग्नि कम हो, और कषाय भी कम हो; लेकिन

करना । क्योंकि ये सब थोड़े हों तो भी अधिक हो जानेका संभव है । अर्थात् इन्हे बढते हुए समय नहीं लगता ॥ १०८ ॥

मिच्छामि दुक्कडंका प्रवर्त्तन. ।

जं दुक्कडंति मिच्छा, तं भुज्जो कारणं अपूरंतो ।
तिविहेण पडिक्कंतो, तस्स खलु दुक्कडं मिच्छा ॥१०९॥

जो दुष्कृतको मिथ्या करे और दुष्कृत संबंधी कारणको पुनः नही सेवन करे और जो पडिक्कमें (प्रायश्चित लेवे) तो उसका सत्य मिथ्या दुष्कृत जानना ॥१०९॥

जंदुक्कडंति मिच्छा,तं चेव निसेवइ पुणो पावं ।
पच्चक्खमुसावाई, मायानियडिप्पसंगो अ ॥११०॥

जो दुष्कृत्य (पाप)को मिथ्या करे, उसी पापके कारणको पुनः सेवन करे तो प्राणियोंको प्रत्यक्ष मृषावादी और मायावी (कपटी) निबिड प्रसंगवाला जानना । यानि वह पुरुष वास्तवमें कपटी और झूठा साबित होता है ॥११०॥

मिच्छामि दुक्कडं शब्दका अर्थ ।

मिति मिउ मद्दवत्ते, छत्तीदोसाण छायणे होई ।
मित्तिअ मेराइठिओ, दुत्ति दुगंछामि अप्पाणं ॥१११॥
कत्ति कडं मे पावं, डत्तिय डेवेमि तं उवसमेणं ।
एसो मिच्छादुक्कड, पयक्खरत्थो समासेणं ॥११२॥

"मि"—"मृदु" मार्दवताके अर्थमें है, "च्छा"—दोषोंका आच्छादन (ढकना) के अर्थमें है । "मि"—मर्यादामें रहनेके

लिए और "दु"—आत्माकी मलिनताकी दुर्गंच्छा करनेके अर्थमें है। "क"—मेरे किये हुए पापोंका सूचक है और "ड"—उन पापोंको उपशम द्वारा जला देता हूँ ऐसे कहते है। इसमाफीक "मिच्छामि दुक्कड" शब्दका अर्थ एक २ अक्षर-पर संक्षेपसे कहा गया ॥१११॥११२॥

॥ चार प्रकारके तीर्थोंका वर्णन् ॥

नामं ठवणा तित्थं, दव्वं तित्थं च भाव तित्थं च।
इक्किक्कंमि य इत्तो, ऽणेगविहं होई नायव्वं ॥११३॥

नाम तीर्थ, स्थापना, द्रव्य तीर्थ और भाव तीर्थ इस प्रकार मुख्यतया तीर्थके चार भेद है। एक २ के अनेक भेद है सो अन्य शास्त्रोंसे जानना चाहिये ॥ ११३ ॥

दाहोवसमं तन्हाइ छेयणं मलपिवाहणं चेव।
तिहिं अत्थेहि निउत्तं, तम्हा तं हव्व ओतित्थं ॥११४॥

दाहका उपशम करना, तृष्णाको शान्त करना, और मलको दूर करना; इन पूर्वोक्त तीन बातोंसे युक्त हो तो उसे द्रव्य तीर्थ कहते हैं ॥ ११४ ॥

॥ भाव तीर्थका स्वरूप ॥

कोहंमिउ निग्गहिए, दाहस्स उवसमणं हवइ तित्थं।
लोहंमिउ निग्गहिए, तन्हाए छेयणं होई ॥११५॥
अट्ठविहं कम्मरयं, बहुएहि भवेहिं संचियं जम्हा।
तवसंजमेण धोवइ, तम्हा तं भावओतित्थं ॥११६॥

क्रोध्का निग्रह करनेसे दाहको उपशम रूपी तीर्थ हो, और लाभको निग्रह होनेसे, तृष्णाके छेदत्तरूप तीर्थ होता है। आठ प्रकारके कर्मरूपी रज बहुत भवो भवसे जो संचय किये है वे तप और संयमसे धोये जाते है। फ़िर जो निर्मल आत्मा होता है उसको भाव तीर्थ कहते है ॥११५॥११६॥

दंसणनाणचरित्ते, सुनिउत्तं जिणवरेहिं सव्वेहि।
एएण होइ तित्थं, ऐसो अन्नोवि पज्जाओ ॥११७॥

ज्ञान, दर्शन और चरित्र युक्त हो उसको सर्व जिनेश्वर देवोंने तीर्थरूप कहा है। जिससे ये रत्नत्रयके संयुक्त होनेसे तीर्थ कहलाते है। इसी तरह अन्य पर्याय भी शास्त्रोंसे जानना चाहिए ॥ ११७ ॥

सव्वो पुव्वकयाणं, कम्माणं पावए फलविवायं।
अवराहेसु गुणेसुअ, निमित्तमित्तं परो होइ ॥११८॥

तमाम जीव पूर्वकृत कर्मानुसार फलको प्राप्त करते है अपराधके विषयमें और गुणके विषयमें दूसरे तो निमित्त मात्र ही समझना चाहिए ॥११८॥

धारिज्जइ इत्तोजलनिही विकल्लोलभिन्नकुलसेलो।
न हु अन्नजम्मनिम्मिय, सुहासुहो कम्मपरिणामो ॥११९॥

स्वकीय कल्लोलें करके बडे पर्वतको जिसने भेदन कर दिया है ऐसे समुद्रको धारण कर सक्ते है, लेकिन अन्य जन्मके किये हुए कर्मोंके परिणामको धारण नहीं कर सक्ते। अर्थात पूर्व संचित कर्म विनाभोगे छुटकारा नहीं है ॥११९॥

अकयं को परिभुंजइ, सकयं नासिज्ज कस्स किरकम्मं।
सकयमणुभुंजमाणो, कीस जणो दुम्मणो होई ॥१२०॥

नहीं किये हुए कर्मोंको कौन भोगता है? खुद किये हुए कर्म किसके नाश होते हैं? अर्थात् बिना किये कर्मोंको कोई भी नही भोगता; और किये हुए कर्म कदापि नाश नहीं होते है। तब अपने कर्मोंकों भोगता हुआ प्राणी क्यों दुर्मनवाला होता है? ॥१२०॥

पौषधका फल ।

पोसइ सुहभावे, असुहाइ खवेइ नत्थि संदेहो ।
छिंदइ नरयतिरियगइ, पोसहविहि अप्पमत्तो य ॥१२१॥

पौषधकी विधिके विषय अप्रमत्त—अप्रमादी ऐसे मनुष्य शुभ भावका पोषण करते है। अशुभ भावका क्षय करते हैं। और नरक तिर्यंच गतिका नाश करते है इसमें कोई सन्देह नही है ॥ १२१ ॥

॥ जिनपूजा कितने प्रकारकी है? ॥

वरगंधपुप्फ अक्खय, पईवफलधूवनीरपत्तेहिं ।
नेविज्जविहाणेण य, जिणपूआ अट्ठहा भणिया ॥१२२॥

श्रेष्ठ १ गंध २ पुप्प ३ अक्षत (चावल) ४ दीपक ५ फल ६ धूप ७ जलपात्र ८ और नैवेद्यके विधान करके जिनेश्वर देवकी अष्ट प्रकारकी पूजा होती है ॥ १२२ ॥

॥ जिनेश्वर देवकी पूजाका फल ॥

उवसमइ दुरियवग्गं, हरइ दुहं कुणइ सयलसुक्खाइं ।
चिंताईयंपि फलं, साहइ पूआ जिणंदाणं ॥१२३॥

श्री जिनेश्वरदेवकी पूजा सर्व पापोका नाश करनेवाली है। और तमाम दुःखोंको दूर करती है; समस्त सुखोंको उत्पन्न करती

है । और चिन्तातीत चिन्तवनसे भी अशक्य ऐसे मोक्षफलको प्रदान करनेवाली है ॥ १२३ ॥

॥ धर्मकार्यमें पुण्यकी प्रबलता ॥

धन्नाणं विहिजोगो, विहिपक्खाराहगा सया धन्ना ।
विहिबहुमाणा धन्ना, विहिपक्ख अदुसगा धन्ना ॥१२४॥

विधिका योग धन्य पुरुषोंको होता है । विधिपक्षके आराधन करनेवालेको सदैव धन्य है । विधिका बहुमान्य करनेवालेको धन्य है । और विधिपक्षको दोष न दे उसको भी धन्य है ॥१२४॥

इस ग्रंथको पढनेसे होनेवाला फल ।

संवेगमणो संबोहसत्तरिं जो पढइ भव्वजिवो ।
सिरिजयसेहरठाणं, सो लहइ नत्थि संदेहो ॥१२५॥

संवेग युक्त मनवाले होते हुए जो भव्यात्मा इस संबोधसत्तरि प्रकरणको एकाग्र चित्त कर पढ़ता है वह श्री जयशेखर स्थान–मोक्षस्थानको प्राप्त करे इसमें कोई सन्देह नही है ॥१२५॥

(अनुष्टुब् वृत्तम्.)

श्रीमन्नागपुरीयाह्व, तपोगणकजारुणाः ॥
ज्ञानपीयूषपूर्णांगाः सूरींद्रा जयशेखराः ॥१॥
तेषां पात्कजमधुपा, सूरयो रत्नशेखराः ॥
सारं सूत्रात् समुद्धृत्य, चक्रुः संबोधसप्ततिं ॥२॥

श्रीमन्नागपुरीय नामक तपगच्छरूपी कमलको सूर्य समान और ज्ञानरूपी अमृत द्वारा पूर्ण शरीरवाले श्रीमान् जयशेखर नामके सूरींद्रके चरण कमलमें भ्रमर समान श्रीरत्नशेखर नामके आचार्य्य महाराजने सूत्रोंमेंसे श्रेष्ट २ गाथाएं उद्धार कर यह सम्बोधसत्तरि नामक प्रकरणकी रचना की है ॥

॥ समाप्तमिदं पुस्तकम् ॥

Professor Dr Hermann Jacobi

M A P H D Bonn (Germany)

प्रोफेसर डॉ. हर्मन जेकोबी

एम ए. पी एच डी.—बोन (जर्मनी)

Jain Press Surat

वन्दे जिनवरम्

जैनियोंका तत्वज्ञान और चारित्र.

(जर्मनीके सुप्रसिद्ध संस्कृतज्ञ विद्वान् प्रो० एच जैकोबीके आक्सफोर्डके धार्मिक ऐतिहासिक परिषदमें पढ़े हुए एक व्याख्यानका आशयानुवाद)

१. जैनियोंके तत्वज्ञानके विषयमें जो पुरुष पहिले ही पहिल विचार करता है, उसे ऐसा विश्वास होता है कि इसमें एक दूसरेसे सम्बन्ध नहीं रखनेवाले अनेक सिद्धान्त है और उन सबका सामान्य तथा मूलभूत तत्व कोई भी नहीं है। उन्हें इस विषयमें बड़ा भारी आश्चर्य होता है कि इस अव्यवस्थित धर्मको अस्तित्व ही क्यों प्राप्त हुआ? इसके स्थापित होनेकी आवश्यकता ही क्या थी? कुछ दिन पहले मेरा भी ऐसा ही विश्वास था। परन्तु अब मैने जैनधर्मको एक दूसरे ही रूपमें अनुभव किया है। मुझे अब मालूम हुआ है कि, जैनधर्मकी स्थापना एक ऐसी तात्विक नीवपर हुई है जो कि ब्राह्मण और बौद्ध इन दोनों ही मतोंसे भिन्न है। वह नीव कौनसी है, आज मैं अपने व्याख्यानमें इसी बातका विचार करूंगा।

२. प्राचीन कालमें जिस प्रान्तमें याज्ञवल्क्य महर्षिने उपनिषदोंके कथनानुसार इस विषयका प्रतिपादन किया कि ब्रह्म और आत्मा ये ही विश्वके शाश्वत और केवल तत्व है और जहांपर महावीरस्वामीके समकालीन गौतमबुद्धने अपने क्षणिकवादका उपदेश किया, उसी प्रान्तमें अन्तिम जैन तीर्थंकर श्रीमहावीर स्वामीके द्वारा जैनधर्मको अन्तिम स्वरूप प्राप्त हुआ और इसीलिये उसे

उक्त दोनों परस्पर विरुद्ध धर्मोंकी अपेक्षासे अपने धर्मकी निश्चित नीव डालना आवश्यक हुआ।

३. उपनिषदोंके कर्त्ताओंने इस तत्वकी खोज की कि, प्रत्येक पदार्थमें रहनेवाला एक शाश्वत निराबाध और अद्वितीय तत्व सारे विश्वमें व्याप्त हो रहा है और इस तत्वकी उन्होंने जितनी उनसे हो सकी, उतनी महिमा गाई। यद्यपि इस शाश्वत अविनाशी तत्वका जड़विश्वके साथ क्या सम्बन्ध है, यह उन्होंने स्पष्ट रीतिसे नहीं बतलाया है, तथापि इसमें सन्देह नहीं है और प्रत्येक निष्पक्ष पुरुष इस बातको स्वीकार करेगा कि वे दृश्य जगत्‌को सत्य वा वास्तविक समझते थे। यद्यपि इस विषयमें **वेदानुयायियोंकी** भिन्न भिन्न शाखाओंने भिन्न भिन्न प्रकारके विचार प्रगट किये है, परन्तु उनकी मीमासा करनेकी यहा आवश्यकता नहीं है।

४. इस नित्य शुद्ध ब्रह्मवाले सिद्धान्तके विरुद्ध **गौतमबुद्धने** यह उपदेश दिया कि सर्व विश्व क्षणिक-विनाशीक है। **"प्रत्येक होनेवाला पदार्थ नश्वर है"** ये ही उसके अन्तिम शब्द थे। **बौद्धोंका** कथन है कि, आत्मवाद अर्थात् आत्माको अविनाशी मानना यही सबसे बड़ा मिथ्यात्व है। संसारमें जितने पदार्थ है, वे सब केवल दृश्य मात्र हैं। **बुद्धदेवके** शब्दोंमें इसीको इस तरहसे कह सकते है कि, समस्त पदार्थ **धर्म** है, परन्तु उनका कोई आधार वा **धर्मी** नहीं है। अर्थात् कोई नित्य द्रव्य नहीं है, जिससे धर्म उसके गुण वा विशेषण कहे जा सकें।

५. इस प्रकारसे विश्वको एक दूसरेसे विरुद्धरूपमें अवलोकन कर-

नेके कारण ब्राह्मण और बौद्ध इन दोनोंने अपने परस्पर विरुद्ध सिद्धान्तोंकी स्थापना की। यदि हम तत्त्वदृष्टिसे विचार करते हैं, तो ब्राह्मणधर्मका यह कथन कि, " विश्वका सम्पूर्ण अस्तित्व अविनाशी निरपेक्ष और एकरूप है; " सत्य जान पड़ता है, और यदि अपने निरन्तरके अनुभवसे विचार करते है, तो " सारा जगत् जन्म और मरणकी एक परम्परा है" यह बौद्धोंका कथन ठीक जचता है। परन्तु किसी एक अप्रत्यक्षतः ज्ञात वस्तुका निर्णय करनेमें चाहे ब्राह्मण धर्मके तात्त्विक प्रतिपादनकी सहायता ली जावे, चाहे बौद्धोंके अनुभवावलम्बी मतकी सहायता ली जावे, दोनोंमें ही अनेक अड़चनें आकर उपस्थित होती है और जबतक किसी एक ग्रहण किये हुए सिद्धान्तकी सत्यतामें अंधविश्वास न किया जाय, तबतक ये अड़चनें दूर नहीं होती है।

६. अब यह देखना चाहिये कि, इस तात्त्विक प्रश्नके सम्बन्धमें जैनियोंका मत क्या है:—" उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् " अर्थात् समस्त पदार्थ उत्पत्ति स्थिति और नाश इन तीन अवस्थाओंसे युक्त है। वेदान्तियोंके नित्यवाद और बौद्धोंके अनित्यवादसे जुदा समझे जानेके लिये जैनी अपने सिद्धान्तको अनेकान्तवाद कहते है। धर्मी नित्य है, परन्तु उसके धर्म वा गुण अनित्य हैं अर्थात् वे उत्पन्न होते है तथा नष्ट होते है। जैसे—प्रत्येक जड़पदार्थ पुद्गलस्वरूपकी अपेक्षा नित्य है, परन्तु उसमें जो पुद्गल परमाणु है, वे जुदा जुदा आकारोंको और गुणोंको धारण करते है, इसलिये अनित्य हैं। पुद्गलत्वकी अपेक्षासे मिट्टी शाश्वत—अविनाशी है, परन्तु घड़ेकी अपे-

क्षासे अथवा रंगकी अपेक्षासे उसमे उत्पत्ति और नाश दोनों संभव हो सकते है।

७. सामान्यतया विचार करनेसे यद्यपि जैनियोंका यह सिद्धान्त कुछ गूढ़ नहीं जान पड़ता है और यह समझना कठिन हो जाता है कि, इसे इतना अधिक महत्त्व क्यों दिया गया, तथापि जैनतत्वज्ञान का यह मूल है और स्याद्वादनयकी अपेक्षा विचार करनेसे इसका वास्तविक महत्त्व बड़ी स्पष्टतासे समझमें आता है।

८. **स्याद्वाद**नयका समानार्थवाची **जैनप्रवचन** शब्द है। जैनियोंको इस बातका अभिमान है कि, मिथ्याज्ञानके जालसे छुटकारा पानेके लिये यह जैनप्रवचन अद्वितीय साधन है। अस्तित्व अर्थात सत्ता **उत्पति स्थिति** और **लय** इन परस्पर विरोधी गुणोंसे युक्त है, इसलिये प्रत्येक अस्तित्व गुणयुक्त पदार्थके सम्बन्धमें भी ऐसी ही अनेकान्तता होती है। जो सिद्धान्त एक दृष्टिसे सत्य होता है, तद्विरुद्ध सिद्धान्त भी दूसरी दृष्टिसे सत्य ठहरता है। इस प्रकारसे प्रत्येक पदार्थपर घटित होनेवाले 'स्यात् अस्ति' 'स्यात् नास्ति' आदि सात नय है। स्यात् शब्दका अर्थ 'कथंचित्'—'एक प्रकारसे' अथवा 'किसी अपेक्षासे' होता है। यह 'स्यात्' शब्द 'अस्ति' का विशेषण है और अस्तित्वकी अनेकान्तताको प्रगट करता है। जैसे कहा जाय कि, **'स्यादस्ति घटम्'** अर्थात् एक प्रकारसे घड़ा है। तो हमको इसका यही अर्थ करना पड़ेगा कि, अपनी अपेक्षा घड़ा है, परन्तु **स्यान्नास्ति घटं** अर्थात् दूसरे पदार्थकी अपेक्षा—पटकी अपेक्षासे घट (घड़ा) नहीं है।

९. इस स्याद्वादसिद्धान्तका उपयोग जो कि ऊपराऊपरी टटोलनेसे शुष्कसरीखा प्रतीत होता है, 'एकमेवाद्वितीयं' और 'सर्वव्यापी परब्रह्मवाद' के निराकरण करनेमें बहुत होता है। अस्ति, नास्ति और अवक्तव्य ये तीन पदाभिधेय है। अर्थात् प्रत्येक पदार्थके सम्बन्धमें इन पदोंसे प्रगट की हुई तीनों बातें यथार्थ मानी जावेंगी। क्योंकि चाहे जो पदार्थ हो, वह ऊपर कहे अनुसार अस्ति और नास्ति इन दो शब्दोंका वाच्य तो होता ही है। अब रहा तीसरा अवक्तव्य, सो उपर्युक्त परस्परविरुद्ध गुणोंका उल्लेख इस शब्दके द्वारा ही करना पड़ता है। क्योंकि अस्ति और नास्तिरूप विरूद्ध स्वाभावोंका एक ही समयमें एक ही पदार्थमें रहना किसी भाषाके किसी भी शब्दसे प्रगट नहीं किया जा सकता है। इन तीन पदाभिधेयोंका जुदा जुदा प्रकारसे गुणाकार करनेसे सात नयोंकी स्थापना होती है (१ स्यादस्ति, २ स्यान्नास्ति, ३ स्यादस्तिनास्ति, ४ स्यादवक्तव्य, ५ स्यादस्ति अवक्तव्य, ६ स्यान्नास्ति अवक्तव्य, और ७ स्यादस्तिनास्ति अवक्तव्य) और इन्हें ही स्याद्वाद अथवा सप्तभंग कहते है। इस सिद्धान्तका विस्तृत विवेचन करके मै आपको कष्ट देना नहीं चाहता हूं। यहां मेरे कहनेका अभिप्राय केवल यही है कि अनेकान्तवादसे ये सातों नय उत्पन्न हुए और यह स्याद्वाद सर्व सत्य विचारोंके खोलनेकी कुंजी है।

१०. ऊपर कहे हुए नय स्याद्वादके पूरक है। किसी भी पदार्थके स्वभावोंके बतलानेकी पद्धतिको नय कहते है। जैनियोंका मत्त है कि, ये सब नय एकान्तिक है—अर्थात् पदार्थका एक अपेक्षासे विचार

क्षासे अथवा रंगकी अपेक्षासे उसमे उत्पात्ति और नाश दोनों संभव हो सकते है ।

७. सामान्यतया विचार करनेसे यद्यपि जैनियोंका यह सिद्धान्त कुछ गूढ़ नहीं जान पड़ता है और यह समझना कठिन हो जाता है कि, इसे इतना अधिक महत्त्व क्यों दिया गया, तथापि जैनतत्वज्ञान का यह मूल है और स्याद्वादनयकी अपेक्षा विचार करनेसे इसका वास्तविक महत्त्व बड़ी स्पष्टतासे समझमें आता है ।

८. **स्याद्वाद**नयका समानार्थवाची **जैनप्रवचन** शब्द है । जैनियोंको इस बातका अभिमान है कि, मिथ्याज्ञानके जालसे छुटकारा पानेके लिये यह जैनप्रवचन अद्वितीय साधन है । अस्तित्व अर्थात् सत्ता उत्पति स्थिति और लय इन परस्पर विरोधी गुणोंसे युक्त है, इसलिये प्रत्येक अस्तित्व गुणयुक्त पदार्थके सम्बन्धमें भी ऐसी ही अनेकान्तता होती है । जो सिद्धान्त एक द्दष्टिसे सत्य होता है, तद्विरुद्ध सिद्धान्त भी दूसरी द्दष्टिसे सत्य ठहरता है। इस प्रकारसे प्रत्येक पदार्थपर घटित होनेवाले 'स्यात् अस्ति' 'स्यात् नास्ति' आदि सात नय है । स्यात् शब्दका अर्थ 'कथंचित्'—'एक प्रकारसे' अथवा 'किसी अपेक्षासे' होता है । यह 'स्यात्' शब्द 'अस्ति' का विशेषण है और अस्तित्वकी अनेकान्तताको प्रगट करता है । जैसे कहा जाय कि, **'स्यादस्ति घटम्'** अर्थात् एक प्रकारसे घड़ा है । तो हमको इसका यही अर्थ करना पड़ेगा कि, अपनी अपेक्षा घड़ा है, परन्तु **स्यान्नास्ति घटं** अर्थात् दूसरे पदार्थकी अपेक्षा—पटकी अपेक्षासे घट (घड़ा) नहीं है ।

९. इस स्याद्वादसिद्धान्तका उपयोग। जो कि ऊपराऊपरी टटोलनेसे शुष्कसरीखा प्रतीत होता है, 'एकमेवाद्वितीयं' और 'सर्वव्यापी परब्रह्मवाद' के निराकरण करनेमें बहुत होता है । अस्ति, नास्ति और अवक्तव्य ये तीन पदाभिधेय है । अर्थात् प्रत्येक पदार्थके सम्बन्धमें इन पदोंसे प्रगट की हुई तीनों बातें यथार्थ मानी जावेंगी । क्योंकि चाहे जो पदार्थ हो, वह ऊपर कहे अनुसार अस्ति और नास्ति इन दो शब्दोंका वाच्य तो होता ही है । अब रहा तीसरा अवक्तव्य, सो उपर्युक्त परस्परविरुद्ध गुणोंका उल्लेख इस शब्दके द्वारा ही करना पड़ता है । क्योंकि अस्ति और नास्तिरूप विरुद्ध स्वाभावोंका एक ही समयमें एक ही पदार्थमें रहना किसी भाषाके किसी भी शब्दसे प्रगट नहीं किया जा सकता है । इन तीन पदाभिधेयोंका जुदा जुदा प्रकारसे गुणाकार करनेसे सात नयोंकी स्थापना होती है (१ स्यादस्ति, २ स्यान्नास्ति, ३ स्यादस्तिनास्ति, ४ स्यादवक्तव्य, ५ स्यादस्ति अवक्तव्य, ६ स्यान्नास्ति अवक्तव्य, और ७ स्यादस्तिनास्ति अवक्तव्य) और इन्हें ही स्याद्वाद अथवा सप्तभंग कहते हैं । इस सिद्धान्तका विस्तृत विवेचन करके मैं आपको कष्ट देना नहीं चाहता हूं । यहां मेरे कहनेका अभिप्राय केवल यही है कि अनेकान्तवादसे ये सातों नय उत्पन्न हुए और यह स्याद्वाद सर्व सत्य विचारोंके खोलनेकी कुंजी है ।

१०. ऊपर कहे हुए नय स्याद्वादके पूरक हैं । किसी भी पदार्थके स्वभावोंके बतलानेकी पद्धतिको नय कहते हैं । जैनियोंका मत है कि, ये सब नय एकान्तिक है—अर्थात् पदार्थका एक अपेक्षासे विचार

करते हैं। अतः इनमें केवल सत्यका अंश रहता है। नय सात प्रकारके है (नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़, और एवंभूत) जिनमेंसे चार **अर्थनय** और तीन **शब्दनय** हैं, इस भिन्नताका कारण यह है कि पदार्थका अस्तित्व जैसा कि वेदान्ती कहते है अमिश्र नहीं है। उसमें जुदा जुदा वस्तुओंका मिश्रण है। इसलिये किसी भी पदार्थका वर्णन अथवा किसी भी प्रकारका विधान स्वभावसे ही अपूर्ण और एकान्तिक वा एकपक्षीय होता है और इससे किसी एक पदार्थके विषयमें एक ही दृष्टिसे विचार किया जाय, तो वह अवश्य भ्रमात्मक वा गलत होता है।

११. इन सब विचारोंमें कुछ विशेष गंभीरता नहीं दिखती है। बल्कि उपनिषदोंके परस्पर विरोधी दिखनेवाले विचारोंके विरुद्ध सामान्य अनुभवज्ञानका समर्थन करनेका इस जैनसिद्धान्तका हेतु है। इसी प्रकारसे उसीका दूसरा परन्तु गौण हेतु बौद्धोंके क्षणिकवादके विरुद्ध है। परन्तु बौद्धमतके साथ स्पष्टतः जान बूझकर वाद करनेका जैनसिद्धान्तका अभिप्राय नहीं दिखता है। और ऐतिहासिक दृष्टिसे यह बात स्वाभाविक है। क्योंकि **महावीर**का जन्म उपनिषदोंके बहुत पीछे और बौद्धोंके समसमयमें हुआ है, इसलिये ब्राह्मणोंके तत्वोंका स्पष्टतासे निषेध करना और बौद्धसिद्धान्तसे जुदा सिद्धान्त प्रतिपादन करना उसके लिये जरूरी था।

१२. अभी तक यह नहीं कहा गया है कि, **सांख्ययोग** और जैनसिद्धान्तका क्या सम्बन्ध है। **श्रमण**लोगोंमें जिन्हें कि, इस समय योगी कहते है, इनकी उत्पत्ति हुई है, इसलिये इन दोनों ही मतोंमें

एक दूसरेसे मिलते हुए अनेक सिद्धान्त दिखलाई देते है। यह बात अब सर्वमान्य हो चुकी है, कि साधुओंके आचारों अथवा योगके हेतुओं और मार्गोंके विषयमें ब्राह्मणों जैनियों और बौद्धोंका निकट सम्बन्ध है और उनकी उत्क्रान्ति एक ही स्थानमें हुई है। मुझे यहां केवल साधुधर्म और उसकी आवश्यकता सम्बन्धी तात्विक कल्पनाओंका विचार करना है।

१३. **सांख्यमतने** उपनिषदोंके और अनुभवज्ञानके मिलान करनेका प्रयत्न किया है। सांख्यके मतसे आत्मा अथवा **पुरुष** नित्य और **प्रकृति** अथवा **जड़पदार्थ** अनित्य हैं। सांख्यवादमें प्रकृतिसे सारा जड़ विश्व उत्पन्न हुआ माना है और जैनमतके अनुसार भी पुद्गलसे ही सारा भौतिक जगत् उत्पन्न होता है। इससे सांख्य और जैनमतका इस विषयमें एक मत है और मुझे मालूम होता है कि, यह मत (पुद्गलसे जड़जगतकी उत्पत्ति मानना) सबसे अधिक प्राचीन है। प्रत्येक वस्तुमें जो परिणमन वा फेरफार होता है, चाहे वह स्वाभाविक हो चाहे मंत्रादि उपायोंसे हुआ हो, उसका इसी सिद्धान्तके आधारसे खुलासा होता है। जड़द्रव्यकी इस एक ही कल्पनासे सांख्यवादियों और जैनियोंने जुदा जुदा सिद्धान्त निकाले हैं। अत्यन्त सूक्ष्म बुद्धिसे लेकर अत्यन्त जड़पदार्थोंतक सबकी उत्पत्ति और विनाशका क्रम सांख्यमतके अनुसार निश्चित वा नियमित है। यह क्रम जैनियोंको मान्य नहीं है। वे कहते हैं कि विश्व अनादि निधन और नित्यस्थितिरूप है। उनके मतसे जड़सृष्टि परमाणुओंसे बनी है और उसके स्वरूपमें तथा उसकी रचनामें (मिश्रतामें) परि

वर्तन होता रहता है। कुछ परमाणु सूक्ष्म अवस्थामें (जुदा जुदा) रहते हैं और कुछ स्कन्धअवस्थामें। उनका यह विलक्षण मन्तव्य है कि, असंख्यात सूक्ष्म परमाणु एक स्थूल परमाणुके अवकाशमें रह सकते है। इस मतका उनके आत्मवादसे क्या सम्बन्ध है, यह मै अब वर्णन करता हूं। मैं यहां यह प्रगट कर देना आवश्यक समझता हूं कि जिस तरह सांख्यवादी केवल बुद्धि अहंकार मन और इन्द्रियोंकी मिश्रतासे आत्मवादके उपकरण तयार करते हैं, उस तरह जैनी नहीं करते है। जैनमत इस विषयमें सरल और स्पष्ट है। उसका सिद्धान्त है कि, शुभ और अशुभ परिणामोंके अनुसार कर्मपरमाणु जीवके साथ सम्बन्ध करते हैं और उसे अशुद्ध करके उसके स्वाभाविक गुणोंको ढक देते है। जैनीलोग स्पष्टशब्दोंमें कहते है कि, कर्म एक प्रकारके जड़परमाणु हैं। उनका यह कथन अलंकारिक नहीं अक्षरशः सत्य है। जीव अत्यन्त हलका है और उसका स्वभाव ऊर्ध्वगत (ऊपर जानेवाला) है, परन्तु कर्मपुद्गलोंके कारण वह जड़सरीखा होकर नीचे रहता है। और उनसे मुक्त होते ही—छूटते ही सरल रेखा ऊपर जाकर लोकके उच्चतम स्थानमें ठहर जाता है। कर्मोंके जड़ कहनेका दूसरा प्रमाण यह है कि, जिन कर्म परमाणुओंका आत्मासे सम्बन्ध हो गया है, वे भिन्न भिन्न अवस्थाओंको धारण कर सकते है। पानीमें घुली हुई मिट्टीके समान वे (कर्मपरमाणु) कभी उदय अवस्थामें रहते है कभी जिस तरह मिट्टी थिराकर नीचे बैठ जाती है उसतरह उपशमरूप रहते है और कभी जिस तरह जलसे मिट्टी बिलकुल अगल कर दी जाती है और शुद्ध जल रह जाता है, उस तरह क्षय

अवस्थाको प्राप्त हो जाते हैं अर्थात् उनमें आत्माके गुणोंका घात करनेकी शक्ति नहीं रहती है । पानीमें मिली हुई कीचड़के परमाणुओंकी अपेक्षा यद्यपि कर्मपरमाणु अनन्तगुणित सूक्ष्म है, तथापि उन्हें पुद्गल वा जड़ ही माना है । आत्माकी कृष्ण नील कापोत आदि लेश्याओंका तथा उनके रंगोका विचार करनेसे भी यही बात अनुभवमें आती है । अजीविक नामके सम्प्रदायका भी यही मन्तव्य है, जिसके विषयमें कि डाक्टर हार्नलीने ' इन्साइक्लोपीडिया आफ रिलिजियन' में लिखा है । लेश्याके रंग कर्मके मिश्रणसे आत्मापर चढ़ते है। इस बातसे भी कर्मजड़ है—पौद्गलिक है, यह सिद्ध होता है ।

१४. कर्मपरमाणुओंका जिनका कि आत्माके साथ एक प्रदेशावगाह सम्बन्ध हो जाता है, आठ भेद हो जाते है। जिसतरह एकबार किया हुआ भोजन शरीरके भिन्न भिन्न रसोंमें पलट जाता है, उसी प्रकारसे आत्माद्वारा ग्रहण किये हुए कर्मपरमाणु आठ प्रकृतियोंमें परिणत हो जाते है । इन पुद्गलोंसे एक सूक्ष्म शरीर (कार्म्माण शरीर) बनता है और वह जबतक जीवका मोक्ष न हो जावे,तब तक जन्म जन्मान्तरोंमें भी आत्माके साथ लगा रहता है—बन्धयुक्त रहता है। जैनियोंके इस सूक्ष्म अर्थात् कार्माण शरीरकी तुलना सांख्योंके लिंगशरीरसे हो सकती है । इस कार्माण शरीरके कार्य समझनेके लिये हमको आठ प्रकारके कर्मोंके स्वरूपका थोड़ासा विचार करना चाहिये । **ज्ञानावरणीय** और **दर्शनावरणीय** कर्मोंसे आत्माके ज्ञान और दर्शन गुणका घात होता है । **मोहनीय** कर्मसे मोह और कषायोंकी उत्पत्ति होती है **वेदनीय** कर्मसे सुख और दुःखका अनुभव होता है । **आयु** कर्मसे

जीवको वर्तमान जन्ममें नियमित कालतक रहना पड़ता है। **नाम** कर्मसे वर्तमान शरीरसम्बन्धी आकारादिकी रचना होती है । **गोत्र** कर्मसे ऊंचे नीचे कुलमें जन्म होता है और **अन्तराय**से सुखभोग और शक्तिका उपयोग नहीं किया जा सकता है । इन आठ कर्मोका परिणाम (परिपाक, उदयमें आना) भिन्न भिन्न नियमित समयोंमें होता है। पश्चात् उन कर्मोंकी **निर्जरा** होती है अर्थात् कर्मपरमाणु अपने स्वभावानुसार फल देकर झड़ जाते है। इससे विरुद्ध क्रियाको अर्थात् आत्मामें कर्मपरमाणुओंके आनेको **आस्रव** कहते है। मन वचन कायकी क्रियासे आस्रव होता है। मिथ्यादर्शनसे, अव्रतोंसे, प्रमादोंसे और कषायोंसे आत्माके साथ कर्मपरमाणुओंका सम्बन्ध होता है। इसे **बन्ध** कहते है और इसके रोकनेको **संवर** कहते है।

१५. जैनियोंने अपने तत्त्वज्ञानकी इमारत इस सरल और स्पष्ट कल्पनापर खड़ी की है और संसारकी स्थितिके तथा उससे मुक्त होनेके उपाय बतलाये है। सांख्यमतवालोंने भी इसी प्रकारके विचारोंको प्रगट किया है, परन्तु उनकी रीतिया कुछ भिन्न ही प्रकारकी है ।

१६. **संवरके** (कर्मोंके आस्रवके रोकनेके) मन वचन कायका निरोध करना (गुप्ति,) सम्यक्चारित्र (?) पालना, धर्मध्यान करना और सुख दुःखमें माध्यस्थ भाव रखना, आदि कारण है । इनमें सबसे महत्त्वका कारण तपश्चरण है। क्योंकि उससे केवल नवीन कर्मोका आगमन ही नहीं रुकता है; किन्तु पूर्वसंचित कर्मोंका क्षय भी होता है। और इसलिये यह मोक्षका मुख्य मार्ग है। जैनमतमें तपका जो अर्थ किया गया है, वह कुछ असाधारण है। वह अन्त-

रंग और बाह्यके भेदसे दो प्रकारका है। उपवास करना, थोड़ा वा रसहीन भोजन करना (ऊनोदर, रसपरित्याग), और शरीरको क्लेश देना आदि **बाह्यतप** है और प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य ध्यान आदि **अन्तरंगतप** हैं। जैनियोंका यह मन्तव्य ध्यानमें रखना चाहिये कि, ध्यान यह मुक्ति प्राप्त करनेके मार्गका एक भाग है और यद्यपि मोक्ष प्राप्त करनेके पहले ध्यानकी ही सीढ़ी है, तो भी दूसरे प्रकारके तप भी उतने ही महत्त्वके है। सांख्ययोगसे जैनधर्मकी तुलना करते समय इस बातका महत्त्व प्रगट होगा। सांख्यमतमें जैनं तपोंके कुछ भेद है, परन्तु उनका महत्त्व ध्यानकी अपेक्षा बहुत कम है। बल्कि ध्यान ही योगमें मुख्य है, दूसरे तप अंगभूत अथवा गौण है। और जो लोग ज्ञानहीको मोक्षप्राप्तिका मुख्य साधन मानते हैं उनके मतमें ऐसा मन्तव्य होना स्वाभाविक है। मुझे ऐसा मालूम होता है कि, सांख्यने जो बुद्धि अहंकार मन और प्रकृतिकी परणति निश्चित की है, वह ध्यानका महत्त्व बढ़ानेके लिये ही है। सांख्ययोग यतिधर्मका तत्वविचार है। जैनियोंका यतिधर्म कुछ जुदा ही प्रकारका है। उसका उद्देश आत्माको कर्मोंसे मुक्त करनेका है। उस समयमें यतिधर्ममें शरीरको कष्ट देनेका अत्याचार बहुत प्रचलित था. जैनधर्मने उसको नष्ट कर दिया, इसमें सन्देह नहीं है, परन्तु उसने उसको सर्वथा ही नहीं बदला। ब्राह्मणोंके योगकी अपेक्षा बहुत प्राचीन कालके सन्यासधर्मको जैनधर्मने पुनरुज्जीवित किया।

१७. अन्तमें भारतके तत्वज्ञानोंमेंसे न्याय और वैशेषिक दर्शनके विषयमें थोड़ासा उल्लेख करना आवश्यक है। संस्कृतभाषाभाषी सब

लोगोंकी सामान्य विचारपद्धातिको निश्चित करना और उसको व्यवस्थित स्वरूप देना यह इसी दर्शनका कार्य था । जैनियोंसरीखे अनुभवज्ञानकी ओर लक्ष्य देनेवालोंको ऐसे दर्शनके विषयमें विशेष प्रेम हो, यह एक स्वाभाविक बात है । और इसीलिये उन्होंने न्यायविषयके अनेक ग्रन्थ लिखे है । परन्तु **महावीर स्वामीके** समयमें नैयायिक वैदिक धर्मसे सर्वथा जुदा नहीं हुए थे । जैनग्रथोंसे ऐसा पता लगता है कि वैशेषिकदर्शनकी स्थापना **चालुह्य रोहगुत्तने** जो कि पहले जैनी था, की थी । वैशेपिकोंका परमाणुवाद जैनधर्ममें पहलेहीसे वर्णित था इससे भी जैनियोंका उक्त कथन ठीक मालूम होता है । न्यायदर्शन जैनधर्मसे पीछे स्थापित हुआ है, इस विषयमें कुछ भी सन्देह नहीं है ।

१८. **जैनधर्म सर्वथा स्वतंत्र धर्म है**—मेरा विश्वास है कि, वह किसीका अनुकरण नहीं है और इसलिये **प्राचीन भारतवर्षके तत्वज्ञानका और धर्मपद्धतिका अध्ययन करनेवालोंके** लिये **वह बड़े महत्त्वकी वस्तु है** ।

इति ।

जैन उत्तम साहित्य पुष्प नम्बर १५

॥ वीतरागाय नमः ॥

पंचकल्याण की भक्ति

प्रकाशक—

रतलाल महता

जैन उत्तम साहित्य प्रकाशक मण्डल

उदयपुर-मेवाड़

मुद्रक—

दि डायमण्ड जुबिली प्रेस, अजमेर.

प्रथमावृत्ति १०००

वीर संवत् २४५६

वि० सं० १९८७

मूल्य)॥

❀ निवेदन ❀

यदि आप पाप रूपी मैल को दूर कर सच्चा सुख प्राप्त करना चाहते हैं तो सब से पहले तीर्थंकर भगवान् के च्यवन, जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान और मोक्ष पधारने की तिथि की जो विधि इस पुस्तक में लिखी हुई है उसका अभ्यास कर आत्म कल्याण करने वाले भव्य जीवों को नित्य भावना चिन्तवन करना चाहिये। अगर आपने विधि सहित स्मरण किया तो आपको इसका प्रत्यक्ष अनुभव हो जावेगा। विशेष जानकारी के लिये ज्ञान प्रकाश देखें।

निवेदक—

रतलाल महता.

॥ ॐ ॥

पंचकल्याण की भक्ति ।

ऋषभ आदि महावीरलों, चौवीसों जिनराय ।
विघ्न हरण मंगलकरण, वन्दों मन वच काय ॥ १ ॥

प्रिय सज्जनो ! आत्मोन्नति के लिये तीर्थंकरों की नित्य भक्ति करना आवश्यक है । क्योंकि इसके द्वारा जीव उच्च पदवी पाने योग्य बन जाता है । प्राणिमात्र के हित के लिये धार्मिक क्रियाओं में पंचकल्याण की आराधना, दानशील, तप, भावना के द्वारा करने से जीव इस लोक और परलोक दोनों में सुख का अनुभव करता है । जैन ज्ञानप्रकाश के द्वितीय प्रकाश में चौवीस तीर्थंकरों की भक्ति, अनुपूर्वी और नवस्मरण आदि का पूरा २ खुलासा किया गया है ।

सामायिक कर चौवीस तीर्थंकरों की भक्ति वन्दना करने वालों को जो फल प्राप्त होता है वह शास्त्रकारों ने इस प्रकार बतलाया है ।

उत्तराध्ययन सूत्र के २६ वें अध्याय में श्री गौतम स्वामी ने श्री महावीर भगवान से प्रश्न किया है कि सामायिक करने से जीव किन २ फलों को प्राप्त करता है ? भगवान् ने फरमाया है कि सामायिक करने से जीव सावद्य

(पाप) क्रोध, मान, माया और लोभ रूपी कषाय, (पापों) से निवृत्त होता है। क्योंकि समता रूप सामायिक के द्वारा और भक्ति में तल्लीन होने से जीव के पाप नाश होते हैं, और आत्मा सामायिक में प्रवेश करने से वह पाप कर्म के बन्धनों से मुक्त हो जाता है। सामायिक कर भक्ति वही मनुष्य कर सकता है जिसको आत्मा तथा परमात्मा पर विश्वास हो, और इस लोक और परलोक का डर हो, वीतराग प्रभु के वाक्यों पर अटल श्रद्धा हो, ये चार बातें जिसको अच्छी लगती हैं वही सामायिक के महत्व को समझ समभाव द्वारा अशुभ कर्मों का नाश करता हुआ कर्मों के शुभ फलों को उपार्जन करता है।

इस प्रकार समता रूप सामायिक करके फिर तीर्थंकरों की स्तुति करे, और भक्ति में तल्लीन होवे। इसलिये गौतम स्वामी ने उत्तराध्ययन के २९ वें अध्याय में प्रश्न किया है कि तीर्थंकरों की भक्ति करने से जीव किन २ फलों को प्राप्त करता है ?

करुणासिन्धु भगवान् महावीर ने फरमाया है कि हे गौतम ! ज्ञानी अर्थात् तीर्थंकरों की भक्ति करने से जीव समकित धर्म को प्राप्त कर शुद्ध श्रद्धा युक्त होता है और जब आत्मा सत्य की तरफ जाता हुआ पौद्गलिक सुखों से पीछे हटता है तभी यह जीव नाशवान्

वस्तुओं से मोह उतारने के लिये आत्म शुद्धि कर प्रमाद को भगाता हुआ पाप कर्मों पर विजय प्राप्त करता है। तीर्थंकर भगवान् के पंच कल्याण की भक्ति करने से लक्ष्मी दासी होकर खड़ी रहती है तथा हृदय पवित्र होजाता है। जहां शुभ विचार उत्पन्न होते हैं वहां ज्ञान का प्रकाश होता है, और अज्ञानरूपी अन्धकार नाश होता है। इसलिये अज्ञानरूपी अन्धकार को हटाने के लिये पंच कल्याण की तिथियों के दिन विधि सहित परमात्मा का स्मरण करो। पहले जमाने में भगवान् का स्मरण करने तथा भक्ति करने के लिये समय २ पर देवी देवता, आर्य-अनार्य मनुष्य, पशु-पक्षी आदि सब ही जीव आया करते थे, और प्रभु से प्रतिबोध पाकर आत्म कल्याण करते थे। परन्तु जबसे उस देवाधिदेव की श्रद्धापूर्वक भक्ति करने में चित्त की वृत्ति कम हो गई है तभी से अज्ञान व अनेक कष्ट प्राप्त होने लगे हैं। इसलिये जिसके पवित्र मन में उस देवाधिदेव की भक्ति उत्पन्न होगी वही नित्य त्याग तप दानशील तप भावना के द्वारा इन तिथियों के दिन स्मरण तथा परमात्मा की आराधना करेगा, वही भव्य की आत्मा शान्ति और सुख प्राप्त करेगा। तीर्थंकरों की भक्ति के लिये आत्म अनुभव की जरूरत है।

अनुभव रस चिन्तामणि, अनुभव सिद्ध स्वरूप।
अनुभव मारग मोक्ष का, अनुभव केवल रूप ॥ १ ॥

पंच कल्याण की भक्ति करने से इन्द्रिय दमन, समता, समकित, मैत्रीभाव, संवेग, विवेक, उत्कृष्ट वैराग्यं आदि गुण तथा आत्म ज्ञान प्राप्त होता है।

पंच कल्याण की आराधना कर जिसने आत्म ज्ञान प्राप्त कर लिया है वह फिर संसार के तुच्छ सुखों की इच्छा भी नहीं करता है जैसे कोई कल्पवृक्ष को पाकर दूसरे वृक्षों की परवाह नहीं करता।

जब तक पंचकल्याण के आराधन में मन नहीं लगता तब तक आत्मज्ञान नहीं होता और तभी तक परवस्तु पर बड़ी आशा रहती है और उसी आशा के कारण मनुष्य ज्यों २ द्रव्य कमाता जाता है त्यों २ वह इस संसार रूपी कूए में गिरता ही जाता है और सच्चे मोक्ष रूपी सुख से दूर रहता जाता है।

पंचकल्याण की भक्ति करने वाले को आत्म बोध के लिये इन विचारों की आवश्यकता है कि मैं शरीर नहीं हूं पर शरीर को जानने वाली आत्माएँ तीर्थकरों की भक्ति का मार्ग न समझ कर मनुष्य सुखों की लालसा में विषयों का सेवन करती हैं वे भ्रम से स्वाद के लोभ में पड़ कर

शकर खाते हैं और उसमें मिठास का अनुभव करते हैं परन्तु अपने में मीठापन नहीं है शकर मीठी नहीं लगती कारण जिसे बुखार आता है उन्हें शकर कड़वी लगती है अर्थात् मीठी नहीं लगती। उसी प्रकार यदि हृदय में भक्ति के भाव नहीं है तो उनको भक्ति का फल भी नहीं मिलता।

जो चंचल मन बंधने पर भी एक जगह नहीं ठहरता, रोकने पर भी नहीं रुकता और सब जगह घूमता फिरता है ऐसे चपल मन को वश में करने के लिये इस आत्म राज्य में तीर्थंकरों की भक्ति का बल चाहिये।

जिनको तीर्थंकरों की भक्ति पर विश्वास नहीं वे जप तप माला पाठ आदि नित्य नियम करते हैं परन्तु उनका मन स्थिर नहीं रहता है। इसका कारण यह है कि उनके अन्तःकरण में दूसरे झूंठे संसारी काम इतने समा रहे हैं कि धर्म को रहने का स्थान नहीं मिल सकता। जिसको धर्म पर विश्वास है उसके हृदय में प्रभु का प्रकाश है वही अन्तःकरण अर्थात् आत्मा है। इसलिये जिसने आत्मा को देखने तथा समझने का प्रयत्न किया है उसी को वह परमात्मा पद प्राप्त होगा।

सदा प्रसन्न चित्त से तीर्थंकरों के पंचकल्याण की तिथी का स्मरण कर गुणों में तल्लीन चित्त और चहरे को कभी

मैला न कर सदा अपने हृदय को देखते रहो कि कहीं उसमें काम, क्रोध, वैर ईर्षा, घृणा, हिंसा, मान, मद रूपी शत्रु मकान न बनालें। यही इस स्मरण में आत्म परीक्षा है और स्मरण विधि को हर समय चित्त में अंकित कर लेवे। विधि पर मनन हुआ कि स्मरण शक्ति शीघ्र ही प्राप्त होगी।

स्मरण विधि।

आत्म तत्व की पहचान दानशील, तप भाव के द्वारा करने का नाम सम्यक् ज्ञान दर्शन और चारित्र है। आत्मा के साथ जिन कर्मों का सम्बन्ध है उनका जब तक वास्तविक स्वरूप भक्ति स्मरण द्वारा समझ में नहीं आता है तब तक मनुष्य को आत्म तत्व का यथार्थ बोध नहीं होता है। और आत्म तत्व के बोध बिना संसार में जन्म लेकर रहना निरर्थक है। जो मनुष्य आत्म तत्व की खोज नहीं करते वे संसार के इस क्लेश रूपी जाल में फंसकर अज्ञानी बन जाते हैं उस अज्ञान अवस्था से हटने के लिये तथा समकित धर्म प्राप्त करने के लिये इस पुस्तक को नित्य नियम से पढ़ें और जिस दिन जिन तीर्थंकर भगवान् के कल्याण की तिथि हो उन्हीं भगवान का स्मरण तथा नवकार मंत्र की माला फेरे, और उस दिन दान शील तप भावना के द्वारा धर्म का साधन अवश्य करें।

च्यवन तथा जन्म तिथि के दिन अभय दान, सुपात्र दान, ज्ञान दान देवें।

दीक्षा तिथि के दिन ब्रह्मचर्य व्रत पालन करे।

केवलज्ञान की तिथि के दिन उपवास करे, अगर ज्यादा उपवास न कर सकें तो हर महिने में दो उपवास करने को उत्तराध्ययनसूत्र पांचवें अध्याय में फरमाया है। वाकी पंचकल्याण की तिथि के दिन आमिल नोमी, दया पौसा, दस पच्चक्खाण में से कोई पच्चक्खाण अवश्य करे। तथा निम्नलिखित भावनाएं भाते रहें।

(१) मैं अनन्त काल पुद्गलमय बना, एक समय तो आत्ममय बनूं।

(२) जिसकी तृष्णा विशाल है वही दरिद्री है। मैं इस दरिद्रता से दूर रहने के लिये आत्म विचार में सदा मग्न रहूं।

(३) बुरे आदमियों की संगति नहीं करूं, जिससे मेरा कार्य उत्तमता पूर्वक होवे।

(४) हिंसा, असत्य, अदत्त, कुशील और परिग्रह से ममता हटा कर पंच महाव्रतों से आत्म कल्याण करना सब ही महा पुरुषों ने अंगीकार किया है, और विजय प्राप्त की है। तो मैं भी यथाशक्ति इन नियमों को धारण कर सदा प्रसन्न चित्त रहूं अर्थात् कलुषित हृदय वाला नहीं बनूं।

(५) भगवान् के नाम का स्मरण करके सदा अपने आचरण और विचारों को शुद्ध रक्खूं। हृदय तथा कार्यों में कभी बुरे विचार व दुर्वासना पैदा नहीं होने दूं।

(६) अन्त समय में हरएक के साथ उसके संचित किये हुए सुकर्म तथा दुष्कर्म ही आते हैं जिनसे सुख तथा दुःख मिलता है। इसको ध्यान में रख सदा बुरे कामों से बचता रहूं तथा बुरे कामों से दूर रहने में सदा सचेत रहूं।

इस प्रकार मौन रखकर अपनी आत्मा में सदा उपरोक्त विचारों का मनन करना चाहिये क्योंकि इन्हीं से कषाय की निवृत्ति होती है। मौन ही आत्मज्योति का ध्यान व कर्मों की निर्जरा है। महावीर भगवान् ने साढ़े बारह वर्ष तक मौन रख आत्म चिन्तवन कर कर्मों का क्षय किया और केवल ज्ञान प्राप्त किया तो दो घड़ी सामायिक में मौन रह कर स्मरण नित्य नियम करने का तथा शुद्ध विचारों को लक्ष्य बनाने का प्रयत्न करना चाहिये।

सर्व मंगल मांगल्यं सर्व कल्याण कारणम्।
प्रधानं सर्व धर्माणां जैनं जयति शासनम्॥

मिती श्रावण कृष्णपक्ष।

२ ॐ श्रेयांसनाथजिनाय मोक्षगताय नमः।

७ ॐ अनन्तनाथजिनाय च्यवनप्राप्ताय नमः ।

८ ॐ नेमिनाथजिनाय जातजन्मने नमः ।

९ ॐ कुन्थुनाथजिनाय च्यवनप्राप्ताय नमः ।

श्रावण शुक्लपक्ष ।

२ ॐ सुमतिनाथजिनाय च्यवनप्राप्ताय नमः ।

५ ॐ अरिष्टनेमिजिनाय जातजन्मने नमः ।

६ ॐ अरिष्टनेमिजिनाय ग्रहीतदीक्षाय नमः ।

८ ॐ पार्श्वनाथजिनाय मोक्षगताय नमः ।

१५ ॐ मुनिसुव्रतजिनाय च्यवनप्राप्ताय नमः ।

भाद्रपद कृष्णपक्ष ।

७ ॐ चन्द्रप्रभुजिनाय प्राप्तमोक्षाय नमः ।

७ ॐ शान्तिनाथजिनाय च्यवनप्राप्ताय नमः ।

८ ॐ सुपार्श्वनाथजिनाय च्यवनप्राप्ताय नमः ।

भाद्रपद शुक्लपक्ष ।

९ ॐ सुविधिनाथजिनाय मोक्षप्राप्ताय नमः ।

मिती आश्विन कृष्णपक्ष ।

१३ ॐ महावीरजिनाय च्यवनप्राप्ताय नमः ।

३० ॐ अरिष्टनेमिजिनाय उत्पन्नकेवलज्ञानाय नमः ।

आश्विन शुक्लपक्ष ।

१५ ॐ अरिष्टनेमिजिनाय च्यवनप्राप्ताय नमः ।

कार्तिक कृष्णपक्ष ।

५ ॐ संभवनाथजिनाय उत्पन्नकेवलज्ञानाय नमः ।
१२ ॐ अरिष्टनेमिनाथजिनाय च्यवनप्राप्ताय नमः ।
१२ ॐ पद्मप्रभुजिनाय जातजन्मने नमः ।
१३ ॐ पद्मप्रभुजिनाय ग्रहीतदीक्षाय नमः ।
३० ॐ महावीरजिनाय प्राप्तमोक्षाय नमः ।

कार्तिक शुक्लपक्ष ।

३ ॐ सुविधिनाथजिनाय उत्पन्नकेवलज्ञानाय नमः ।
१२ ॐ अरनाथजिनाय उत्पन्नकेवलज्ञानाय नमः ।

मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष ।

५ ॐ सुमतिनाथजिनाय जातजन्मने नमः ।
६ ॐ सुमतिनाथजिनाय गृहीतदीक्षाय नमः ।
१० ॐ महावीरजिनाय गृहीतदीक्षाय नमः ।
११ ॐ पद्मप्रभुजिनाय मोक्षगताय नमः ।

मिती मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष ।

१० ॐ अरनाथजिनाय जातजन्मने नमः ।
१० ॐ अरनाथजिनाय मोक्षगताय नमः ।
११ ॐ अरनाथजिनाय गृहीतदीक्षाय नमः ।
११ ॐ मल्लिनाथजिनाय जातजन्मने नमः ।
११ ॐ मल्लिनाथजिनाय ग्रहीतदीक्षाय नमः ।

११ ॐ मल्लिनाथजिनाय उत्पन्नकेवलज्ञानाय नमः ।
११ ॐ अरिष्टनेमिजिनाय उत्पन्नकेवलज्ञानाय नमः ।
१४ ॐ संभवनाथजिनाय जातजन्मने नमः ।
१५ ॐ संभवनाथजिनाय ग्रहीतदीक्षाय नमः ।

पौष कृष्णपक्ष ।

१० ॐ पार्श्वनाथजिनाय जातजन्मने नमः ।
११ ॐ पार्श्वनाथजिनाय ग्रहीतदीक्षाय नमः ।
१२ ॐ चन्द्रप्रभुजिनाय जातजन्मने नमः ।
१३ ॐ चन्द्रप्रभुजिनाय गृहीतदीक्षाय नमः ।
१४ ॐ शीतलनाथजिनाय उत्पन्नकेवलज्ञानाय नमः ।

पौष शुक्लपक्ष ।

६ ॐ विमलनाथजिनाय उत्पन्नकेवलज्ञानाय नमः ।
९ ॐ शान्तिनाथजिनाय उत्पन्नकेवलज्ञानाय नमः ।
११ ॐ अजितनाथजिनाय उत्पन्नकेवलज्ञानाय नमः ।
१४ ॐ अभिनन्दनजिनाय उत्पन्नकेवलज्ञानाय नमः ।
१५ ॐ धर्मनाथजिनाय उत्पन्नकेवलज्ञानाय नमः ।

माघ कृष्णपक्ष ।

६ ॐ पद्मप्रभुजिनाय च्यवनप्राप्तायनमः ।
१२ ॐ शीतलनाथजिनाय जातजन्मने नमः ।
१२ ॐ शीतलनाथजिनाय गृहीतदीक्षाय नमः ।
१३ ॐ ऋषभदेवजिनाय मोक्षगताय नमः ।

१३ ॐ श्रेयांसनाथजिनाय उत्पन्नकेवलज्ञानाय नमः ।

माघ शुक्लपक्ष ।

२ ॐ अभिनन्दनजिनाय जातजन्मने नमः ।

२ ॐ वासुपूज्यजिनाय उत्पन्नकेवलज्ञानाय नमः ।

३ ॐ विमलनाथजिनाय जातजन्मने नमः ।

३ ॐ धर्मनाथजिनाय जातजन्मने नमः ।

फाल्गुन कृष्णपक्ष ।

६ ॐ सुपार्श्वनाथजिनाय उत्पन्नकेवलज्ञानाय नमः ।

७ ॐ सुपार्श्वनाथजिनाय मोक्षगताय नमः ।

७ ॐ चन्द्रप्रभुजिनाय उत्पन्नकेवलज्ञानाय नमः ।

९ ॐ सुविधिनाथजिनाय च्यवनप्राप्ताय नमः ।

११ ॐ ऋषभदेवजिनाय उत्पन्नकेवलज्ञानाय नमः ।

१२ ॐ श्रेयांसनाथजिनाय जातजन्मने नमः ।

१२ ॐ मुनिसुव्रतजिनाय उत्पन्नकेवलज्ञानाय नमः ।

१३ ॐ श्रेयांसनाथजिनाय गृहीतदीक्षाय नमः ।

१४ ॐ वासुपूज्यजिनाय जातजन्मने नमः ।

३० ॐ वासुपूज्यजिनाय ग्रहीतदीक्षाय नमः ।

फाल्गुन शुक्लपक्ष ।

२ ॐ अरनाथजिनाय च्यवनप्राप्ताय नमः ।

४ ॐ मल्लिनाथजिनाय च्यवनप्राप्ताय नमः ।

८ ॐ संभवनाथजिनाय च्यवनप्राप्ताय नमः ।

१२ ॐ मल्लिनाथजिनाय मोक्षगताय नमः ।
१२ ॐ मुनिसुव्रतजिनाय ग्रहीतदीक्षाय नमः ।

चैत्र कृष्णपक्ष ।

४ ॐ पार्श्वनाथजिनाय च्यवनप्राप्ताय नमः ।
४ ॐ पार्श्वनाथजिनाय उत्पन्नकेवलज्ञानाय नमः ।
५ ॐ चन्द्रप्रभुजिनाय च्यवनप्राप्ताय नमः ।
८ ॐ ऋषभदेवजिनाय जातजन्मने नमः ।
८ ॐ ऋषभदेवजिनाय ग्रहीतदीक्षाय नमः ।

चैत्र शुक्लपक्ष ।

३ ॐ कुन्थुनाथजिनाय उत्पन्नकेवलज्ञानाय नमः ।
५ ॐ अजितनाथजिनाय मोक्षगताय नमः ।
५ ॐ संभवनाथजिनाय मोक्षगताय नमः ।
५ ॐ अनन्तनाथजिनाय मोक्षगताय नमः ।
६ ॐ सुमतिनाथजिनाय मोक्षगताय नमः ।
११ ॐ सुमतिनाथजिनाय उत्पन्नकेवलज्ञानाय नमः ।
१३ ॐ महावीरजिनाय जातजन्मने नमः ।
१५ ॐ पद्मप्रभुजिनाय उत्पन्नकेवलज्ञानाय नमः ।

वैशाख कृष्णपक्ष ।

१ ॐ कुन्थुनाथजिनाय मोक्षगताय नमः ।
२ ॐ शीतलनाथजिनाय मोक्षगताय नमः ।
५ ॐ कुन्थुनाथजिनाय ग्रहीतदीक्षाय नमः ।

६ ॐ शीतलनाथजिनाय च्यवनप्राप्ताय नमः ।
१० ॐ नेमिनाथजिनाय मोक्षगताय नमः ।
१३ ॐ अनन्तनाथजिनाय जातजन्मने नमः ।
१४ ॐ अनन्तनाथजिनाय ग्रहीतदीक्षाय नमः ।
१४ ॐ अनन्तनाथजिनाय उत्पन्नकेवलज्ञानाय नमः ।
१४ ॐ कुन्थुनाथजिनाय जातजन्मने नमः ।

वैशाख शुक्लपक्ष ।

४ ॐ अभिनन्दनजिनाय च्यवनप्राप्ताय नमः ।
७ ॐ धर्मनाथजिनाय च्यवनप्राप्ताय नमः ।
८ ॐ अभिनन्दनजिनाय मोक्षगताय नमः ।
८ ॐ सुमतिनाथजिनाय जातजन्मने नमः ।
९ ॐ सुमतिनाथजिनाय गृहीतदीक्षाय नमः ।
१० ॐ महावीरजिनाय उत्पन्नकेवलज्ञानाय नमः ।
१२ ॐ विमलनाथजिनाय च्यवनप्राप्ताय नमः ।
१३ ॐ अजितनाथजिनाय च्यवनप्राप्ताय नमः ।

ज्येष्ठ कृष्णपक्ष ।

६ ॐ श्रेयान्सनाथजिनाय च्यवनप्राप्ताय नमः ।
८ ॐ मुनिसुव्रतजिनाय जातजन्मने नमः ।
९ ॐ मुनिसुव्रतजिनाय मोक्षगताय नमः ।
१३ ॐ शान्तिनाथजिनाय जातजन्मने नमः ।
१३ ॐ शान्तिनाथजिनाय मोक्षगताय नमः ।

१४ शान्तिनाथजिनाय ग्रहीतदीक्षाय नमः ।

ज्येष्ठ शुक्लपक्ष ।

५ ॐ धर्मनाथजिनाय मोक्षगताय नमः ।

६ ॐ वासुपूज्यजिनाय च्यवनप्राप्ताय नमः ।

१२ ॐ सुपार्श्वनाथजिनाय जातजन्मने नमः ।

१३ ॐ सुपार्श्वनाथजिनाय ग्रहीतदीक्षाय नमः ।

आषाढ़ कृष्णपक्ष ।

४ ॐ ऋषभदेवजिनाय च्यवनप्राप्ताय नमः ।

७ ॐ विमलनाथजिनाय मोक्षगताय नमः ।

६ ॐ नेमिनाथजिनाय ग्रहीतदीक्षाय नमः ।

आषाढ़ शुक्लपक्ष ।

६ ॐ महावीरजिनाय च्यवनप्राप्ताय नमः ।

८ ॐ अरिष्टनेमिजिनाय मोक्षगताय नमः ।

१४ ॐ वासुपूज्यजिनाय मोक्षगताय नमः ।

पहले के अंकों से तिथि समझना चाहिये ।

आवश्यक सूचना ।

१. जैन शिक्षण संस्था उदयपुर में बालक बालिकाओं को शिक्षित तथा सदाचारी बनाने के लिये धार्मिक एवं व्यवहारिक शिक्षा तथा ब्रह्मचारियों के दिन रात रहने का और उनके भोजन, सोने बैठने शरीर सुधार आदि का अच्छा प्रबन्ध है। विशेष बात जानने के लिये नियमावली देखें ।

२. जैन हुनरशाला में विद्यार्थियों और वेकारों को उद्योग धन्धा तथा विधवा और सधवा वहिनों से सूत कता कर उनको पूरा मिहनताना देने का अच्छा प्रवन्ध है। जो भाई थोड़े समय में काम सीख कर वेतन पाने योग्य हो जाते हैं उनको पूरा काम सीख लेने पर अच्छे वेतन पर वाहिर भेजा जाता। यहां सूत का हर प्रकार का सुन्दर कपड़ा तैयार होता है और विना चर्वी का और शुद्ध तथा सुन्दर होने के कारण जोधपुर, वीकानेर, रतलाम, भोपाल, सरदार शहर, मालवा, मेवाड़, मारवाड़ आदि प्रान्तों से विक्री के लिये मांगे आती हैं और प्रदर्शिनीयों में भी भेजा जाता है। यहां के वने हुए कपड़े की मजबूती व खूबसूरती आलादर्जे की है। और पहनने वाले घोर (पापों की) हिंसा से वचते हुए अहिंसा धर्म की प्रवृत्ति करते हैं। "एक गज कपड़ा खरीदने से तीन आने गरीवों को मिहनताने के मिलते हैं। जिससे इन गरीवों का आशीर्वाद कपड़ा पहनने वालों, खरीदने वालों बेचने वालों और प्रचार करने वाले को मिलता है" और घर में सुख व शान्ति बनी रहती है।

३. जैन उत्तम साहित्य प्रकाशक मण्डल में इस समय तक १५ पुस्तकें छप चुकी हैं तथा और भी छप रही हैं इनके पढ़ने से धार्मिक तथा व्यवहारिक ज्ञान उच्च कोटि

का होता है, और आर्थिक दशा का भी सुधार होता है। इसके सिवाय यहां अन्य स्थानों की प्रकाशित धार्मिक पुस्तकें कीमतन मिलती हैं। जिनकी सूचि जैन ज्ञान प्रकाश द्वितीय भाग में दी गई है, जो सज्जन इस मण्डल के मेम्बर बनना चाहें उनको तीन ३) रु० जमा कराने पर उनका नाम मेम्बरों की सूचि में लिख, जो पुस्तकें निकल चुकी हैं और आगे निकलेंगी तथा जो पुस्तकें भेंट देने की हैं वे सब उनकी सेवा में वी० पी० द्वारा बिना डाक महसूल ज्ञान वृद्धि के लिये भेजी जाती हैं। कुछ पुस्तकें पुस्तकालयों में भी भेंट स्वरूप दी गई हैं, जितना इन पुस्तकों का प्रचार होगा उतना ही ज्ञान वृद्धि में लाभ पहुँचेगा।

निवेदक—

रत्नलाल महता—संचालक,
उत्तम साहित्य प्रकाशक मंडल,
उदयपुर (मेवाड़)

॥ ॐ ॥

॥ असि आउ साय नमः ॥

जैन सुख चैन बहार

प्रथम भाग

श्री मज्जैन कविवर सरल स्वभावी मुनि
श्री १००८ श्री हीरालालजी महाराज
तस्य शिष्य सत्य सनातन जैन
धर्म के प्रसिद्ध वक्ता मुनि
श्री १००५ श्रीचौथमलजी
महाराज विरचित

प्रसिद्ध कर्त्ता

श्रमणो पासक लाला छज्जू लाल जी के
पुत्र चन्द्रभान जी ने छपवाकर श्री
सघके हितार्थ भेटकी

प्रथमावृती १००० । । श्री वीर सं० २४४१
विक्रम सं० १९७१ । । श्री रत्नचंद सं० ५०

भूमिका

दोहा॥दया धर्म दीपाव वा। जेनों मन हुशियार॥
॥उन को मैं अर्पण करुं। ये सुख चैन वहार॥

विदित हो कि आज कल भव्य प्राणियों को लावणी आदिक गाने व सुनने का शोक ज्यादा है इस लिये मुनि श्री १००८ श्री चौथमल जी महाराज से स्तवन लावणी उतार कर श्रमणोपाशक चन्द्रभान जैन आगरा लोहा मंडी निवासी ने ये जैन सुख चैन वहार नाम की एक छोटीसी पुस्तक छपवाई सो आसा है कि इसको पढ कर भव्य प्राणी लाभ उठायेंगे।

निवेदक
प्रभूदयाल जैन
उपमन्त्री

पुस्तक मिलने का पता ये है
श्री जैन श्वेताम्बर साधु मार्गी धर्मोपदेश प्रकाशनी सभा
लोहा मंडी आगरा

ॐ

॥ असि आउ सायनमः ॥

॥ जैन सुख चैन वहार प्रथम भाग ॥

॥ श्लोक ॥

॥देवोऽर्हन् :सद् गुरुःसाधुधर्मः श्रीजिनभाषित॥
॥ सर्वे जीव दया मूल सेष धर्म सनातनः ॥

॥ यंत्र पैंसठ ॥

१	१८	२१	२	२३
१९	१६	९	१४	७
२०	११	१३	१५	६
२२	१२	१७	१०	४
३	८	५	२४	२५

॥ चौवीसी पद नम्बर १ ॥

चौवीस जिन इन विध ध्यावेरे। सदां सुख सम्पत पावेरे ॥ पातिक दूर पलावेरे। अण चिंती लक्ष्मी आवेरे॥

चौ ।१।प्रथम ।रिषभ ।जिनंद जी प्रभू अरहनाथ नेमी नाथ। अजितनाथ पारस भजूं जाकी महिमा जग विख्यात ।।चौ।। २। मनसा पूर्ण मल्लिनाथ जी शांति सुवध जिनंद। ज्वर हरण अनंतनाथ जी सुपारस सेव्या अनंद।। चौ ।। ३। मुनि सुव्रत श्री अंस जिनेश्वर श्री विमल वुद्धि प्रकाश। धर्मनाथ पद्मप्रभु म्हारी पूरण कीजै आस ।। चौ ।। ४। अरिष्ट नेम वास पूज जी रिप मेटन कुंथ जिनंद। सीतल नाथ सीत करण वन्दू सिद्धार्थ देवी का नंद ।। चौ ।। ५। संभव नाथ चंदा प्रभू सुमत जिन श्री व्रधमान। जेष्टाशिष्य गोतम रिषी नमता होवे परम कल्यान ।। चौ ।। ६ ।इनविध निश दिन जाप जपै तो नित२ मंगल माल। जोड करी खाच रौद में उन्नीसे अढसट की साल।गुरु हीरालालजी तिन शिष्य तणी अरदास। चांथमल की वीनती प्रभू दीजो शिवपुर वास

॥ स्तवन नम्बर ॥ २ ॥

मनाऊं महावीर भगवान जिन्होंने दिया अष्ट को ज्ञान।मिथ्या रुपअंधकार हरन को प्रघट्या द्युतियाभ।न। रोशन कीनी भारत भूमी महा गुणों की खान ।। म ।।१। स्याद व्याद निशान प्रभू ने दान वीच फरकाया। देखी उस्की तापकोसरे पापंडी ...पाया ।। म ।। २ ।। पावा पुरी के बारणे सरे अव्वल ...ा जमाया। एक दिवसमें चौवालीसे चेला प्रभूवनाया । म ।। ३। इन्द्र जालियो कहता २ इन्द्र भूती जी आया जिन को ऐसा ज्ञान दिया के वोभी अचंभा पागा ।। म ।।

४ । केई यज्ञ में पशु वध होता जिन का प्राण बचाया । चौथमल कहे धन त्रसला दे ऐसा नंदन जाया ॥ म ॥५॥

॥ स्तवन नम्बर ॥ ३ ॥

चंदा प्रभू शिव सुख के हो दाता । महासेन राय के नंदकहीजे। लच्छमणादे माताहो ॥ चं ॥१। मोती के हार से भी उज्जल तन । लच्छण चन्द्र सोभाता ॥ चं ॥ २ । रत्न सिंहासन ऊपर विराजे । त्रै छत्र चवर ढुराता ॥ चं ॥ ३ । अजब ध्वनी है जिन के वचनकी ।भव जीव सुन हुलसाता ॥ चं ॥४ । निर्दोसी देवतो समजग में । और नजर नाहिं आता ॥ चं॥५ ।तुम अमृत कोछोड के स्वामी। जहर कहो कौन खाता ॥ चं॥ ६ । चौथमल प्रभू चन्दा का वन्दा । आपो अनंदा ये चाहता ॥ इति ॥

॥स्तवन ॥ नम्बर ॥ ४ ॥

होमुनिवरकी जोड प्यारी ।श्री केशी गौतम अणगारी॥ हो ॥ टेक।पारसनाथ शिष्य अवध ज्ञान धर।समो सर्या तिणवारी ॥ हो॥ १। वृधमान के शिष्य शिरोमणी । द्वादस अंग के धारी ॥ हो॥ २ ॥सावत्थी नगरी के तिंदुक वन में। हूवा समागम भारी ॥ हो ॥ ४ । सुरनर गण विद्या धर आये । पाखंडी कौतुक कारी ॥ हो ॥५ ।मोठा ऽर्थ को निर्णे करने। कीधीसम समाचारी ॥ हो ॥ ६ ।चौथमल कहे उभै मुनि को। नमन करुं हरवारी ॥ हो ॥ ७। इति।

॥ स्तवन नम्बर ॥ ५ ॥

म्हानेलागेगौतम स्वामी प्यारा।जो रिद्ध सिद्ध दातार।महावीर स्वामी के प्रथमहिं गुण धर। चौदह सहेस मुनि में सर

रुप अनूपम मोहन गारा ॥ म्हां ॥ १ । पूर्ण लब्ध तना भंडारी । जाकी महिमा सूत्र में विस्तारी । रचा सिद्धान्त किया उपकारा । म्हा ॥ २ । चौदह पूरब धर चौज्ञानी । सक्कर से मीठी वानी । चर्चावादी में सरदारा ॥ म्हां ॥ ३ । मामूर नूर से आप पूरहो । मेरे मालिक आप हज़रहो मानो सोभे कमरसा दीदारा ॥ म्हां ॥ ४ । म्हर कदमों के चाकर पै कीजै ।इस मोखे इच्छा पुरजि । मुझे हैगाभरोशा तुम्हारा ॥ म्हां ॥ ५ । माता प्रथवीजीका जाया।चोथमलने घना सुहाया । कर नजर लगादे पारा ॥ इति ॥

॥ लावनी तर्ज दौड नम्बर ॥ ६ ॥

॥ श्री मुनिसुव्रत महाराज दिवाकर जग में ।महा राज उन्हों को सीस नवामे जी । अव सुनों लगा करकान सिया का व्याह सुनामैं जी । ये जनकराय मिथला नगरी के अंदर । महाराज जिन के विदह्यादिक नारी जी । विन के जन्मया जुगल दो वाल कुंवर कुवरी सुख दानी जी । एक वैरी देव ने हरण लाल को कीनो ।महाराज जंगल में लायो तानी जी । देऊं सिला ऊपर पछाड़ देव ने दिल में ठानी जी ॥ दोहा ॥ फेर देव ने ज्ञान लगा कर दिल में किया विचार । वाल घात करनी नहीं अच्छी । अधरमचदे पार ॥ वेताड़ परवत ऊपरे । रन्ता पुरी अगार । वालक न में छोड केरे । देव गयो तिणवार ॥ लावनी॥ उसवक्त फेर तो चंद्रगती वहां आवे । पुनवंत वालको जान तुरंत उठावे। अमोल पुष्पवती रानीने जोलावे। निज नंद नहींसो

नंद करी ठैरावै ॥ चौपाई ॥ फेर महोत्सव राव मढ़ायो। भामंडल नाम थपायो ॥ दिन जावै सुख में सवायो। विदे रानी को जीव घबरायो ॥ निज पास पुत्र नहीं पायो। चंद्र कला सम नंद दर्शायो। टेक। अब जनक राय ने खबर करी नंदन की।महाराज पता किंचित नहीं पावै जी ॥अब॥ ॥ १ ॥ मांता कन्या को देख मु:ख सुख पाई। महाराज सीता यों नाम दियो उद्धार। रूप लावन्य गुण करी युक्त जोबन वल इतवार। कन्या के जोग कैई कुंवर देखे राजा ने। महाराज ध्यान नहिं आयो एक लिगार। वर जोगराय कन्यो को देखी नित मत करै विचार ॥ दोहा ॥ मलेच्छ आय मिथला विषै दीनी धूम मचाय। दशरथ राय निज नंद को आज्ञा दी हुलसाय। रामचन्द्र सैन्यां लेई मिथला पहुंचे आय। जीत कराई जनककी दुश्मन दूर भगाय ।ला। ये रामचन्द्र को रूप जनक राय देखी कन्या के योग वर जान लियो है विषेखी। कर दीनी निश्चै देर करी नहिं ऐकी। अजुध्या में पधारे राम वधाई जैकी ।। चौ. ॥ सिया रूप की महिमा भारी। सुन नारद आये तिह वारी। सिया डर गई रिषी ने निहारी। दौड़ी महिल में मांत पुकारी। आई दास्यां रुषीपै जिवारी। दियो हटाय जरा न विचारी ॥ टेक ॥ नारद जी दौड़ वेताड़ गिरी पै आये। महाराज मन में ये मतो उपजावे जी ॥ अब ॥ २ ॥ सीता को रूप

नारद जी पठ पै लिखने। महाराज आयो जहां चन्द्र गती भूपाल। सियाकौ रूप भामंडल तांई दिख लायो ततकाल। कुंवर चित्र को देख काम में छायौ महाराज मोह अंध सूझै नहीं लिगार। जब पूंछे राव पुत्र समझाई जान्यौ सकल विचार॥ दो॥ चपल गती विद्या तई। राजा लियौ बुलाय। चुपके जाके जनक राय को। यहां पर लाओ उठाय। निज राजा पास लाई राय ने। देर करी कुछ नांय। प्रीत प्रेम से सीता मांगी। जनक कहै इमवाय॥ ला.॥ पहिले सिया मैनें दीनी रामके तांई। जब चन्द्रगती ने ऐसी बुद्ध उपाई। देव जोग धनुष दो मेरे पास हैं साई। परणेगा सिया जो लेगा इसे उठाई॥ चौ.॥ लेई धनुष निज धाम सिधाया। फिर सोरा मंडप राव रचाया। कैई देश का नृपति बुलाया। चन्द्र गती भामंडल आया। एक दूत दशरथ के पठाया। दशरथ निज नंदन संग लाया॥ टेक॥ वज्राव्रत अरुणाव्रत दोई धनुष को। महाराज जनक मंडप में रखावै जी॥ अव॥ २॥ कुल राजा मिलकर निज २ आसन बैठे। महाराज सीता सिंहार सजावे जी। करी धनुप वान की ...जा खास मंडप में आके जी। खड़ी सिया हिर्दे मे राम नाम जपती है। महाराज कैई भूप गये लुभा के जी। भामंडल सिया का रूप देख गया मुर्छा खाके जी॥ दोहा॥ द्वार पाल राव जनक को। सभा बीच यों कैय। धनुप चढावै जो

कोई। उनको सीता देय। भूपति पच २ हारिया। धनुष उठै नहीं ते हे। मुख कुमलाई राजा वी दूरा खड़ा रहे।ला। हुए रामचन्द्र सभाके वीच अब खड़े। मस्तक मुकट कुंडल रत्नों के जडे। मणि मोतियों के केई हार गलेमें पड़े। आ ठाड़े धनुष जां भूप देखें केई वड़े ॥ चौ ॥ श्री राम चन्द्र धनुष टंकारे। देख पराक्रम धूजे भूपारे। सिया ले फूलनकी मारे श्री रामचन्द्र गले विच डारे। दूजो धनुष लक्ष्मण धारे। जोई अचरज पाम्यां नर नारे। टेक। अब जनकराय सीता का लग्न कर दीना। महाराज भूप सब घरै सिधावे जी ॥ अब ॥ ४। फेर दसरथ राय ने सीख जनक से लीनी। महाराज अजोध्या वीच पधारे जी। हुए घर २ मंगलाचार वधाई वटती सारे जी। एक समें मुनि महाराज आये चउ ज्ञानी। महाराज सत्य भूती अणगारे जी। आवंद्या दश रथ भूप संग लेई परवारोजी। दो ॥ चन्द्रगती और भामं डलजी। जिनंद वंदवा जाय। अजोध्या नगरी वागमें। भेंटया ते मुनिराय। भामंडल सीता तनी कही वात रिषराय। भाई बहिन दोनों मिल्या। कीधो बहुत उच्छाय। ला। फेर चन्द्र गती राजा ने संजम लीनो। वो राज सभी भामंडल तांई दीनो। यो संबंध कथा के अनुसारे में लीनो। उगनीसे त्रेसठ कानोड कातिक को महिनो ॥ चौपाई ॥ श्री जुवा-हरलाल गुरु देव हमारे। वाल ब्रह्मचारी निज आंतमतारे

देई ज्ञान भव जीव उवारे। जाने बंदू में त्रिकारे। गुरु हीरा लाल अनगारे। जाने पूर्ण कियो उपगारे। टेक। चौथमल कहैं गुरू कृपा से। महाराज संपदा वंछित पावै जी॥ अब सुनों लगा कर कांन सिया का व्याह सुनावें जी॥ इति॥

लावनी तर्ज लगडी नं० ६॥

कहता हूं मैं लच्चण साध के सत गुरू लेवो तुम धार। आप तिरें हैं और को भवसागर दें पार उतार। स्वेताम्बरी है नाम जिन्हों का जो स्वेत वस्त्र के धारी हैं। पंचमहाव्रत पालते सुद्ध वडे आचारी हैं। मुंह ऊपर वो रखें मुंहपती ममता जग से निवारी है। रजो हरण रखते जीव दया के काज त्रिकारी है। टेक। बीतराग के बचन आगे कर पीछे चलते सदां विचार। कह। १। देश सर्व अस्थानके त्यागी सोभा वरजी सकल शरीर। राग द्वेश को टाल के जाने एकसा रंक अमीर। त्रेकरण जोग हिंसा को छोड़ें वह पट काया के बन गये पीर। परिसा आयके पडे उन्हों पै कभी न होवें जरा अधीर। टेक। सर्ल स्वभावो न्याय केधारी तीस ओपमां कहीं उद्धार। कह। २॥ विषे कषायको मेट अस्ट पर वचन की खप करते त्रकाल। निग्रंथ वोही जिन्हों के पास जमां है तप धन माल। नव वाड ब्रह्मचर्य के पालक दश यती धर्म में रहते लाल। नव कलपी विहारी सनातन जैन धर्म के हैं प्रतिपाल। टेक। मान अपमान सम

आँत्म ग्यान में मगन रहै हैं निर अहंकार। कह। ३ ।इत्या दिक बहु गुण हैं मुनि के श्री जिनवर ने किये बखान। पक्ष को छोडी करो तुम अपने दिल मे खुद पहिचान। कई पाखंडी आज कल के करते अपनी ताना तान। ग्यान न पूरा जिन्हों के धोखे में आते लोग अजान। टेक। चाहे मोक्ष तो धार गुरु तू भावी आँतमा का अणगार। कह। ४ ।पूज्य श्री सरेलाल मुनिश्वर जुहारलाल मुनि सूर्य समान। बाल ब्रह्मचारी कही नहीं जावे तारीफ है एक जबान। पंडित हैं नंदलाल मुनिवर भाई सगे तीनों लोजांन मुनि हीरालाल जी गुरु मेरे वह तो हैं बडे बुधवांन। चौथ मल कहे नरायनगढ मे उन्नीसै त्रेसठ वैसाख जकार। कहता हूं मैं लक्षण साध के सतगुरु लेवो तुम धार ।।इति।।

।। लावणी नम्बर ।। ८ ।।

श्री श्री रिषभ कुमाररे। लई संजम भाररे। कीधो उग्र विहाररे।पीछे मोरा देवी मांत। मोह वस करे विला पात। किंठ म्हारो अंग जात। म्हारा लाल जी रे। म्हारा लाल जी। १। रिषभ जी थें तो संजम आदरी विहारगया करी। नैन ग्या झरी। जोवूं थांने कनी ठोर। म्हाराकाले जारी कोर। थांसिवा म्हारे नहीं ओर ।। म्हा ।। २। जोवे मांता वाटरी। दिनने रातडी। दूखे आंतडी। नहीं संदेह सोलिगार। किंठ करि गयो विहार। म्हारो रिषभ कमार

।। मा ।।३।। रिषभजी थां विन म्हारे नहीं सरे ।वेगाआवो घरै । जीव धीरप नहीं धरै । म्हारे एका एकी लाल । मैं तो मोटो कीधो पाल । कदी नहीं आवा दीधो आल । म ।। ४ ।। पपैयो पीउ २ करे । पानी नहीं पड़ै । ये। जी।वतडफडे चित चंद चकोर । जैसे पानी विना मोर । नहीं चाले म्हारो जोर ।। म्हारा ।। ५ ।। भरत जी वेटारी खवर नहीं । पूंछूं किने जाई । तिण विरियां मांही।।दादी दरशन काज ।आया भरत महाराज । कहैधन दिन आज । म्हारी मांत जी।।६।। देख्यो दादीरो मुख ने । मुजरो कीधो झुक ने । पूंछे साता सुख ने। बोली नहीं जद मांत । भरत पूछै जोडी हाथ । कांई फिकरनी वात ।। म्हारी ।। ७ ।। भरत जी तु तो छै खंडरा जियो । चक्र व्रत वाजियो । इम छाजियो । रानियांचौसट हजार । नांटक वत्तीस प्रकार । लागी रह्यो झनकार । यामें झली रह्यो जी ।। म्हारी ।। ८ ।। भरत जी खवर न लीधी तातरी । म्हारा अंग जातरी । चिंता इणी वातरी । सोच लागो है अपार । कौंण करे वीकी सार । वस्त्र पानी और अहार ।। म्हारा ।। ९ ।। रिषभ जी अठे तो सोनारी थारियां । भोजन त्यांरिया । कर्‌मन वारियां । पासविठानें जिमाती । मेवा मिष्टान मंगाती। गुचर ने खिलाती ।। म्हारा १०।। रिषभ जी अव तो मांगी ने खावनो । घर २जावनो मिले सोई लावनो । सरस निरस अहार । भटकै कई घर

द्वार । माविन कौन करै सार ।। म्हारा ।।११ ।। रिपभ जी सीयाला में सी पडे । हाथ पग जो ठरे । नित उठ विहार करे । अव कैसे काढे दिने ।कौंन उढावसी विने ।ऐसीअटकी कहो किने ।। म्हारा।। १२।। रिपभजी अठे तो सियाला आवता । हूं करती जापता । कदी नहीं कांपता । उढाती धोसा ने मुल मुल । ठंड नही लागती विलकुल । अव वेटा को कांई मुल ।। म्हारा ।। १३ ।। रिपभ जी वैसाख जेठ नो तावडो । तपै आकरो । वाजे लू ने वायरो । धरती होवेघणी लाल । पग अर वांणी चाल । रिपभ घणों सुकमाल ।। म्हारा ।।१४।। रिपभ जी चौमासे की रातणी । घटा कारी चडी । लागी जल झड़ी । गाज रह्यो घन घोर । विजली चमकै चहुं ओर । वोले पपैया ने मोर ।। म्हारा ।। १५ ।। रिपभ जी अठे तो चौमास पै । सोतो आवास पै । ढोल्यां खास पै । अब चौमासो किणी थान । छत्री देवल स्मसान । जाको पतो न निशान ।। म्हारा ।। १६ ।। भरत जी खवर जल्दी मगाय दो । कागद वताय दो । होवे जटे मं वुलाय दो । कहै भरत जोडी हाथ। अठे आवसीजगनाथ रूव रू कर लीजो वात ।। म्हारी ।। १७ ।। भरत जी माजी ने समझाय नें । वेठा छै आय नं । सभा मांयनें । खडा केई सुल तान । इतने वाग के दरम्यांन । समो सरया भगवांन । म्हारा नाथ जी हो । ।। १८ ।। नाथ जी त्रिगणो

रचौ है देवता। सुर नर सेवता। समो सरण देखता। सुनीं वनिता सुभ्फार। वंदन आया नर नारि। पर खदा बारे प्रकार ॥ म्हारा ॥ १६ ॥ भरत जी बाग वान दीधी वधावणी। पधारया जग धनी। उठया भरत सुनी। खवर ये मांता ने दीधी। जैसें मिसरी घोर पीधी। त्या सूं वंद ना जो कीधी ॥ म्हारा ॥ २० ॥ मांत जी गेंणां आभू पन सज करे। अम्वा वाड़ी गज धरे। वैठा ऊपरे। लारे घणां परिवार। पधारया प्रभुजी के द्वार। देखो रिषभ कुमार ॥ म्हारा ॥२१॥ मांतजी देखौ जिनजी को त्रिगणं। हरस्यौ जीवड़ो। राख्यौ गज खड़ो। वेटा म्हारे पास आसी। दूंगी ओलंभो स्यावासी। ऐसी मन में विमांसी ॥ म्हारा ॥ २२ ॥ लालजी थारी सूरत सोहती। नित उठ जोवती। म्हारो मन मोहती। भला पधारया सुख सैन। कद सुनूं मिठड़ा वैन। जव उपजे म्हने चैन ॥ म्हारा ॥ २३ ॥ नांथजी करी सजाई भरत भूपालरे। सैन्यां लाररे। राजा कैई हजार रे। पड़ी नगाड़ानी घोर। पधारयाप्रभु जी नींगोड। वंदन करै वे कर जोड़ ॥ म्हारा ॥ २४ ॥ भरत कहै मांता जी सुनों। देता ओलंवो घनो। ठाट [illegible]ख्यो पुत्र तनो। सिंघासन छत्र धरीजे। जोडा चवरका [illegible]ाजे। देख पाखंडी जो धूजे ॥ म्हारा ॥ २५ ॥ लाल जी बिछुड़ा तो घनां पाडिया। मोह उतारिया। अवै पधा-

जिस्के चोंच ॥ जि । २ । रस्ता गीर देख्यो मानवीरे ऊजड होतो खेत । कोई गफलत में हो मतीरे उपगारी हेलादेत । जि ॥ ३ ॥ थोडौसौ उद्यम करोरे माल जापते होय । परमादी जोको रहेरे गयो जमारो खोय । जि ॥ ४ ॥ खेती तो निपजी थकीरे कुंडरिक दीधी विगोय । उद्यम कर पुंड रीक मुनीरे रिद्ध पामियां सोय ॥जि॥५॥ उगणीसे चौसट मेंरे पोश आगर के माहिं। गुरु हीरालाल जी के मसाद चौथमल यों गाय ॥ जि ॥ ६ ॥इति ॥

॥ स्तवन नं. १० ॥ राग मांड ॥

हो सरदार थेंतो दारूणा मत पीजो म्हा का राज । आंम फले परिवार सें रे । मऊआ फलै पत खोय । जाका पानी पीवतारे । तामें बुद्धि किम होय ॥ हो ॥ १ ॥ पी पी प्याला हो मतवाला । हर कांई गिर जाय । गाली देवे बे तरह रे । सुध बुध को विसराय ॥ हो ॥ २ ॥ वमन होय वाजारमें रे । मखियां तो भिनकांय । लोग बुरा थाने कहै रे । मोसूं सुना न जाय ॥ हो ॥ ३ ॥ इज्जत धन दोई घटे रे । तनसूं होय खराब । चौथमल कहै छोडो सज्जन । भूल न पीयो शराब ॥ हो ॥ ४ इति ॥

॥ स्तवन नंबर ॥ ११ ॥ राग आसावरी ॥

गुरु स्वारथ से सिद्धि पावे । गुरु स्वारथ ही बन्धु जगत मे । दुक्कर कार्य करावे । गुरु स्वारथ कर के महा मुनिराज

खपक सैण चढ़जावे। पु ॥ १ ॥ पुरुस्वारथ करणवी सीडी ऐमे पास होजावे। उद्यम हीन दीन नर सो को कुंणमाखी उडावे। पु ॥ २ ॥ सत्य शील आचार तपस्या। पुरुस्वारथ पार लगावे। अरिहंत सिद्ध लब्ध पात्र पद। सो सब दुःख मिटावे ॥ पु ॥ ३ ॥ पुरु स्वारथ कर रामचंद्र जी सीतालंका से लावे। उद्यम हीन के मन के मनोरथ दिल के बीच रह जावे ॥ पु ॥ ४ । पुरूस्वारथ कर के चींटी देखो वजन खेंच ले जावे। पुरू स्वारथ कर के राजा बादशाह समर जीत घर आवे ॥ पु ॥ ५ । परम धरम में पुरु स्वारथ कर आवा गमन को मिटावे। चौथ मल कहै गुरू प्रशादे जाके जग गुंण गावे ॥ पु ॥ ६ ॥ इति ॥

॥ स्तवन ॥ नम्बर १२ ॥

थें तो सांचा बोलो बोल जी सग लानें वाला लागो। प्रिय अनेहित कारी वानी ज्ञानी ने सत्य बखानी। सत्य छतां अप्रिय कटुक यदं सो हो असत्य कहानी ॥ थें ॥ १। झूठा बोलें प्रतीत जमावे कइ कुयुक्ति लगावे। सत्य भाषी निर्भे हो रहवे सुर जिस्का गुंण गावे ॥ थें ॥ २। सत्य खीर प्रिय मिश्री सम है। असत नोंन सा खारा। क्रोध लोभ भय हांस्य से बोले कभी नहीं निस्तारा ॥ थें ॥ ३। तोतली जीव गूंगा मुख रोगा दूसरा मूरख जानो। अनादेज वचन इत्यादिक झूठ तना फल मानो ॥ थें ॥

४ ॥चोग्वीं जीव सुसपष्ट भाषी पंडित मूस्वर जी का। निर्दोष आदेज वचनादिक सब सत्य तना फल नीका ॥ थें ॥ ५। ऐसी जान असत्य को छोडी बोले निरवद वांणी। चौथ मल कहै गुरु प्रसादे मिले मोक्ष पट रानी ॥ इति ॥

॥ लावणी ॥ नम्बर१३ ॥

ये तीर्थंकर मुनि राव रंक नहीं गिनता। महाराज कर्म बलवंत कहावे जी। विन भुगते छूटे नहीं निका चित जो बंध जावे जी।थी चौथे आरे में सावत्थी नामा नगरी महाराज कनक केतू नामें भूपाल। जाके मालिया सुंदरी नार रूप मे देवी के अनुसार। था खंदक नामा कुमर कला गुण आगर महाराज। राजनीती के बीच हुशियार। पुन्य योग पधारे बाग बीच श्री विजै सेंन अन गार ॥ शैर ॥ खबर हुई नगरी विषै हुलसे बहुत नर नार जी। मुनि वंदन को चले सज सज के सब सिंगार जी। आके बैठे सामने सब करके नमस्कार जी ॥ चौपाई ॥ अब मुनि वर ज्ञान सुनाया। साधु श्रावग धर्म बताया। धन योवन कारमी काया। अल्प सुख में थें क्यों लुभाया। सुन लोग नगर में सिधाया। कुंवर को वैराग जो छाया ॥ टेक ॥ मैं माता पिता से पूंछ संजम लेऊंगा। महाराज ऐसे कह घरे मधारे जी ॥विन ॥ १। मांगी आज्ञा माता के पास आ कुंवर। महाराज माता सुन के मुरछानी जी। भूल गई

हांस नैनों के बीच से छूटा पानी जी। कुछ देर बाद माता नें हांस सम्हाला। महाराज कोमल काया कुमलानी जी। मत काढो ऐसी बात लाल यों बोले रानी जी ॥ शेर ॥ महल रत्नों से जडे सुन्दर तो अबला नार जी। मत छोड़ो ऐस भोग को संजम है खांडा धार जी ॥ बहुत समझाया मात ने माने नहीं कुंवार जी। करके महोत्सव आनन्द से दिलाया संजम भार जी ॥ चौपाई ॥ करै ज्ञान ध्यान हित कार। मुनि लीनों अविग्रो धार। कीनों एकल आप विहारे। राजा रानी सुन के विचारे। दीना पान से संग सवारे। मुनि को खबर नहि लिगारे ॥ टेक ॥ अब करके विहार मुनि कुंती नगर पधारे। महाराज बाग में ध्यान लगावे जी ॥ विन ॥ २ ॥ जहां पुरुष सिंह राजा सुनंदा रानी। महाराज मुनि के बहिन बहनोई जी। ऐसे जान पुरुष निज काज गये वहां रहा न कोई जी। अब मुनि अहार लेने को शहर मे पहुंचे। महाराज राजा और रानी दोई जी। उस वक्त झरोखे खेले सार और पास न कोई जी ॥ शेर ॥ घर २ फेर मुनि गोचरी ले अहार दोपन टाल जी। महल तले रानी की मुनि पै नजर पड़ी तत्काल जी। देख सूरत साध की रानी हुई नेहाल जी। भ्रात अपना जान रानी सुर छानी तिनवार जी ॥ चौपाई ॥ राजा चिंत हुआ ये कोई। साधू देख ललोई छाई। ऐसे

लीनी खाल उतार तैने यहां पीछी लीनी उतार ॥ शेर ॥ करम संचित जो करें बिन भुगते नहि छूटे लिगार जी । राजा सुन के चेतियो धक २ यो संसार जी । राज देकर कुंवर को राजा रानी दूत लारजी । करके महोत्सव धूमसे ले लीनों संजम भार जी ॥ चौपाई ॥ राजा रानी करै धरम कमाई । गया मोक्ष करम खपाई । पान से दूत सुर गत पाई । उन्नीसे इकसट में बनाई । गुरु हीरालाल मुनि राई । ता प्रसाद चौथमल गाई ॥ टेक ॥ सेखे काल संत चार चैत सुदी ऐकम में शेर का नोड़ कहावे जी । बिन भुगते छूटे नहीं निकाचित जो बंध जावेजी ॥ इति ॥

॥ स्तवन ॥ १४ ॥ तर्ज बनजारे की ॥

सखी मान कहन तू मेरी । जिस्से सुधरे जिंदगी तेरी । फिरे जोवन में मदमाती । नित नया सिंगार सजाती जी । नाना विध गहना पहरी ॥ स ॥ १ ॥ हो परमेश्वरसे राजी । तू मत कर नखरा बाजी । ऐसी वख्त मिलै कब फेरी ॥ ॥स ।२। ऐसी जान गफलत तजदीजे । दया दान शील जस लीजे जी । जो चले वहां पर लेरी ॥ स ॥ ३ ॥ तेरी पुष्प सी कोमल काया । तापे कामी भंवर लुभाया जी । सो तन होगा राख की ढेरी ॥ स ॥ ४ । तू जाने कंथ मुझ प्यारा । न करे कभी किनारा री । है स्वांस वहां तक ढेरी ॥स॥५॥ तुझे वन में छोड़ के टरके । वो दूजी कामिन नर के री ।

ना करै याद थी प्रीत घनेरी ॥ स ॥ ६ ॥ पुन्य पाप का त फल पावै । वहां कोई न आन छुडावैरी । फकत तुही अके ली हैरी ॥ स ॥ ७ ॥ शांत सरम चमा ले धारी । कहै राव अच्छी ये नारी जी । जो न बोले ऐरी गैरी ॥ स ॥ ८ ॥ कहै चौथ मल हितकारी । ले देव गुरु सुध धारी जी । धरो ध्यान प्रभू को सेवै री ॥ स ॥ ६ ॥ इति ॥

॥ लावणी रंगत छोटी नं० १५ ॥

मत पड़ त्रिया के फंद मान ले कहना । है नया रंगरसी प्रीत चित्त क्या देना । ये सूरत की तो दीखती भोली भाली । डसने मे हैगी पक्की नागिन काली । हंस हंस के रिझावै लगा हाथ की ताली । फसे इसके जालमे पडे लिखे केई जाली । नहीं इसके विषकी दवा होवे कब चैना ॥ है ॥ ॥ १ ॥ नही करना कोई विश्वास ऐसी कपटनका । कर देगी सत्यानाश तेरे धन तनका । ये बुरी लुटेरी लूटे रस जोवन का । किया इस्का संग वो अधिकारी नरकन का । लगी चलाने को बाण तीर यो नैना ॥ है ॥ २ ॥ ये मात पिता भगनी से प्रीत छुडावे । इक छाण भर में नाराज खुशी होजावे । कभी बोले मधुरा बैन कभी घुड़कावे । इसकी माया का पार कहो कुण पावे । बडे २ वीर को नचावे ... पनी पैना ॥ है ॥ ३ ॥ इसके कारण दशकंठ ने दुःख उठाया । सुन पदमनाभ ने अपना राज गमाया । भीमसी ने कीचक

को मार गिराया । फिर इस्के भोग से तिरपत नहि हो काया । कहै चौथमल सत शील रत्न को लेना है ।४। इति ।

॥ राग माड़ नम्बर ॥ १६ ॥

हो म्हारी मानों क्यों नहि कहनरे वटोईरा खर्ची ले ले लार । तू मुशाफिर खाने में सोतो । झलती मांझल रात । आस पास तेरे हैरु फिरत है । और न कोई साथ ॥हो॥१॥ तीन रत्नतेरे बंध गठरी में । जिस्का कारियो जतन । गफलत मे रहियो मतीरे । नरभव मिले कठिन ॥ हो ॥ २ । पर भूमि पर भूप की रे । तेरो यहां पर कोंन । व्रथां माया में फसियो रे थें । भुगतो चौरासी जोंन ॥ हो ॥ ३ ॥ इस मुशाफिर खाने मांही । लख आवत लख जात । सुकरत खर्ची पल्ले वांधो । तूमत जा खाली हाथ ॥ हो ॥ ४ ॥ भोर भये उठ जाव तोरे । चार पहर की वात । चौथमल कहै सुयस लीजे ये जग में रहजात ॥ हो ॥ ५ ॥ इवि ॥

॥ राग मांड नम्बर ॥ १७ ॥

मिल्यों अब नर भव को अवताराभज श्रीशासन पति सरदार । पूर्व पुन्य प्रताप सूंरे । घर कुंटव परिवार । पांचों इन्द्री सरीर निरोगी । धन कंचन भंडार ॥ मि ॥ १ ॥ वाल पनो गयो खेल कूदमें । जोवन रमड़ी लार । मद मातो मस्तान होय ने । भूल गयो प्रभु सार ॥ मि ॥ २ ॥

मुठी बांध कैंरे। जावैगा हाथ पसार। कोई नही आवैगा लारे। देखो आंख उघार ॥ मि ॥ ३ ॥ इन्द्र नरेन्द्र बडे वडे राजा चक्रबृती भूपाल। चौदह रतन नव निधान के नायक। जानें ले गयो काल ॥ मि ॥ ४ ॥ चौथमल कहै तप जप कीजै। लो पर भव खर्ची लार ॥ सत गुरु जी कौ सरनों लीजै। हो जाओ भव जल पार ॥ मि ॥ ५ ॥ इति ॥

॥ राग मांड़ नम्बर ॥ १८ ॥

चेतन अव चेतो अब सर पाय । थाने सतगुरु जी समझायरे ॥ चे ॥ काल अनंता जग मांही फिरतों। पायो नर अवतार। तारन तरन सतगुरु मिलौरे। हिरदे ज्ञान विचार ॥ चे ॥ २ ॥ तन धन जोवन जान अथिता। वीजू को चम कार। पलटत वार न लागे निशभर। सुपना सो संसार॥ चे ॥ ३ ॥ जो नर ढोल्यां पौड़तारे। फुलवन सेज विछाय। वत्तीस विध नाटक नें देखतां। ते पण गया विरलाय ॥चे॥ ॥ ४ ॥ टेड़ी पगड़ी बांध तारे। चावता नागर पान। लाखों फौजें लारे रहती। कहां गया सुलतान ॥ चे ॥ ५ ॥ अब तो चेतो चतुर सुजान। मत जग में ललचाय। चौथमल कहै लाभो लीजे। प्रभूसें ध्यान लगाय॥ चे॥६॥ इति ॥

॥ स्तवन नम्बर ॥ १६ ॥

थारो नर भव निशफल जाय जगत के खेलमें। सुंदर

के संग सेज में सोवे। रात दिवस तू महिल में। इतर लगावै पंन्न घुमावै। जावे स्याम को सैलमें॥ था ॥ २ ॥ कंठी डोरा हार गले में। वैठे मोटर रेलमें। मौत पकड़ ले जावै तोकूं। हवा लगे जूं पेलमें ॥ था ॥ ३ ॥ धर्म करैगा तौ मोक्ष वरैगा। नहीं चौरासी जेल में ॥ चौथमल हित शिक्षा दीनी इंदौर आलीजा सैरमैं॥ था॥ ४ ॥ कसूमल पाग केशरिया वागा। पटा चमेली तेलमें। काम अंध घूमें गलियों में। होय छवीला छैलमें ॥ था ॥ ५ ॥ इति ॥

॥ स्तवन तर्ज ॥ ठुमरी नं० २० ॥

कर्मन की गत ज्ञाता सुनावै। जैसा करै वैसा फलपावै। दोनों भाई राम और लक्ष्मण। देखो जी वन वास रहावै ॥ क ॥ १ ॥ हरिश्चंद्र राजा तारादे रानी। ताके पासे नीर भरावै ॥ क ॥ २ ॥ सीता सती चन्द्रसी निरमल। कलंक उतारन धीज करावै ॥ क ॥ ३ ॥ कोड़ विलाप किया नहीं छूटे। ज्ञानी तो हंस हंस कें चुकावै ॥ क ॥ ४ ॥ चौथ मल कहे कर्म मिटे सब। वीर प्रभूसें जो ध्यान लगावै॥इति॥

॥ स्तवन नम्बर ॥ २१ ॥

प्रभू के भजन विन कैसे तरोगे। सांच कहूं फिर सोच करोगे। आठ पहर धंधे में लागो। सजन कुटंब बिच नेह धरोगे ॥ प्र ॥ १ ॥ मोह नशा के मांही छक के।

मे नही डरोगे ॥ प्र ॥ २ ॥ यह ज्वानी चली है झट पट ज्यों नादिया को पूर उतरैगो ॥ प्र ॥ ३ ॥ पर भव में तेरो कोई न साथी । तेरो कियो फिर तुही भरैगो ॥ प्र ॥ ४ ॥ चौथमल कहै सत गुरु से सीख सुण । सबी काज तेरो सुधरैगो ॥ प्रभूके भजन बिन कैसे तरोगे ॥ ५ ॥ इति ॥

॥ स्तवन ॥ नम्बर २२ ॥

सांता कीजे जी श्री शांति नाथ प्रभू शिव सुख दीजे जी ॥ सां ॥ १ ॥ शांति नाथ है नाम आपको । सब ने सांता कारी जी । तीन भवन में चावा प्रभुजी । सुरगी निरागी जी ॥ सां ॥ २ ॥ आप सरीखो देव जगत में । और नजर नहीं आवेजी । त्यागी ने वीन रागी सोही । मुझ मन भावेजी ॥ सां ॥ ३ ॥ शांति जाप मन मांही जपना । चाहे सो फल पावे जी । ताप तेजारी दुःख दारिद्र । सब दूर जावेजी ॥ सां ॥ ४ ॥ विश्वसेन राजा के नंदन । अचरा देवी जायाजी । चौथमल कहे गुरु प्रशादे । बदां सुहाया जी ॥ सां ॥ ५ ॥

सम्पूर्ण, ॐ शांति शांति शांति

॥ स्तवन ॥

ऐसे मुनियों को हो प्रणाम हमारी । टेक ॥ तज राग द्वेष को मुक्ति की सुरत सम्हारी ॥ सब तजा राग वैराग चित्त को छाया । बस्ती को त्याग जंगल से नेह लगाया ॥ अद्भुत छोडी पोशाक सुख बिसराया । तज साल दुशाले श्वताम्बर मन भाया ॥ दिया त्याग अमीरी भेस फकीरी धारी ॥ तज ॥ १ ॥ तज भूख प्यास निश दिवस सिद्ध गुण गाते । निज तरे अन्य भव जीवों पार लगाते ॥ मुक्ती की लगन में मगन वह दिल बहलाते । जो जाते उन के तीर उन्हें समझाते ॥ ऐसे मुनिजन अनगार पंच व्रतधारी ॥ तज ॥ २ ॥ नहीं उन्हें काम अपने और बेगाने से । जो मिले उन्हें है मतलब समझाने से ॥ नहीं एक ठाम रहने व अन्त जाने से । नहीं है प्रयोजन खाने औरन्हाने से ॥ द्वीविंश परीसा सहें जो है अतिभारी ॥ तज ॥ ३ ॥ एक रजोहरण कर रखें जीव रक्षा को । मुख पे पत्ती बांधे है शुभ शिक्षा को ॥ लिये कास्ट पात्रा हाथ जाते भिक्षा को । इरिया सुमती से चलें दिपा दिक्षा को । चन्द्रभान नवावे शीश कुमत को टारी ॥ तज ॥ ४ ॥

। इति ।

॥ जाहिर खबर ॥

१ संशय सोधन (अर्थात्) सत्या सत्य
निर्णय

२ जैन गजल वहार

३ जैन सुख चैन वहार

४ जीव विलास

५ जैन धर्म के नियम

पता—श्री जैनश्वेताम्बर
साधुमार्गीधर्मोपदेश
प्रकाशनी सभा लोहा
मंडी आगरा

"प्रेम-मंडल" ट्रेक्ट नं १

अहिंसा परमो धर्मः

"अहिंसा"

अर्थात

'आनन्दकी कुंजी'

लेखक—बाबू सूरजभानुजी वकील
नुकड़ जि० सहारनपुरनिवासी

प्रकाशक—प्रेम मंडल
हरदा सी० पी०

—:o:—

मिलनेका पता- मंत्री-प्रेम-मंडल हरदा, सी०पी०

मुद्रक—

श्रीलाल जैन 'काव्यतीर्थ'

जैनसिद्धांत प्रकाशक (पवित्र) प्रेस

९ विश्वकोष लेन, पो० बाघबाजार

कलकत्ता।

"प्रेम मंडल" हरदा

के

उद्देश्य

(१) अहिंसा धर्मका जनतामें प्रचार करना।

(२) सामाजिक कुरीतियोंसे समाजको मुक्त करना॥

सभासदोंके नियम

प्रत्येक सज्जन जो अहिंसाप्रेमी तथा मद्य, मांस त्यागी हों १) वार्षिक शुल्क दे इस मंडलके सदस्य हो सकते हैं।

नोट—किसी भी महाशय द्वारा दिया हुआ दान "मंडल" सहर्ष स्वीकार करेगा।

दान

श्रीमान् बाबू बिरजीलालजी कायस्थ मुजफ्फर-नगर निवासी ने ५०० प्रतियों की कीमत देकर अमूल्य वितरण कराई है, जिसके लिये उन्हें धन्यवाद है।

मन्त्री

निवेदन ।

संसारकी यह भारतभूमि जोकि सुख शांतिकी खान थी, जिसकी कि सभ्यता और कार्य कुशलताकी ओर सारे संसार की दृष्टि चातकके समान इक टक निहारा करती थी, जो कि एक समय उन्नतिके शिखर पर चढ़ा हुआ समस्त भूमिमें अपनी अनुपम छटा फहरा रहा था। हाय ! वही भारतवर्ष अवनतिके गड़हेमे गिरा जा रहा है, मूर्खोंकी मातृभूमि कहला रहा है। इस पवित्र भूमिको इस प्रकारका दुर्भाग्य हम ही लोगोंने अपनी सामाजिक कुरीतियों तथा अपने आश्रितोंका खून खच्चर (हिंसा) कर प्राप्त कराया है। अब अधिक समय नहीं, लेखनीमें शक्ति नही, हृदयमें भाव नही, कि मैं इन सब दुःखड़ोंको आप भाइयोंके सन्मुख दर्शाऊं। हृदयके भाव हृदयमें ही विलीन हो जाते है। चक्षुओंसे अश्रुधाराका झरना बह निकलता है। इस कारण संक्षिप्तमें ही आप लोगोंके सन्मुख इस "प्रेममण्डल" ारा श्रीमान् सूरजभानुजी वकील नुकड़ जिला सहारनपुर निवासीसे प्राप्त सर्वोत्कृष्ट ट्रैक्ट अवलोकनार्थ एवं पालनार्थ उपस्थित करता हूं। आशा है कि आप सज्जनगण इससे स्वतः, सम्बन्धियों तथा इष्ट मित्रोंको अनुपम लाभ पहुंचानेका अवश्य प्रयत्न करेंगे।

निवेदक—
कुलवन्तराय जैनी

अहिंसा

दया धर्मका मूल है, पापमूल अभिमान ।*
तुलसी दया न छोड़िये, जब लग घटमें प्राण ॥

जैसी जान हमारेमें है, जैसे प्राण हममें है, जैसा सुख दुःख हमको होता है, ऐसा ही दूसरे जीवोंको भी होता है । हम भी सुखकी इच्छा करते हैं और दुःखसे बचना चाहते हैं, इस प्रकार ही अन्य सब जीव भी दुःखसे घबड़ाते हैं । हम भी मोक्ष पानेके अधिकारी हैं और अन्य भी, हम भी राग द्वेषमें फंसे हुए हैं और अन्य भी, तब हमको क्या अधिकार है कि हम दूसरेको मारें, सतावें और तड़पावें । जितनी हम अहं बुद्धि रखते हैं और ममारको सिर पर धरते हैं उतने ही पापोंमें फसते हैं और दुःख उठाते हैं, हमारा असली स्वभाव तो राग द्वेषरहित परम शांत अवस्थामें रहना और परमानन्द पदमें मग्न हो जाना ही है परन्तु राग द्वेषमें फंसे रहनेके कारण ही हम सब नाना प्रकारके नाच नाच रहे हैं । कभी वनस्पति बनते हैं, कभी पशु पर्याय धारण करते हैं, कभी नरकोंमें जाते हैं, कभी मनुष्य होते हैं और

निवेदन।

संसारकी यह भारतभूमि जोकि सुख शांतिकी खान थी, जिसकी कि सभ्यता और कार्य कुशलताकी ओर सारे संसार की दृष्टि चातकके समान इक टक निहारा करती थी, जो कि एक समय उन्नतिके शिखर पर चढ़ा हुआ समस्त भूमिमें अपनी अनुपम छटा फहरा रहा था। हाय ! वही भारतवर्ष अवनतिके गड्हेमें गिरा जा रहा है, मूर्खोंकी मातृभूमि कहला रहा है। इस पवित्र भूमिको इस प्रकारका दुर्भाग्य हम ही लोगोंने अपनी सामाजिक कुरीतियां तथा अपने आश्रितोंका खून खच्चर (हिंसा) कर प्राप्त कराया है। अब अधिक समय नही, लेखनीमें शक्ति नही, हृदयमें भाव नहीं, कि मैं इन सब दुःखड़ोंको आप भाइयोंके सन्मुख दर्शाऊं। हृदयके भाव हृदयमें ही विलीन हो जाते है। चक्षुओंसे अश्रुधाराका झरना बह निकलता है। इस कारण संक्षिप्तमें ही आप लोगोंके सन्मुख इस "प्रेममण्डल" ारा श्रीमान् सूरजभानुजी वकील नुकड़ जिला सहारनपुर निवासीसे प्राप्त सर्वोत्कृष्ट ट्रेक्ट अवलोकनार्थ एवं पालनार्थ उपस्थित करता हूं। आशा है कि आप सज्जनगण इससे स्वतः, सम्बन्धियों तथा इष्ट मित्रोंको अनुपम लाभ पहुंचानेका अवश्य प्रयत्न करेंगे।

निवेदक—

कुलवन्तराय जैनी

अहिंसा

दया धर्मका मूल है, पापमूल अभिमान।
तुलसी दया न छोड़िये, जब लग घटमें प्राण॥

जैसी जान हमारेमे है, जैसे प्राण हममें है, जैसा सुख दुःख हमको होता है, ऐसा ही दूसरे जीवोंको भी होता है। हम भी सुखकी इच्छा करते है और दुःखसे बचना चाहते है, इस प्रकार ही अन्य सब जीव भी दुःखसे घबड़ाते है। हम भी मोक्ष पानेके अधिकारी है और अन्य भी, हम भी राग द्वेषमें फंसे हुए है और अन्य भी, तब हमको क्या अधिकार है कि हम दूसरेको मारें, सतावें और तड़पावें। जितनी हम अहं बुद्धि रखते है और संसारको सिर पर धरते है उतने ही पापोंमें फंसते है और दुःख उठाते है, हमारा असली स्वभाव तो राग द्वेषरहित परम शांत अवस्थामें रहना और परमानन्द पदमें मग्न हो जाना ही है परन्तु राग द्वेषमें फंसे रहनेके कारण ही हम सब नाना प्रकारके नाच नाच रहे है। कभी वनस्पति बनते है, कभी पशु पर्याय धारण करते है, कभी नरकोंमें जाते है, कभी मनुष्य होते है और

कभी स्वर्गोंके देव बन जाते है, ये सब हमारी ही करनीके फल जिससे हम इस प्रकार नाना प्रकारके रूप धारण करते हैं और निर्बल और सबल बनते हुए आपसमें एक दूसरेको सताते है या सताये जाते है।

जब हम निर्बल होते है तो बलवानोंके द्वारा पीड़ित किये जाने पर उनको निर्दय, अन्यायी, अत्याचारी, जालिम, वेदद और हत्यारा मान कर यह ही भावना करते है कि इनका यह बल, यह अधिकार, यह जोर सब नष्ट हो कर हमसे भी ज्यादा निर्बल और निराश्रित हो जावें जिससे इनकी आंखें खुलें और इनको यह मालूम हो जावे कि बलवानोंके द्वारा सताये जानेसे निर्बलोंको कितना दुःख होता है। स्वयं इन पर बीते तब इनको इस बातको हकीकत मालूम होवे कि दूसरोंको सताना कैसा होता है परन्तु जब हम ही निर्बलसे सबल बन जाते है और दूसरों पर कुछ अधिकार पा लेते है तो निर्बलपनेकी इन सब बातोंको बिलकुल ही भूल जाते है और शेखीमें आकर बेख-टके निर्बलों पर अत्याचार करने लग जाते है और कुछ नहीं सोचते है कि यह बात और यह अधिकार हमको किन कारणों-से मिला है और किन कारणोंसे नष्ट हो जाया करता है, बल और अधिकार पा कर तो हम बिलकुल ही सुध बुध भूल जाते हैं और कर्मसिद्धान्तका ख्याल भी दिलमें नहीं लाते हैं, मानो यह बल और यह अधिकार तो बिना कारण अचानक ही मिल जाता है और अचानक ही नष्ट हो जाता है, इस वास्ते जब तक

बल और अधिकार है तब तक क्यों न अच्छीतरह दूसरोंको सतावें और स्वच्छन्द हो कर मौज उडालें।)

हाय! हम कैसे अन्धे हो रहे हैं कि यह नही समझते हैं कि कारणसे ही कारजकी सिद्धि होती है। विना कारण तो कुछ भी नही होता है। हमको बल और अधिकार प्राप्त होनेका भी कोई कारण जरूर है और दूसरोंके निर्बल और अधीन होनेका भी कोई कारण अवश्य है और वह कारण जीवोंके अपने २ कर्मोंके सिवाय और कुछ भी नही हो सक्ता है। शुभ कर्मोंसे बल, विद्या, ऐश्वर्य, ज्ञान और अधिकार मिलता है और अशुभ कर्मोंसे जीव नीचेको गिरता है, निर्बलता, अज्ञानता, अकर्मण्यता और पराधीनता प्राप्त करता है। शुभ परिणामोंसे शुभ कर्म पैदा होते है और जीवको उन्नति पर चढ़ाते है और अशुभ परिणामोंसे अशुभ कर्मोंकी उत्पत्ति हो कर जीव नीचेको ही गिरता चला जाता है और पराधीन अवस्था पाता है। जसी जान हममे है ऐसी ही दूसरे जीवोंमें है, जैसा सुख हम चाहते है ऐसे ही दूसरे भी चाहते है। ऐसा विचार कर अपनी और अन्य सब ही जीवोंकी भलाई चाहना शुभ परिणाम है जिनसे शुभकर्म पैदा होते है और जीव ऊंची ही ऊंची पर्याय और ऊंची ही ऊंची अवस्था पाता रहता है।

दुःख भोगनेको मजबूर हो जाता है और बिलकुल ही बेबश हो जाता है।

बलवानो ! तुमको यह बल तुम्हारे शुभ परिणामोंके कारण ही प्राप्त हुआ है, इतिहासमें लिखा है कि सुबुक्तगीन नामक काबुलका एक गुलाम एक बार जंगलमें जा रहा था कि उसको हिरणीका एक बच्चा मिल गया जिसको उसने उठा लिया और घर ले चला। हिरणी यह बात देख कर अपने बच्चेकी ममता-में उसके पीछे हो ली और निडर हो कर बहुत दूर तक पीछे २ चली गई। गुलामको यह बात देख कर दया आई और उस-ने हिरणीके बच्चेको छोड़ दिया। उसी रातको उसे स्वप्न हुआ कि हिरणी पर इस प्रकार दया करनेके कारण तू काबुलका बादशाह होनेवाला है, ऐसा ही हुआ अर्थात् वह काबुलका बाद-शाह हो गया। यह एक मामूली सा दृष्टान्त है। जो भोले भाले भाइयोंको समझानेके वास्ते दिया जाता है, नही तो सदा ऐसा नही होता है कि तुरन्त ही कर्मोंका फल मिल जावे। कर्मोंकी गति बड़ी विचित्र है। पहले कई कई पर्यायोंके बांधे कर्म भी उदयमें आते रहते हैं और पहले पिछले कर्म मिल कर भी फल देते है जिस प्रकार अनेक रोगोंके बाबत यह पता नही लगता है कि वह किस कारणसे उपजा है इस ही प्रकार हमारी ऊंची नीची अवस्थाके बाबत भी हमको यह मालूम नही होता है कि वह किस कर्मके उदयसे हुई है परन्तु जिस प्रकार प्रत्येक रोग-का कारण भी अवश्य होता है विन कारण कोई रोग हो ही

नहीं सकता है इसी प्रकार हमारी ऊंची नीची अवस्था भी हमारे पिछले कर्मोंके विदून नहीं हो सकती है। हम अपने सुख-के साथ सबका सुख चाहेंगे तो शुभ कर्मोंकी प्राप्ति करके ऊंचे ही ऊंचे बढ़ते चले जावेंगे और यदि स्वार्थी बन कर अपनी ही भलाई चाहेंगे और दूसरोंके सुख दुःखकी कुछ भी परवाह नहीं करेंगे तो अशुभ कर्मोंको बांध कर नीचेको ही गिरते चले जावेंगे।

यदि हम बलवान है और ऊंची २ पर्याय और ऊंचे २ अधिकार पाये हुए है तो अवश्य हमने किसी जन्ममे शुभ परि-णामोंके द्वारा शुभ कर्म उपार्जन किये है जिसके कारण ही हम-को यह सब कुछ ऊंची अवस्था प्राप्त हुई है और यदि हम यह बल और यह अधिकार पा कर दूसरों पर जुल्म करेंगे और सतावेंगें, अपने सुखके वास्ते दूसरोंके सुख दुःखका ख्याल न करेंगे तो अब नहीं, तो अगले जन्ममें तो जरूर ही हमारे ये सब अधिकार छिन जावेंगे और हम टुंड-मुंड करके छोड़ दिये जावेंगे यदि किसी मनुष्यकी आंखें निकाल ली जावें, कान फोड दिये जावें, नाक काट ली जावे और हाथ पैर भी अलग अलग कर दिये जावें बल्कि सिरको छेद २ कर दिमाग भी बेकार कर दिया जावे तो सोचो कि उस मनुष्यकी कैसी दुःखदायी अवस्था होगी। यही हाल वृक्षोंका है। उनमें भी वैसा ही जीव है जैसा मनुष्योंकी देहमे। परन्तु उनकी सब इन्द्रियां नष्ट करके उनको वैसा ही बेहाल बना दिया गया है जैसाकि उपर्युक्त मुंड मनुष्यका हो सकता है। इन सब वृक्षोंने, जो इस प्रकार-

की टुंड-मुंड अवस्थामें जिन्दगी बिता रहे हैं, अवश्य ही अपनी चलतीमें जीवको सताया है, बेपरवाह हो कर उनके सुख दुःख-को ठोकरोंमें रुलाया है जिसके फलस्वरूप ही वह टुंड मुंड हो कर एक जगह खड़े हैं और महानिर्बल हो कर कुछ भी अपनी रक्षा नहीं कर सकते है।

संसारमे एकसे एक प्रबल है इसके अलावा कभी कोई प्रबल हो जाता है और कभी कोई किसी पर काबू पा लेता है और कभी कोई, सदाके लिये अटल एक स्वरूप यह संसार नही रहता है परन्तु बड़े आश्चर्य की वात यह हो रही है कि प्रत्येक जीव अपनेसे निर्बलोंको सतानेमें तो कुछ भी पाप नही समझता है उनको तो निर्जीवके समान मान कर चाहे जिस प्रकारका वर्त्ताव उनके साथ करता है किन्तु जव अपनेसे अधिक प्रबलके द्वारा आप सताया जाता है तो रोता है, चिल्लाता है, उसको अन्यायी, अधर्मी, पापी वता कर उसका सत्यानाश होनेकी भावना करने लग जाता है और यह नही सोचता है कि जिनको मैं सताता हूं उनको भी तो ऐसा ही दुःख होता होगा जैसा दूसरोंके द्वारा सताये जानेसे मुझको होता है। इस विचार-भेदके कारण ही जीव पाप कमाता है और दुर्गति पाता है, जीव जैसा वर्त्ताव दूसरोंके द्वारा अपने साथ चाहता है ऐसा ही वर्त्ताव वह स्वयं भी दूसरोंके साथ करने लगे तो इतनीसी ही वातमें वह अनेक पापोंसे वच जावे और सुगति पावे परन्तु यह संसारी जीव दूसरोंसे तो अपने लिये पूर्णरूप न्यायका वर्त्ताव चाहता

है और स्वयं दूसरोंके साथ अन्याय करनेमें अपना पूरा अधिकार मानता है। इसी कारण संसारमें महा घोर उपद्रव फैला हुवा है, जीव ही जीवका वैरी हो रहा है और महा विध्वंसकारी संग्राम चल रहा है, यह पृथ्वी ही नरकस्थान बन रही है।

परन्तु भाई मनुष्यो ! जिन जीवोंने अपने पूर्व पाप कर्मोंके कारण विचारशून्यता और अज्ञानावस्था प्राप्त कर रखी है जिनको उपदेश देना भी मुश्किल है अर्थात् जो तिर्यंच पर्याय है वह यदि हिंसामें लिप्त रहें तो रहें, अपनेसे प्रबलोंके द्वारा महा त्रास भोगते हुवे भी और मारे जाते हुवे भी अपनेसे निर्बलोंको दुःख देनेमे व मार खानेमे कुछ भी न हिचकिचावें तो लाचारी है परन्तु तुम तो विचारवान हो, नफा नुकसान और बुराई भलाईको अच्छी तरह समझते हो, अनेक प्रकारके उपदेश सुनते हो, कारण और कारजके सम्बन्धको मानते हो, जीवोंके भावों और परिणामोंको जांचते हो, उनके द्वारा जो संस्कार पड़ते है कर्मबंधन होते है उनको भी जानते पहिचानते हो, इस कारण तुमको तो यह शोभा नहीं देता है कि अपने वास्ते तो दूसरोंका वर्ताव न्यायरूप चाहो और स्वयं दूसरोंके साथ अन्याय रूप प्रवर्तने लग जावो, दूसरोंके स्वत्वों और अधिकारोंका कुछ भी विचार मनमे न लावो। ऐसी विचारशून्यता और बेपरवाहीसे तो तुमही अपनी इस सर्वोत्तम मनुष्य पर्यायको जो बड़े पुण्यसे प्राप्त होती है, भ्रष्ट कर रहे हो, चिन्तामणिरत्नको कांच के टुकडे के समान पैरोंसे ठुकराते हो, जिसका फल महा

पाकर संसारमें भ्रमण करने और महा दुःख उठाते रहनेके सिवाय और क्या हो सकता है? इस कारण आंखें खोलो, मनुष्य बनो और अपनी जैसी जान दूसरोंमें भी समझ कर दया-धर्म धारण करो और अहिसा व्रत धारण करके जीवोंको सताना छोड दो।

जो अज्ञानी भाई जीवहिसाके द्वारा अपने देवताओं और परमपिता परमेश्वरको प्रसन्न करना चाहते है उनको मिष्ट शब्दोंमें समझाकर उनका अज्ञान दूर करो और इस उलटी चालको मिटाकर सुमार्गमे लगाओ। जो भाई अपनी जिह्वाके स्वादके कारण जीवोंका मांस भक्षण करते है उनको इन्द्रियोंका दमन करना सिखलाओ। जिनको अपने दिल बहलानेके लिये शिकार खेलनेका अभ्यास पड़रहा है उनको अन्य उत्तम खेलोंमे लगाओ। जो अपने बेटा बेटी स्त्री एवं अन्य अपने आश्रितोंको सताते है उनके प्रति अपने कर्तव्यका पालन नही करते है, बेटीका पालन बेटेके समान नही करते है, उसका मरना मनाते है, योग्य शिक्षा नही दिलाते है, धनके लालचमें उसको अयोग्य वरके साथ व्याहकर उसकी जिन्दगी बर्बाद करते है, इस ही प्रकार जो बुड्ढे बाबा अपनी दो दिनकी इन्द्रियलोलुपताके कारण अपनी बेटी पोतीके समान एक छोटीसी कन्या व्याह कर उसकी जिन्दगी तबाह करते है और ऐसे बुड्ढे धनवानोंके इष्टमित्र सगे संबन्धी और दलाल जो उनके वास्ते कोई कन्या ढूंढ़ते फिरते है और कन्यावालोंको हजारोंका लालच दे कर

जाल में फँसानेकी कोशिश किया करते है एवं जो बिरादरीके लोग किसी जवान मौत होनेपर भी उसकी तड़पती हुई बुढ़िया माता वा सिसकती हुई विधवाके घर जाकर नुकता जीम आते है और गरीबसे गरीबको भी घरका अस्वाब बेचकर वा करज लेकर नुकता करनेकी सलाह देते है वा जो बिरादरीके लोग अपने भाइयोंको उकसा २ कर जन्म मरण वा विवाह आदि कारजोंमें उनका वितसे ज्यादा खर्च करा देते है जिससे वे तबाह और बर्बाद हो जाते है और खाने कमानेके योग्य भी नही रहते है वा जो विरादरीके धनवान जिनको धनकी कुछ परवाह नही है वा बिरादरीके वे लोग जिनको कोई कारज करना नही है, विरादरीकी रीतियोंका सुधार नही होने देते है, अपने बिरादरीके भाइयोंको खोटे खोटे रीति रिवाजोंसे बरबाद होनेकी कुछ परवाह नही करते है, उनको हिंसाका स्वरूप और कृत कारित अनुमोदना आदिके भेद समझाकर इन महान पापोंसे बचाना चाहिये। इसके अलावा जातिकी वे विधवा बहिनें जो बिल्कुल निर्धन वा निराश्रित हो कर अथवा अपने अन्य कुटुम्बियोंके अत्याचारोंके कारण दिन रात आर्तध्यानमें मग्न हो भावहिंसा किया करती है उनकी सच्चे दिलसे महत्त्वपूर्ण सहायता कर निराकुल अवस्था कर देनी चाहिये जिसमें कि वे मर्यादा पालती हुई सदा धर्मध्यानमे लीन हो आत्म कल्याण कर सकें ऐसा उपाय कर देना चाहिये। इसी प्रकार जातिके अनेक बालक अनाथ होकर निराश्रित हो जाते है उनकी भी जो कुछ

फिकर नहीं करते है, हमारा बालक तो स्वर्णके महलोंमें रेशम-के गद्दोंपर सोता है तब दूसरोंके बालक चाहे जंगलमें वा कंकर पत्थरमें ही पड़े हों और भूखे तडपते हों तो इससे हमें क्या ? जो ऐसी कठोरता मनमे रखते है। इसी प्रकारके अन्य अनेक भाइयोंको भी समझना चाहिये कि अपना पेट तो छोटेसे छोटा कीडा भी भर लेता है तब सर्वोत्तम मनुष्य पर्याय पानेका तो यही फल होना चाहिये कि दूसरोंके भी काम आवें और दया धर्म पालकर इससे भी उत्तम पद पावें।

इसके इलावा यह भी अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि एकेन्द्रिय स्थावर जीवोंकी हिंसा करनेमें जितना पाप है उससे भी कई गुणा पाप दोइन्द्रियकी हिंसामे है और उससे भी कई गुणा पाप तेइन्द्रिय जीवोंकी हिंसामे है और उससे भी कई गुणा पाप चोइन्द्रिय जीवोंकी हिंसामें है और इनसे भी कई गुणा पा पंचेन्द्रिय जीवोंकी हिंसामें है। ५चेन्द्रियमें भी सैनी पंचेन्द्रिय की हिंसामें और भी कई गुणा पाप है और पंचेन्द्रिय सेनीमें भी मनुष्य हिंसामें सबसे ही ज्यादा पाप है और मनुष्योंमें भी अपने आश्रितों अर्थात् बेचारी कन्याओं और अन्य निर्धलोंको सतानेमें और उनकी जिन्दगी वर्बाद करनेमें और जाति विरा-दरीकी कुरीतियोंको बन्द न होने देकर अपने भाइयोंको तबाह और वर्बाद होने देनेमें तो वेहद ही पाप है। इस प्रकार सभी भाइयोंको पाप पुन्यका विचार करते रहना चाहिये और दया-धर्मी बनकर और अहिंसा धर्मको पालकर अपना जीवन सुधा-

रना चाहिये, और अन्यत्र भी सारे संसारमें दया धर्मका प्रचार करके सभीके कल्याणकी कोशिश करते रहना चाहिये, नीचों-को ऊंचा बनाना, पापीका पाप छुड़ाकर उसे पुण्य कार्योंमें लगाना, पतितोंको उभारना, गिरते हुएको संभालना, कुकर्मियोंको धर्म मार्ग बतलाना, भूले भटकोंको रस्ते पर लगाना, अभिमान, घमंड और आठों प्रकारके मदको छोडकर किसीको भी घृणाकी दृष्टिसे न देखना किन्तु महा भ्रष्टोंको भी दयाकी दृष्टिसे देखकर शिष्ट और पवित्र बनानेकी कोशिश करना ही दयामय अहिंसा धर्मका पालन करना है। बड़े २ मुनियों और आचार्योंने भी ऐसा ही किया है और ऐसा करना ही धर्मका प्रथम अंग बताया है, जिससे सुख, शांति और महा आनंदकी प्राप्ति होती है।

"कर भला होगा भला।"

॥ ॐ ॥

❀ वन्दे वीरम् ❀

॥ श्री रत्न बहार ॥

प्रणीत

सोहन लाल कवि लोहा मन्डी

प्रसिद्धकर्ता

श्री जैन श्वेताम्बर साधु मार्गी धर्मोपदेश प्रकाशनी सभा लोहा मन्डी

आगरा

प्रथमा वृत्ता १००० श्री वीर सं. २४४१

विक्रम सं १९७२ श्री रत्नचंद सं ५१

आर. जी बन्सल एन्ड कम्पनी ३३९, कसेरट बाजार, आगरा के यंत्रालय से छपा कर प्रकाशित की

॥ श्रीमद्वीरायनमः ॥

※ श्री महावीर स्वामी का संक्षप जीवन चरित्र ※

॥ प्रिय मित्रो ? आज आपको उक्त महर्षिका पूर्ण आभार मानना उचित है कि जो क्षत्रिय कुंड नगर के सिद्धार्थ राजेन्द्र के विनयादि गुण गण तथा मति श्रुति और अवधि एवं ज्ञान त्रय करके संयुक्त परम लाडले पुत्र थे जिनको चतुः षष्ठि इन्द्रोंने "महावीर" ऐसे गुण निष्पन्न नाम की उपाधि से अलंकृत किया था यद्यपि उनकी त्रिशलादेवी माता के बडे पुत्र आनंद की बृद्धि करने वाले "नंदी वर्द्धन" नाम के थे परन्तु इनकी नैपुण्यता तथा बाल्यावस्था के कारण से देवेन्द्रों की परम पूज्या त्रिशला देवी महाराणी का भी इन्हीं पर पूर्ण प्रेम रहता था, और इनके प्रेम के ही कारण से आजन्म विरक्त हमारे राज कुमार "महावीर महाराज को अचल पुराधिप श्री समर वीर महाराज की राज कुमारी यशोदा के साथ पाणि ग्रहण करना पड़ा जैसे कि हमारे श्रीमान भरत जी को माता केकयी जी के प्रेम से अवधि का राज्य स्वीकार करना पड़ा, जब हमारे राज कुमार महावीर महाराज अट्ठाइश वर्ष की सोहनी वय में थे तवही उनके पिता सिद्धार्थ महाराज ने तथा उनकी माता त्रिशला देवी ने स्वर्ग लोक के राज्य पालन करने का सौभाग्य प्राप्तकिया ? सिद्धार्थ महाराज के ज्येष्ठ पुत्र

हुवे शुक्ल ध्यान में तल्लीन थे तव ज्ञाना वर्णी यादि चार घातक कर्मों के क्षय होने से उनको केवल ज्ञान तथा केवल दर्शन उत्पन्न हुवा तिससे लोका लोक का स्वरूप हस्तामलकवत् देखने लगे तव भगवान महावीर देवने संसारी जीवों को जन्म मरणादि दुःखों से दुखित देख। तिन दुखों से छूटने के लिये 'अहिंसा परम धर्म" का उपदेश किया उस महर्षि के उपदेश काही यह फल है कि अव तक इस भारत वर्ष में अहिंसा परम धर्म की पालना तन मन धन से की जाती है अरु आगामी काल में भी भव भीरू भव्य जन करेंगे, उस महावीर भगवान ने वहत्तर वर्ष की सर्वायु पालन कर कार्तिक कृष्णा अमावास्या को धर्मोपदेश देते हुए सर्व सारीरिक तथा मानसिक दुःखों का अंत करके मोक्ष प्रात्पकी,

उस महार्षि महावीर भगवान की जन्म तिथि चैत्र शुक्ला त्रयो दशी थी अतएव उस दयालु देव के स्मरणार्थ चैत्र शुक्ला १३ को अहिंसा परम धर्म के पालन करने वालों को विशेषतर दया देवी की सेवा करनी उचित है और उस महर्षि महावीर भगवान का पूर्ण आभार मानना चाहिये इसी लिये हम इस महोत्सव के मनाने को तन, मन, और धन से तत्पर हुए हैं और इसी प्रकार जैन मात्र को मनाना चाहिये ॥

शान्तिः ? ? ?

हजारीलाल सभापति

॥ वन्देवीरम् ॥

॥ श्री रत्न वहार ॥
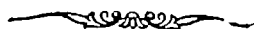
॥ शिखरिणी छंद नं- १ ॥

प्यारे त्रसलाके भव दुख निवारे पदनमों। दुलारे राजा के कर्म रिपु सहांरे पदनमों ॥ हमारे सर्दारे जिन मत प्रचारे पद नमों। नसा भू वाधा रे शिव गति पधारे पदनमों। १। उचारी है प्यारी विवक वर वाणी सुधासम। समारी अनगारी हर्ष सिर धारी तजा भ्रम। प्रचारी विस्तारी करन विचडारी सवन में। विचारी सूकारी अधिक सुखकारी धरन में।

॥ पद नम्बर २ ॥

नवाऊं जी में सतगुर चरनों शीश। दे उपदेश वताया मारग जिन अतसै चोंतीश। द्वादस मेल परखदा सोहे मोहे रजनी ईश। तीन छत्र जिन शीस दीपता भामंडल

द्युतिरीश। चौदह सहस जिनों सग साधू आरजा सहस छ-
त्तीश तार दिये भव जीव अनंते जो डूबत वारीश। मोहन
मन वच कर्म से जिन पद नवा होय जगदीश ॥ नवाऊं ॥

॥ भेट भगवती की नं- ३ ॥

मम कंठ सभा मे खोलियो वानी जिन देव भमानी।
सत्य सिंह सज ववर सवारी। अर्ध मागधी वींणा प्यारी।
वस्त्र अलंकृत साझ सिधारी गर्वगर्जना मोह लियोश्रीसारद
ज्ञान वढानी। वानी। चमाखर्ग अपने कर धारा द्रुतिये दू-
ना दया दुधारा। तृतियभुजा शास्त्र है प्यारा खायक
खप्पर खोलियो। भगवती भाव शुभ लानी। वानी।
वर विवेक वारुणीं चढा के कर्म कटक में गर्जो आके।
ढाल ध्यान की हाथ सजा के शत्रुन क बल तोलियो।
दुरमत को दूर हटानी। वानी। क्रोध अरी का शीस
काट के श्रोणित रागादिक का चाट के। रणस्थल भा-
वों से पाट कर विजै जैन की बोलियो। मोहन सुबु-
द्धि वरदानी। वानी।

॥ स्तवन नम्बर ४ ॥

सींचो भाई सब मिल बोह तरु जो श्री रतन-
चंद गुरू बोया। महा भयानक लख इस बनको हरषा
धर्म द्रष्ट से जोया। मिथ्यामत कीकर करील को
ग्यान गुर वना लेकर खोया। दिये बोय दया के पुष्पतरु

घर२ नर वाक्यों से मोया । चतुर विध संघ वगीचे को लख सर्क चैत दूजा है गोया । एक सरोवर शील का जिसमें मोह मैल उस जल से धोया । अद्भुत क्रांत वि-लोक वाग की भुज सिद्धान्त कु ध्यान डुबोया । मोहन यह संसार अथिर लख श्री गुरू आप रिषीश्वर सोया ।

॥ ग़ज़ल नं- ५ ॥

पाया है मनुष तन अरे क्यों लोभ में फसा । उठ चेत जरा मित्रयों गफलत में है कसा । सुत मांत तात भ्रात यह स्वारथ के हैं सगे । यह मोह की जंजीर है क्यों इसमें है गसा । तन धन असार सार न कुछ इसमें जा-नियें । मध मोह माया पूर मनों व्याल ने डसा । संम वन्ध इस जहांन के पन्थी के तुल्य हैं । जैसे पखेरू तरपे हर एक आन के वसा । उर सोच चंद्रभान तजो मोह म-मतको । सत गुरू के वचन मांन के हिरदे में ले वसा ।

॥ लावनी नम्बर ६ ॥

जग समुद्र से भव जीवों को पार करैया तुम्हीं तोहो । धीर धरैया धूर करमों के उड़ैया तुम्ही तो हो ॥ ले कर में करपान ज्ञान के वान चलैया तुम्ही तो हो । मोह के गढ को सत्त समकित से उड़ैया तुम्हीं तो हो ॥ पट काया के जीवों का सुद भेद वतैया तुम्हीं तो हो । पार करैया जन का सव कष्ट मिटैया तुम्हीं तो हो ॥ ज्ञान खड्ग को

से जंग करैया तुम्हीं तो हो। विजै करैया कर्मों को मार हटैया तुम्हीं तो हो ॥ चार कर्म घन घाती के अरिहंत खिपैया तुम्हीं तो हो। करी निरजरा कर्मों की फिर केवल पहिया तुम्हीं तो हो ॥ केवल ज्ञान पाय कर के हर नगर फिरैया तुम्हीं तो हो। त्रसला छैया मोक्ष की राह बतैया तुम्हीं तो हो ॥ कर के निरजरा कर्मों की शिवपुर के जैया तुम्हीं तो हो। कुमति छुड़ैया मोहन संग सुमति करैया तुम्हीं तो हो ॥

॥ लावनी नम्बर ७ ॥

त्रिसला नंदन भव दुख भंजन वंदन जग्त सकल प्रभु टारे ॥ त्याग बिमान पुष्पोतर प्रभु जी सिद्धारथ ग्रह आय पधारे ॥ कुंडलपुर नृप सिद्धारथ के प्रभु आय बने हैं दुलारे ॥ इन्द्रन आय महोत्सव कीनो करत खड़े सुर जै जै कारे ॥ तीनों लोक अनंद भये अति राजा दान दिये हैं भारे ॥ पद आकार केहरी सोहै कनक वरण अद्भुत चमकारे ॥ सात हाथ औगैना प्रभु की यह विरतांत सिद्धांन्त उचारे ॥ साल बहत्तर की आयु थी तीस वरस ग्रह माहि गुजारे ॥ तीस साल श्रीशासन नायक वन में आ चारों व्रत धारे ॥ द्वादस वरसों के मांही सब घन घाती कर्म संघारे ॥ केवल पाय फिर विरचन लागे

डूबत भवसागर जन तारे ॥ अधम उधारन भव रुज नासन मोक्ष धाम के देवन हारे ॥ मोहन अनुचर को प्रभु तारो तुम हो श्रीजिन नाथ हमारे ॥

॥ स्तवन नम्बर ८ ॥

विजिया सत संजम भारकी मय पीना और पिलाना। उच्च भाव की भांग वनाई समता के रस में भिगवाई। क्रिया कूंडी साफ कराई धोई दया के नीर से। मल पाप कुकर्म हटाना। सत विद्या वादाम मंगाके तप मिर्चें मिंगी डलवा के। एला भाव शुद्ध कर वाके क्षमा खांड के शीर से ले घोटा ज्ञान घुटाना। जप जावित्री लाय मिलाओ लोभ लोग को पीस गिराओ। आगम अगम छाक मे छाओ शील सलिल सत क्षीर से। सुगती के साथ छनाना। दानरंग को हर्ष लगाओ फिर शिव मन्दिर चरन वढ़ाओ। निज सुभाव आँतम का पाओ छूट जगत की पीर से। मोहन भव कष्ट मिटाना।

॥ स्तवन नम्बर ९ ॥

चर्स चक्र चारित्र में दम हर दम मित्र लगाना। चित्त चिलम हुक्का हृदय का भव भूवल में चर्सको सेका। अब क्या मन में रहा परेखा साफी समकित सार की। संसार पार कर जाना। तप तमाखू लाय जमाओ क्षमा खमीरा भी मिलवाओ। हिल मिल सवका भोग लगाओ

से जंग करैया तुम्हीं तो हो। विजै करैया कर्मों को मार हटैया तुम्हीं तो हो ॥ चार कर्म घन घाती के अरिहंत खिपैया तुम्हीं तो हो। करी निरजरा कर्मों की फिर केवल पहिया तुम्हीं तो हो ॥ केबल ज्ञान पाय कर के हर नगर फिरैया तुम्हीं तो हो। त्रसला छैया मोक्ष की राह बतैया तुम्हीं तो हो ॥ कर के निरजरा कर्मों की शिवपुर के जैया तुम्हीं तो हो। कुमति छुड़ैया मोहन संग सुमति करैया तुम्हीं तो हो ॥

॥ लावनी नम्बर ७ ॥

त्रिसला नंदन भव दुख भंजन बंदन जग्त सकल प्रभु टारे ॥ त्याग बिमान पुष्पोतर प्रभु जी सिद्धारथ ग्रह आय पधारे ॥ कुंडलपुर नृप सिद्धारथ के प्रभु आय बने हैं दुलारे ॥ इन्द्रन आय महोत्सव कीनो करत खड़े सुर जै जै कारे ॥ तीनों लोक अनंद भये अति राजा दान दिये हैं भारे ॥ पद आकार केहरी सोहै कनक वरण अद्भुत चमकारे ॥ सात हाथ औगैना प्रभु की यह विरतांत सिद्धान्त उचारे ॥ साल वहत्तर की आयु थी तीस वरस ग्रह माहि गुजारे ॥ तीस साल श्रीशासन नायक वन में आ चारों व्रत धारे ॥ द्वादस वरसों के मांही सब घन घाती कर्म संघारे ॥ केवल पाय फिर विरचन लागे

डूबत भवसागर जन तारे ॥ अधम उधारन भव-रुज नासन मोक्ष धाम के देवन हारे ॥ मोहन अनुचर को प्रभु तारो तुम हो श्रीजिन नाथ हमारे ॥

॥ स्तवन नम्बर ८ ॥

विजिया सत संजम भारकी मय पीना और पिलाना उच्च भाव की भांग बनाई समता के रस में भिगवाई। क्रिया कूंडी साफ कराई धोई दया के नीर से। मल पाप कुकर्म हटाना। सत विद्या बादाम मंगाके तप मिर्चे मिंगी डलवा के। एला भाव शुद्ध कर वाके क्षमा खांड के शीर से ले घोटा ज्ञान घुटाना। जप जावित्री लाय मिलाओ लोभ लोग को पीस गिराओ। आगम अगम छाक में छाओ शील सलिल सत चीर से। सुगती के साथ छनाना। दानरंग को हर्ष लगाओ फिर शिव मन्द्रि चरन बढ़ाओ। निज सुभाव आँतम का पाओ छूट जगत की पीर से। मोहन भव कष्ट मिटाना।

॥ स्तवन नम्बर ९ ॥

चर्स चक्क चारित्र में दम हर दम मित्र लगाना। चित्त चिलम हुक्का हृदय का भव भूवल में चर्सको सेका। अब क्या मन में रहा परेखा साफी समकित सार की। संसार पार कर जाना। तप तमाखू लाय जमाओ क्षमा खमीरा भी मिलवाओ। हिल मिल सबका भोग लगाओ

सोचो भव दध पार की। छल बादी रोग नसाना।लेस्या शुक्ल ध्यान में लाओ सत संगत से नेह लगाओ।लोचन राता रंग जमाओ दया से आत्म सार की। पुन जांच की आग लगाना। दान शील का रंग जमाओ राग द्वेश को मार हटाओ।तपस्या भात्र उदर में लाओ। मोहन शुकृत सारकी धारा कर पान पचाना।

॥ भजन नम्बर १० ॥

यहां मन मृगों का गोल है करले आखेट शिकारी। तन के बन में समा रहा है लख मृगियों को लुभा रहाहै। रंग मांन का दिखा रहा हैं यह समय बड़ा अनमोल है। दिल खोल ले सत्य कटारी। मध में अंधा पड़ा हुआ है नशा मोह का चढ़ा हुआ है। लोभ लपेटा खड़ा हुआ है ढ़का ढोंग सा ढोल है। दे पोल को खोल अनारी।चर गये बाग विवेकी सारा ज्ञान गुलाब काट मह डारा। शील सरोवर सलिल बिगारा नव बाड़ लगी तसगोल है वहु मोल सुडौल सूरारी।ध्यान धनुष को हाथ उठाओ विद्या बांण सम्हार चलाओ कर्म केहरी पै अजमाओ। नर तुझ में जोर अतोला है मोहन खुल खेल खिलारी॥

॥ स्तवन नम्बर ११ ॥

सुध समकित में मन लावना जो हो जाय जन्म अ-खीरी। आलस आमिस अकस अरीती। इकटक त्याग

इष्ट से प्रीती उद्दम उर्ध उपासन रीती । करो कर्म कर्म का-
मना कंचन कामिने करीरी । खिमा खर्ग खायक खय
धारो गर्भ गरूरी गांठ निकारो । घट घमंड घर घ्रनित
विसारो चारित्र चित से चामना छल छोड़ छटा छहरीरी।
जन्म जराजग जाल जलाओ झूठ झटक झगड़े झटका
ओ ठाठ ठान अमरापुर जाओ । डरो न चित्त डिगामना
डर जायगी ढोंग करीरी । तन से तपस्या करो तान के
थोती कुगुर थपेड़ जान के दया दमन दिल दीन दान
के । धर्म ध्यान धर धामना निस वासर गर्म न शीरी ।
परम पचॅ परमेष्ठि जपना फन्दन कर्म फाड नहीं फसना।
ब्रह्म चर्ज वसना में वसना भव में गोता खामना मन मा-
नी मित्र मचीरी । यह पद दुनियां अथिर जानते राना
रंक रहीस मानते। लालच सलिल लकीर जानते सत
शुभ संजम पालना त्रिय करण त्रिविध चित चीरी।
क्रोध मान लव माया तज के दान शील तप भाव सुमर
के । पंच महाव्रत धारण करके मोहन मन समझावना
ऐसी सत धर्म फकीरी ॥

॥ गजल नम्बर १२ ॥

विद्या सा इस जहांन में प्यारा कोई नहीं । विद्या
से अधिक मित्र दुलारा कोई नहीं। दुनियां में द्रव्य रूप
न विद्या समान है । गुरुओं का गुरू भोग सहारा कोई

नहीं। देवों में परम देव पूज्य भूपों का बने। विद्याविदेश वन्धु विचारा कोई नहीं। पुर्षों मे पुर्ष श्रेष्ट वेरिष्टर वकील हो। विद्या विना जगत में तुम्हारा कोई नहीं। विद्या के वल विदेश में जाके हों अधपती। मोहन विना विद्याके किनारा कोई नहीं।

॥ भजन नम्बर १३ ॥

दम के दम मे रहा फूल के दम देता दम पर दमहै। आन लुटेरा लूट मचावे जब तेरा धन कौन बचावे। कर मत २ पीछे पछतावे। रहा कमठ सम ऊल के कुछ तुझ को फिक्र न गम है। मात पिता दारा सुत प्यारा भाई भतीजा भानज न्यारा। ताऊ चचा कुटम्ब परिवारा नाता सम सेमर फूल है। मत भूल समय अब कम हैं। चलने की तैयारी करले खर्चा मारग को कुछ धरले। धर्म द्रव्य हृदय में भरले येही सुखन का मूल है। तजदे सब अबुद्ध अधम है। लेने को ललकारा आवै जब नहीं कोई रोकन पावै। लेके संग शीघ्र ही जावै कर कर्मों की धूल है मोहन का भाव परम है।

॥ गजल नम्बर १४ ॥

परसों सुहाग की शब है जाना बर के घर को। कर ले त्यारी प्यारी तन मन लगा उधर को। मारके रहेगी कब तक एक रोज जाना होगा। अनुराग की हो सूरत पर

पूर्ते मन इधर को। पतिव्रत धरम से पति को। ले पूज संग सुमति को। पावे न फिर दुरगति को। सत पै चढाओ सर को। गंगा ग्यान की में असनान कर विमल हो। आमेंगे तीर यमुना तजदे अली पीहर को। सर्धा की सरस्वती से ले पूछ मिल पति से। मोहन से त्याग गोहन जाना है शिव नगर को।

॥ ग़ज़ल नम्बर १५ ॥

सुनादो आ मधुर वोली श्री जिनराज थोड़ी सी ॥ मुझे समकित के अमृत की पिलादो धार थोड़ी सी ॥ जिसे पीकर मेरे उरमें क्षमा संतोष भर जाये। रहूं फिर राह मुक्ती की में हो हुशियार थोड़ी सी ॥ लिया है घेर गढ मेरा आंन कर मोह दुशमन ने। कटक चहुं ओर को फैला लिये तलवार थोड़ी सी ॥ मुकैयद अष्ट कर्मों ने कियाहै घेर कर मुझको। निकालूं म्यानसे अवज्ञान की तलवार थोड़ी सी ॥ ज्ञान का खड्ग लेकर में लड़ूं अव अष्ट कर्मों से। फतहसंग्रामको करलूं मारकर मारथोड़ीसी। पड़ा भव सिंध में बेडा मोहन अनुचर का हे स्वामी। ज्ञान की हात ले वल्ली लगा एक वार थोडी सी ॥ सुना ॥

॥ ग़ज़ल नम्बर १६ ॥

द्रग खोल देख प्यारे ये वक्त जा रहा है। संसार जादू आना जिस में लुभा रहा है। दश शीश ईश भारे

नहीं वहभी यहां रहे हैं। डाला है मोह पलना आयूष झुला रहा है। लछमन करण दुशासन नर भीम से बली थे॥ जिस वक्त वक्त आया सब बल धरा रहा है। सज साज तन पे भूषण भूला दशा उदर की। कैसी गिलानी वहां थी उसको छिपा रहा है। उदय मार्तण्ड होते नौका लखा था जिसको। अस्त भानु होते वोही अर्थी पै जा रहा है। मन चेत अपने चेतन तजदे कुमति की संगत। सुमता को धार हृदे मोहन सुना रहा है।

॥ मांड नम्बर १७ ॥

थारी आयुष वीती जायरे जियरवा श्री जिन धर्मन धार। चौरासी में भ्रमता २ पाई मानुष देह। लघु कुल माहिं जन्म लेई ने धर्म में राता न नेह। नर्क निगोदमें जाय के पाया कष्ट अपार। वेदन अनंती सह के चेतनवा हुआ अत्यंत खुवार। विन छानो पानी पियोरे रोको धर्मन साज। कार्य चलावा थी दोष लगावा पाडो नर्क में आज देव द्रव्य खायो घनो छै हिंसामां सुख मान। ऐसा करंता कर्म बंधा छै पड्यो अधोगति आन।। पूर्व निग्रनथन कही छै करनी लागे लार। सो मैं मिथ्या जानवा यहां माहने कष्ट अपार। सतगरु का कहना करुं छूं जिन वानी सर धान। राग द्वेस को मोहन तज दे जब होगा निरवान।

॥ थियेटरी गाना नम्बर १८ ॥

जग भरमावे गमावे आयु क्रोध मान माया लोभ मांहि।

दौड । अचला व सलिला पे वरनी समीरन भटका जी लाखन वार । सूक्षम वादर त्रियंच थावर वेदन पाई अपार । परजा मिली पै अपरजा रहा कहीं सन्नी असन्नी विचार । नरकन में जाके पैपाप कमा के किया व्रथा जीवन को ख्वार । मानुष हुआ तो अनारज में उपन्या धर्म न पाम्या लिगार । जुआ व चोरी पर स्त्री गमन किया वेश्या का संग अपार । जंगल में जाके पशुओं को सता के अघा के जो खेली शिकार । पीपी सरावें उड़ाई कवावें नशे में रहा सरसार । जो पुन्न वढ़ा तो सुरलोक गया किया ऐश व अशरत अपार । कर्मों का मारा भटकता विचारा ज्यों मर कट मदारी की लार । कर्म खपा के व केवल पाके अघाके ले मुक्ति का द्वार । वसु कर्म जग भ्रम मोहन हटाके निर्ग्रंथों को कर नमस्कार ॥

॥ पद नम्बर १९ ॥

शीस जिन वैन धरोरे प्रानी । षटकाया की रक्षा ज्ञान प्रचार करोरे प्रानी । सप्त विशन को तज के । सुगती नार वारोरे प्रानी । नव पथ ब्रह्म चर्य पालो । कुमति कुभाव छ- रोरे प्रानी । संजम भार उठाओ । अघ से अधिक डरोरे प्रानी । सहो परीसा बाइस । उर में ज्ञान भरोरे प्रानी । अष्ट कर्म क्षय करके । मोहन मुक्ति वरोरे प्रानी ॥

॥ थियेटरी नम्बर २० ॥

खोटा आचार यह विभचार दिल में क्यों समाया ।

पहले थे यहां ब्रह्मचारी । नीके आचारी भारी । अब तो अज्ञान पै अभिमान का यहां फैला साया । भारत सनतान निरमल ज्ञान तैने कहां भरमाया । धार्मिकभान पे अनजान कैसे बादल छाया । चमकाओ पुन उजियारी नसाओ मध तम भारी । मिल सब सुभ ढब तन से धन से मोहन मन से संस हटाया ।

॥ दादरा नम्बर २१ ॥

मानो२ बनो ब्रह्म चारी जी ॥ दोहा ॥ घने सून्य जो राखिये एक अंक नहीं होय । एसे हि प्राणी शील विन वृथा जन्म रहा खोय । टेक । सोचो२ तजो विभचारी जी । मानो ॥ शेर ॥ अन मोल रत्न शील को । फेंको न कांच जान । करिये गुणों पै गौर । लगाओ इधर को कान । ऐसी शीलकी महिमा बिचारीजी । मानो । शेर । ब्रह्मचर्य रिष्टि नेमी ने पाला । हरष के साथ । दिक्षा के लार होके । तजे तात मात भ्रात । त्यागी राजुल सुशीलासी नारीजी । मानो । शेर । ब्रह्मचर्य गजसुखमाल का सुन दिल दहल गये । तपस्या में अडिग हो रहे । अगनी में जल गये ॥ कैसी समता हिये में समारी जी ॥ मानों ॥ शेर ॥ ब्रह्मचर्य विजै कुमर का जाने शकल जहान । स्त्री को दिया तार के । अपना किया कल्यान । कैसी मनसे यहममता विसारीजी । मा. शे. तज कर के आठ नार । धार दिक्षा लिया सार । तप करके केवल

लिया मुक्ति को गये। मोहन तन मन से चरनन वल-
हारी जी। मानो ॥

॥ भजन नम्बर २२ ॥

गहोरे प्राणी गऊ रक्षा को भार। जिन गौउन सें भारत भूषित उनका होत संघार। जिनके पय से पुर्ष म-वल हों पीर हों हुशयार। जिनके क्षीर से घ्रत प्रगट हों व्यज्जन विविध प्रकार। जिन सूरभी के पुत्र बृषभ से खेती होत त्यार। जिनकी रक्षा गोविंद कीनी रूप मनुज को धार। मोहन मात कहै सब हिन्दू फिर क्यों होत प्रहार।

॥ भजन नम्बर २३ ॥

आनन्द में आंनन्द है मन माना आज मनालो। परि पूरण प्रियं प्रेम पसारो, मूल महोत्सव विहस निहारो, । श्री। चाखो जीवन के फल चारो, अब चित्त चारु पसंद है, खुल खेलो खेल खिलालो। मन। शील सनेह नयो मन लाओ, हिल मिल प्यारे मोद वढाओं। श्री। प्रमामृत उर लाय पिलाओ। मनमें मान आन्दं है, मिल सुदंर सभा बनालो ॥ मन ॥ वीर जयंती काहै मेला, अब क्यों साहब करो झमेला, ॥ श्री ॥ जीव भ्रमत है सदां अकेला, मन मूरख मत मन्द है, लो जरा इसे समझालो ॥ मन ॥ हिल मिल कर सब कार्य कराओ, मोहन अब क्यों देर लगा

ओ ॥ श्री ॥ जैनी मात्र सकल मिल जाओ। समय सू आँ-नद कंद है कर भोजन इसे पचालो ॥ मन माना आज ॥

ॐ शान्ति ? ? ? श्री वीर प्रभु की जै ? ? ?

पुस्तक मिलने का पता

श्री जैन श्वेताम्बर साधु मार्गी धर्मोपदेश प्रकाशनी सभा लोहा मन्डी

आगरा

※ ॐ ※

जैनसमाज की वर्तमान दशा पर विचार
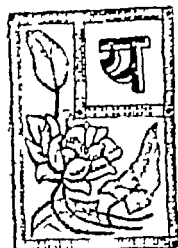
यह बात संसार-प्रसिद्ध है और सब कोई जानते हैं कि संसार परिवर्तनशील है। क्षण २ में जीवों की पर्याय, जीवों के भाव और काल की मर्यादा पलटती रहती है, बच्चे से जवान और जवान से बूढ़ा होना इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। इसी परिवर्तनरूपी हिन्डोले में सारा संसार घूमता है। कभी कोई ऊपर चढ़ता है और कभी नीचे उतरता है और कुछ समय पीछे नीचे उतरने वाला ऊपर चढ़ जाता है और ऊपर चढ़ने वाला नीचे आ गिरता है। इसी उलट पलट में राष्ट्र, साम्राज्य, देश, समाज और धर्म तक भी डोल जाते हैं।

जैन पुराण ग्रन्थों के पढ़ने और प्राचीन इतिहास के जानने वाले पुरुषों के सम्मुख इस परिवर्तन का चित्र भलीभांति खिंचा रहता है। वे जानते हैं कि एक समय रावण का साम्राज्य था, सोने की लंका का वह स्वामी था और हज़ारों भाई बेटों, स्त्री पुरुषों का परिवार रखता था, लेकिन समय ने पलटा खाया और उस रावण का श्री रामचन्द्रजी के हाथों से सब कुछ समाप्त होगया। इसी प्रकार कंस की कृष्ण द्वारा और कौरव की पाण्डव द्वारा इतिश्री होगई। लेकिन साथ ही साथ श्री रामचन्द्र, श्री कृष्ण और पाण्डव भी समय की प्रबल धारा में

सह गये। इतिहास में राणा प्रताप, शिवाजी आदि की उन्नति, अवनति का समय भी परिवर्तन के ही हाथों में होकर निकला है। समय के पलटने से गली गली की ठोकरें खाता हुआ दरिद्री मनुष्य राज्यसम्पदा का स्वामी, और बड़े भारी साम्राज्य का स्वामी घर घर का भिखारी होते देखा जाता है। समय के परिवर्तन से कितने ही राष्ट्र उन्नति शिखर पर जा विराजते हैं और कितने ही उन्नतिशील राष्ट्रों का आज पता तक भी नही है।

समय के इस परिवर्तन ने ही प्राणीमात्र के जीवनप्राण और आत्मोन्नति साधक जैनधर्म को करोड़ों मनुष्यों के पवित्र हृदयों से निकाल कर कुछ लाख मनुष्यों तक ही सीमित कर दिया है। आज वह जैनधर्म, जो किसी समय राष्ट्रीय धर्म बना हुआ था और संसार के आकाशमण्डल पर मध्याह्न के सूरज की भांति चमक रहा था, कुछ इने गिने मनुष्यों मे ही दिखाई देता है।

आज अपने पूज्य धर्म की, धर्मगुरुओं की, धर्म के मानने वालों की, धार्मिक समाज की जो दीन हीन दशा होरही है वह किसी व्यक्ति से छिपी हुई नहीं है। यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो हाथी के दांतों वाला मामला होरहा है कि "खाने के और और दिखाने के और" वैसे तो हम और हमारे धर्मभाई केवल एक ज़रा से कागज़ के पुर्ज़े (चिट्ठी) को पाकर रथोत्सवों, पूजाप्रतिष्ठाओं और दीक्षा महोत्सवों पर लाखों की संख्या में इकट्ठे होजाते हैं जैसा कि इस समय साधुसम्मेलन और कान्फ्रेंस के अधिवेशन पर आने वाले भाइयो के अपूर्व समारोह से विदित है। इससे हमारा प्रेमभाव बहुत ही कुछ टपका पड़ता है, परन्तु जब साम्प्रदायिक द्वेष, पारस्परिक क्लेश, सामाजिक झगड़े, बिरादरी के धड़े, भाई भाई के मुक़द्दमे और घर की कलह

के दृश्य किसी भयानक रूप में आंखों के सामने आते हैं तब हृदय तड़प उठता है और आंखों से खून के आंसू बह निकलते हैं। सम्भव है कि कोई भाई ऐसे हों कि जो दिगम्बरों, श्वेताम्बरों के तीर्थक्षेत्र वाले झगड़ों से जानकारी न रखते हों या साधुमार्गी जैनों के साम्प्रदायिक बखेड़ों से खबरदार न हों, अन्यथा इस आपसी फूट से सभी कोई परिचित हैं। इसी प्रकार धर्म के नाम पर खर्च होने वाली और विवाह कार्जों में लुटने वाली लाखों की सम्पत्ति को देखते हुये जैनसमाज के धनाढ्य होने की धाक संसार में जमी हुई दिखाई देती है, परन्तु अपने घर की बातों को घर के लोग जानते हैं कि इस नन्हीसी जान पर किस प्रकार गुज़रती है। अगर लक्ष्मी की चकाचौंध से किन्हीं भाई की आंखें सर्वथा बन्द हों तो वे छोटे २ ग्रामों के उन वीर पुत्रों की दुःख अवस्था को देखने के लिये घर से वाहर निकलने का कष्ट उठावें, कि जिनको तमाम दिन के परिश्रम से भी पेट भरने के लिये सेर भर आटा नसीव नहीं होता। फिर संसार के अन्य पदार्थों का तो कहना ही क्या है!

यह हीन दशा सो, दोसौ या पांच सातसौ भाइयों की ही हो, ऐसा नहीं है, वल्कि लाखों वीर-पुत्र दरिद्रता की चक्की में पिस रहे हैं और अपने संकटमय जीवन को जिस तिस प्रकार व्यतीत कर रहे हैं। फिर कोई वतलाये कि जैनसमाज धनवान् क्यों और सामाजिक वंधुओं के दिलों में प्रेमभाव कहां?

आज जैनसमाज की शारीरिक, मानसिक व आर्थिक शक्तियों का और धार्मिक व लौकिक अवस्थाओं का पूर्णतया ह्रास होचुका है और समाज के प्रत्येक अंग में विनाश का कीड़ा लग चुका है। ऐसी हालत में कुशल कहां? करोड़ों की संख्या से घटते घटते लाखों में आगये और वे लाख भी कुछ अधिक

नहीं, केवल ११-१२ लाख-जिसमें भी जैनीमात्र अर्थात् दिगम्बर, श्वेताम्बर और स्थानकवासी सब। यदि यह सब भाई अपने घरों में बैठ कर अपनी २ संख्या पर जुदा २ विचार करें, तब तीनों सम्प्रदाय का बटवारा होने पर ३-४ लाख से भी कम रह जायं। यह है सामाजिक पतन की घुड़दौड़। अगर घटती का यही क्रम जारी रहा तो केवल १००-१५० वर्ष में जैनसमाज का नामोनिशान तक मिट जायगा। हां ! यदि इतिहास के पन्नों पर किसी महापुरुष ने लिखा रहने दिया तो यह उसकी मेहरबानी समझी जायगी।

जैनसमाज में गुड्डे गुड्डी के विवाह अभी तक होते चले जा रहे हैं। यद्यपि बालविवाह के दुष्परिणामों से भारत की सभ्य समाजें सचेत हो चली हैं। इसकी रुकावट के लिये सभा सोसाइटियों के प्रस्ताव ही नही बल्कि सरकारी कानून (शारदा एक्ट) भी पास हो चुका है, परन्तु फिर भी यह नही कहा जा सकता कि बालविवाह की जड़ सर्वथा कट चुकी है। भगवान् सुबुद्धि दें उन विद्वान् कहलाने वाले नामधारी मनुष्यों को जो अब तक भी शारदा एक्ट को धर्म-नाशक कहकर भोले भाइयों को बालविवाह करने की प्रेरणा कर रहे हैं। समाज के उस रहे सहे बेड़े को जो अभी तक विनाश के गहरे समुद्र में डूबने से बचा हुआ है, उसे ऐसे ही समाजद्रोही डुबाकर दम लेंगे, इससे तो ऐसा ही प्रतीत होता है।

बाल-विवाह से समाज शक्ति का कितना ह्रास हो चुका है और होरहा है यह समाज के नवयुवकों की शारीरिक शक्ति बतला रही है, आठ दस वर्ष के नन्हें बालकों को आंखों पर चश्मा चढ़ाये देखा जाता है और उनके शरीर अनेक प्रकार के रोगों से पीड़ित नज़र आते हैं। मां बाप तो केवल यह तमाशा देखना चाहते हैं

कि घर के आंगन में एक नन्हीं सी बालिका (छोरी) छमछम करती दिखाई दे और आठ दस वर्ष के कुंवरजी दूल्हा बने नज़र आयें, परन्तु जो जो अनिष्ट ऐसे विवाहों से होते हैं उन पर ज़रा भी ध्यान नहीं है। अगर यह बाल विवाह की विनाशकारी प्रथा शीघ्र बन्द न हुई तो जैनसमाज की इतिश्री बहुत ही निकट समझ लेनी चाहिये।

जैनसमाज में बालविवाहों से अधिक हानि वृद्ध-विवाहों के द्वारा हो रही है। जब ६०-७० वर्ष के बूढ़े बाबा दूल्हा बनकर मारवाड़ के ऊँट की तरह से गर्दन हिलाते हुये भूखे प्यासों की बारात लेकर चढ़ते हैं और सूखे हुये लम्बे गले में बकरी के बच्चे समान पोती परपोती (नातिन, परनातिन) जैसी अबोध बालिका को टाली की भांति लटका कर लाते हैं तब यह देख कर वे कौन हृदयहीन मनुष्य होंगे कि जिनकी आंखों से आंसू न टपक जायं। अगर कोई ऐसे कारुणिक दृश्य को देखकर भी दुखी न हो तो कहना पड़ेगा कि वह मनुष्य, मनुष्य नहीं है बल्कि मनुष्य के आकार का एक निर्जीव जन्तु है जिसका दिल किसी कड़े पत्थर का बना हुआ है।

जहां वृद्धविवाह समाज की जड़ को खोखला बनाने, विनाश के गहरे गढ्ढे में गिराने और कन्याओं को खुले बाज़ार बिकवाने में सहकारी है वहां बालविधवाओं की सृष्टि रचाने का भी विधाता है। यदि कन्या विक्रयादि कार्य समाज के माथे कलंकरूप है तो बालविधवाओं की उत्पत्ति भी समाज के लिये घोरातिघोर पाप है। जो निर्दयी मां बाप अपनी गऊ समान अबोध बालिकाओं को ५-७ हज़ार रुपये के लाभ से बूढ़े कसाइयों के हाथों बेच डालते हैं वे समाज के लिये कलंकरूप हैं। ऐसे नर-पिशाचों को किसी सभ्य समाज का सदस्य कहना

तो रहा दूर, वे तो मनुष्य कहलाने के भी अधिकारी नहीं हैं।

आज समाज की छाती पर विधवायें कहलाने वाली हज़ारों अबोध बालिकायें बैठी हुई रुदन मचा रही हैं और समाज के सूत्रधारों को जी-जान से कोस रही हैं, यह उन्हीं की दुःखभरी आहों का असर है कि जो आज जैनसमाज रसातल को चला जारहा है। यदि वास्तव में देखा जाय तो यह सब बूढ़े बाबाओं के अत्याचारों और पापी मां बापों की नीच वासनाओं का ही परिणाम है। इन विधवा कही जाने वाली बालिकाओं का जीवन कितना संकटमय और शोकजनक है यह कैसे बतलाया जा सक्ता है उसके तो ध्यानमात्र से ही दिल दहलता है। कहने के लिये उनको चाहे कुछ भी कहा जाय, परन्तु वास्तव में देखा जाय तो वे समाज की सताई और ठुकराई अबोध बालिकायें ही हैं, उन बेचारी ग़रीब बालिकाओं को निर्दयी मां बापों ने भेड़ बकरियों की तरह से बेचा। विषयान्ध बूढ़ों ने बांदी लौंड़ियों की तरह से ख़रीदा। हृदयहीन चौधरियों ने दलाली खाई। धर्म की दुहाई देनेवाले पापी पंडितों ने भेंटें लेकर फेरे फिराये और हरामी माल खाने वाले पंचों तथा बिरादरी भाइयों ने तरमाल उड़ाये, तब कहीं जाकर उन अबोध बालिकाओं को वैधव्य की यज्ञवेदी पर अपने जीवन की बलि देनी पड़ी।

इन अबोध बालिकाओं को कुछ आगे चलकर जिन जिन कठिनाइयों और मुसीबतों का सामना करना पड़ता है वह उन्हीं का दिल जानता है या जानते हैं वे महापापी लोग कि जो उनके शीलरत्न का हरण करके अर्थात् पाप कीचड़ में फंसाकर आप अच्छे उजले दूध के धोये बनकर अलग जा खड़े होते हैं और उनकी दुर्दशा का कारुणिक दृश्य आंखें फाड़ फाड़ कर देखते हैं। बिरादरी के दयाहीन मुखिया और पंच या तो यह

चाहते हैं कि गर्भस्थ जीव का अन्त कर दिया जाय अर्थात् भ्रूणहत्या करके हिंसा जैसे महान् पाप का भार अपने सर धर लिया जाय या बिरादरी से ही नहीं बल्कि घर तक से निकल कर वेश्यावृत्ति धारण कर ली जाय। और या किसी विधर्मी के घर को आबाद कर दिया जाय। बस उनके लिये इस पुण्यमयी भूमि पर इन अत्याचारियों ने सातवें नर्क की रचना कर डाली है।

ज़रा पुरुष कहलाने वाले पापी जीव अपनी छाती पर हाथ रखकर यह तो विचारें कि यदि आज हम इन दुखियाओं (बाल-विधवाओं) की पर्याय में होते तब हमारे जी पर क्या गुज़रती।

इन दीन बालिकाओं को तो विधवा के नाम से पुकारते हुए भी महान् दुःख होता है इन ऐसी दीन बालिकाओं का उद्धार करना समाज का मुख्य कर्तव्य है इनका उद्धार पुनर्लग्न द्वारा हो सकता है या और किसी प्रकार से, यह एक विचारणीय विषय है इस पर बड़े ही ठण्ढे दिल से विचार करने की जरूरत है।

इस पुण्य कार्य के लिये समाज के ज़िन्दा-दिल नवयुवकों को प्रतिज्ञाबद्ध होकर सुधार के अमली मैदान में आना चाहिये और अपना सर्वस्व देकर भी जिस प्रकार उचित जान पड़े इन दुखी बालिकाओं का उद्धार करना चाहिये।

सब से पहले तो इस बात की आवश्यकता है कि वृद्ध विवाह की कुप्रथा को सामाजिक बंधनों के साथ रोका जाय, पूर्णतया बहिष्कार किया जाए और भूलकर भी सहमत न हुआ जाय, क्योंकि किसी भी बूढ़े बाबा को पोती समान कुंवारी कन्या से विवाह करने का कोई भी अधिकार नहीं है। कन्या की आयु से (लग्न के समय) वर की आयु कम से कम ड्यौढ़ी

और अधिक से अधिक दुगनी होनी चाहिये इससे अधिक होना स्त्रीसमाज पर अन्याय और अत्याचार करना है।

कन्याओं की रक्षार्थ नवयुवकों का यह भी कर्तव्य है कि वे वृद्धविवाहों को रोकने के लिये समझाने बुझाने के मधुर मन्त्र से काम लें और यदि यह मन्त्र काम न दे तब सत्याग्रह का शस्त्र सम्भालें, धरना देकर बैठ जायँ और जो आपत्ति अपने ऊपर आवे उसको सहन करते हुए भी कन्या के जीवन का बलिदान न होने दें। और साथ ही इसके बालविधवाओं के जीवन को सुखमयी बनाने का बीड़ा चबाकर राजस्थान के वीर पुरुषों की भाँति मानमर्यादा की तिलांजलि देकर और अपने आपको रीति रिवाजों की जलती हुई अग्नि मे झोककर, आगे बढ़ें और उनके उद्धार का मार्ग ढूंढ़ निकालें।

इसमें सन्देह नहीं कि शील संयम का जीवन इह लोक और परलोक दोनों ही के लिये श्रेष्ठ है और वह स्त्री पुरुष दोनों ही के लिये एक समान है, शील संयम के पवित्र और धार्मिक जीवन की महिमा तो स्वर्ग के इन्द्र भी गाते हैं। संसार में इससे उच्च वस्तु और क्या हो सकती है। धन्य हैं वे मनुष्य (स्त्री हो या पुरुष) जो शील संयम के धारी हैं, परन्तु शील संयम अपने ही मन से धारण किया जाता है, ज़ोर ज़बरी के साथ शील संयम नहीं पाला जा सकता—और न ब्रह्मचर्य ही धारण किया जा सकता है। जब कि बूढ़े बाबा लोग अपनी कामवासना के ग़ुलाम बने ६०–७० वर्ष से अधिक आयु हो जाने पर भी १०–१२ वर्ष की कन्या का जीवन धूल में मिलाने के लिये रुपयों की थैलियां लिये फिरते हैं तब ऐसी दशा में विधवा कहलाई जाने वाली दीन बालिकाओं से शील संयम के जीवन की आशा रखना यदि आकाश के पुष्पवत् असम्भव नहीं तो और

क्या है जब कि पुरुष की कामेच्छा से स्त्री की कामेच्छा को अठगुना बतलाया जाता है।

सब से पहले इस बात की आवश्यकता है कि विधुर पुरुष अपना विवाह न करायें, शील संयम का जीवन बनाकर आत्म कल्याण की ओर लग जायं और यह धारणा करलें कि हमको कंवारी कन्याओं से विवाह कराने का कोई अधिकार नहीं है। उनकी ऐसी प्रतिज्ञा और क्रिया अवश्य ही फलीभूत होगी और यदि कोई उद्दण्ड व्यक्ति अपनी धींगाधांगी से ऐसा करे तो वह समाज का अपराधी समझा जाय और समाज उसको उचित दण्ड देकर स्त्रीसमाज की रक्षा करे।

आज जब कि समाज की आर्थिक दशा पर दृष्टि डाली जाती है तब यही दिखाई देता है कि इसकी फ़िजूलख़र्ची इसको दाने दाने के लिये मोहताज बना रही है विवाह शादियों के, मरने जीने के, भोग विलास के, नाच तमाशों के, मौज मज़ों के और नशीली वस्तुओं के व्यर्थ खर्चों ने दिवाला बोल दिया है। विवाहों में रंडी, भांड नचाना, स्वांग तमाशे कराना, बाग-बहारी लुटाना, आतिशबाज़ी जलाना, बूर बांटना, बखेर करना और शाही लश्कर जैसी बारात लेकर चढ़ाना यह सब अपनी तबाही के लिये किया जा रहा है और इनके द्वारा मुसीबत को बुलाया जारहा है, आज ऐसे विवाहों के कारण हज़ारों भाइयों की अटूट सम्पत्ति नष्ट हो चुकी है और कितने ही भाइयों के घरबार साहूकारों की डिग्री में १-२-३ (नीलाम) होते हुये तो रोज ही देखे जाते हैं।

यदि वास्तव में देखा जाय तो विवाह संस्कार एक गृहस्थ की सृष्टि रचाने का एक सामाजिक कार्य है अर्थात् वर, कन्या नाम के दो अपरिचित व्यक्ति विवाह संस्कार द्वारा गृहस्थ

जीवन में प्रवेश करते हैं। केवल इतने कार्य के लिये हज़ारों रुपया पानी की तरह से बहा देना, घर बार हाट हवेली गंवा देना और दाने दाने के लिये भिखारी बन जाना कौनसी बुद्धिमानी का कार्य है। इससे तो आर्थिक दशा का दिन प्रतिदिन ह्रास ही होता जा रहा है। आवश्यकता तो इस बात की प्रतीत हो रही है कि विवाह संस्कार के समय वर कन्यावालों को किसी भी प्रकार से कष्ट उठाना न पड़े, अर्थात् विवाह संस्कार सुगमता के साथ हो जाया करे।

अपनी समाज में होने वाली ओसर मोसर, नुकता, काज अथवा मृतक-भोज जैसी नीच प्रथा ने भी समाज की सभ्यता, उच्चता, महानता और धार्मिकता का दिवाला बोल दिया है। बिरादरी में जब किसी बिरादरी भाई का मरण हो जाता है। वह मरने वाला स्त्री हो या पुरुष, बूढ़ा हो या जवान, कंवारा हो या विवाहा, धनी हो या निर्धन और चाहे उसके जीवन पर सारे कुटुम्ब के पालन पोषण का भार ही क्यों न हो लेकिन उसके कुटुम्बी जनों को बिरादरी का जीमनवार करना पड़ता है अर्थात् लड्डू कचौरी खिलाने होते हैं। जिस समय मरने वाले की वृद्धा माता, दुखिया स्त्री और लाड़ चाव से रहित अनाथ बच्चे कुछ पास न होने के कारण दुःखसागर में डूबे हुए अपने भावी जीवन की चिन्ता से पीड़ित हो रहे हों। उस कष्ट के समय बिरादरी के पंच पटेलों का इनके घर आकर बिरादरी के जीमनवार (लड्डू गटकने) का तकाज़ा करना, अनुचित दबाव डालना, और उनके रहने का टूटा फूटा झोंपड़ा बन्धक रखाकर या हाथ पैरों का सूक्ष्मसा (आड़े समय काम आने वाला) गहना बिकवाकर मृतक-भोज का प्रबन्ध कराना कितना भारी अन्याय और अत्याचार है। क्या यह भी कोई खुशी मनाने और तर-

माल उड़ाने का अवसर है। घर का आदमी गया मौत के मुंहमें और रहने का झोंपड़ा गया बिरादरी के पेट में, अब बाक़ी क्या बचा, अब तो घर के दुखी और निःसहाय व्यक्तियों को और नन्हें २ बच्चों को मेहनत मज़दूरी करके या भिक्षा मांग कर पेट का गढ़ा भरना होगा।

कहां तो इस शोक के समय बिरादरी वालों का कर्तव्य उन ग़रीब दुखियाओं के साथ सहानुभूति दर्शाना और उनकी सहायता करना था और कहां उन पर उल्टा अत्याचार करके मृतक-भोज के नाम पर जीवित कुटुम्बियों को सर से पैर तक निगल जाना हो रहा है।

मरने वाला व्यक्ति चाहे बूढ़ा हो या जवान, लेकिन वह मरकर हमेशा के लिये जुदा हो जाता है। उस जुदाई का रंज और तकलीफ़ उसके कुटुम्बी लोग ही जान सकते हैं या जान सकते हैं वे लोग कि जिनको ऐसा बुरा समय देखना पड़ा हो, फिर दुखी कुटुम्ब को और भी दुखी करना इससे ज्यादह पाप और क्या होगा?

यह मृतक-भोज की घृणित प्रथा समाज के माथे एक बड़ा भारी कलंक है। खेद है कि बहुतसे भोजनभट्ट, पेटार्थू और धर्म के ठेकेदार बनने वाले हृदयहीन व्यक्ति ऐसे घृणित भोज की प्रशंसा और पुष्टि करते हुये ज़रा भी नहीं शर्माते। यह समझ में नहीं आता कि जब घर के दीन, अनाथ और दुखिया प्राणी तो रो रो कर खून के आंसू बहा रहे हों—और घर के आंगन में विरादरी के दयाहीन भोजनभट्ट तरमाल उड़ा रहे हों, तब दया किस अंधेरे कोने में खड़ी हुई रोती होगी, क्या सहानुभूति इसी को कहते हैं, क्या साधर्मी वत्सल इसी का नाम है। नहीं, हर्गिज नहीं। यह तो साफ़ तौर पर दया धर्म और

प्रेम भाव का खुले मैदान गला काटा जा रहा है या मृतक-भोज के बहाने दुखियाओं के जीवन का ख़ून चूसा जा रहा है। ऐसे मृतक-भोज का किसी भी जैन सूत्र में उल्लेख नहीं है। यह कुप्रथा धर्म के सर्वथा विरुद्ध है और दूसरे लोगों की देखा देखी जैनसमाज में प्रचालित होगई है। जो हृदयहीन मनुष्य इस कुप्रथा की किसी प्रकार से भी पुष्टि करते हैं वे केवल लड्डू गटकने के लिये जैनसमाज़ को धर्म के नाम पर धोखा देकर मिथ्यात्व के गहरे गड्ढे में ढकेलते हैं और अपने लिये नर्क गति का बंध बांधते हैं। यदि समाज के धनवान् अपने पूज्य पुरुषाओं की मृत्यु समय उनकी आत्मशान्ति के अर्थ या अपनी नामवरी के लिये कुछ द्रव्य ख़र्च करना आवश्यक समझते हों और अवश्य ही ख़र्च करना चाहते हों तो उनको मृत्यु-भोज जैसी घृणित प्रथा में एक कौड़ी ख़र्च न करके पूज्य पुरुषों के स्मरणार्थ धार्मिक संस्थायें खोल देना चाहिये। समाज के निर्धन भाइयों, अनाथों, दीन और असहाय देवियों की सहायता करना चाहिये। ग़रीब विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति देनी चाहिये। पुस्तकालय, औषधालय, विद्यालय, अनाथालय आदि धार्मिक संस्थायें उनके नाम पर जारी कर देनी चाहियें, जिससे एक पंथ दो काज की कहावत चरितार्थ होगी अर्थात् स्वर्गीय पुरुषों की यादगार और पुण्य की प्राप्ति। उनके ऐसा करने से ग़रीब भाई भी इस कुप्रथा से बच निकलेंगे। यदि धनवानों ने इस ओर ध्यान न दिया तो वह दिन शीघ्र आयेगा कि समाज के ग़रीब भाई ऐसी कुप्रथाओं के फन्दे से अपनी गर्दन निकाल कर इस पाप से अवश्य ही बच निकलेंगे और धनवान् कहलाने वाले व्यक्ति अलग खड़े देखा करेंगे।

अगर समाज को और उसके नवयुवकों को अपने माथे से

कलंक का टीका मिटाना है तो इस नीच प्रथा को सर्वथा बन्द कर देना चाहिये। इसमें कोई शर्त धनी निर्धन की या उम्र की नहीं होनी चाहिये कि इतनी उम्र वाले का भोज न हो और इतनी उम्र वाले का हो, क्योंकि है तो यह हर हालत में मृत्यु समय का खाना ही। समाज के नवयुवक यदि चाहें तो इस घृणित प्रथा को अपनी संगठन शक्ति द्वारा दम की दम में बन्द करा सकते हैं और अपनी सभ्य समाज के माथे से कलंक का टीका मिटा सकते हैं।

जिस जैनसमाज को अपने साधर्मी बन्धुओं के शुद्ध खान पान पर किसी समय बहुत कुछ गौरव प्राप्त था। आज उन्हीं भाइयों के अशुद्ध खान पान को देख कर लज्जित होना और मुंह छिपाना पड़ रहा है। अनछना पानी पीना, रात्रि को भोजन करना, भङ्ग, तमाकू, बीड़ी, सिग्रेट आदि मादक वस्तुओं का सेवन करना, चाय काफी और सोड़ा आदि पीना, चर्बी मिश्रित घी और विदेशी शक्कर खाना और अपवित्र ओषधियें काम में लाना आदि कहां तक गिनाया जाय। खान पान सम्बंधी क्रियायें बहुधा करके भ्रष्ट हो चुकी हैं और हो रही हैं। यदि इस ओर शीघ्र ध्यान न दिया गया और शुद्धताई का प्रबंध न किया गया तो इसका परिणाम बहुत ही बुरा निकलेगा।

शुद्ध खानपान से जहां शरीर के अवयव सुन्दर और शक्तिशाली बनते हैं वहां मन पर और मन के द्वारा आत्मा पर भी अच्छा प्रभाव पड़ता है जिससे आत्म-कल्याण की ओर झुकाव होने लगता है और अभक्ष भक्षण से शरीर, मन और आत्मा पर बुरा प्रभाव पड़ता है। किसी कवि ने कहा है कि "जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन। जैसा पीवे पानी वैसी बोले बानी"। अतः शुद्ध खान पान का ग्रहण करना ज़रूरी है, क्योंकि सदाचार इसी पर अवलम्बित है।

समाज की अनैक्यता ने श्री संघ का किस बुरी तरह से गला घोंटा है यह सभी कोई जानते हैं। वैसे तो जैनसमाज की संख्या के प्रश्न पर प्रत्येक जैनी बड़े गौरव के साथ यह उत्तर देगा कि हम बारह लाख हैं, परन्तु जब साम्प्रदायिक भाव आयेगा तब एक दूसरे पर पत्थर बरसाता दिखाई देगा। यदि जैनसमाज की तीनों सम्प्रदाय वाले—दिगम्बर, श्वेताम्बर और स्थानकवासी—भाई मिलकर जैनसमाज को गङ्गा, यमुना और सरस्वती के संगम की भांति तीर्थराज बना डाले या सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र की एकता समान आत्मोन्नति का मार्ग खोलदें अर्थात् अपनी धार्मिक क्रियाओं को अपनी श्रद्धानुसार स्वतन्त्रतापूर्वक पालन करते हुये सामाजिक, राजनैतिक और धर्मप्रचार आदि कार्यों को सम्मिलित शक्ति द्वारा करने लगजायें तो जैनसमाज के मृतक शरीर में फिर से जान आजाय और यह सूखा हुआ वृक्ष फिर हरा भरा होजाय और इसमें बड़े २ सुन्दर, मीठे और अमृत समान फल लग जायें।

आज "अपनी ढपली और अपने राग" ने हमें संसार की दृष्टि में तुच्छ बना रक्खा है। हमसे थोड़ी संख्या वाले बहादुर सिक्ख, पारसी और आर्यसमाजी आदि राज में, समाज में और अन्य उन्नति के कार्यों मे बहुत कुछ आगे बढ़ जा रहे हैं, परन्तु जैनियों की कहीं पूछ तक भी नहीं है। यदि जैनसमाज अपना एक संगठन बनाकर कार्य करता तब जैन लॉ पास कराया जाता, जैन पर्वों की छुट्टी सरकार से स्वीकार कराई जाती, कौन्सिलों में सीटें प्राप्त की जातीं और गोलमेज जैसी कान्फ्रेन्सों में अपना प्रतिनिधि भिजवाया जाता अर्थात् जैनसमाज की भलाई के सभी कार्य किये जाते, परन्तु यहां पर तो अनैक्यता राक्षसी की कृपा से घर के ही काम नष्ट होरहे हैं। न कहीं विद्योन्नति

का साधन है, न कहीं धर्मप्रचार का कार्य है और न कहीं समाज की शोचनीय दशा पर विचार करने का सुभीता है। हां! यदि कुछ है तो धर्म के नाम पर मारपीट, गाली गलोज और मुकद्दमेबाज़ी है। इस फूट ने साधुमार्गी समाज में भी अपना डेरा डाला हुआ है, साधु मुनिराजों का पक्ष लेकर लड़ते झगड़ते हैं और दूसरों को हँसी उड़ाने का मौक़ा देते हैं समझना तो यह चाहिये कि जो संयम के धारी मुनिराज हैं वे सब वन्दनीय हैं और धर्मगुरु हैं। हमें तो सब की विनयभक्ति सहित मान्यता करनी चाहिये और किसी भी प्रकार का द्वेष भाव आपस में नहीं रखना चाहिये। इस फूट के कारण जैनसमाज की शक्ति छिन्न भिन्न होरही है और उन्नति के मार्ग में द्वेष कषाय की ऊंची पहाड़ियें रुकावट डाले खड़ी हैं। आवश्यकता है कि जैनसमाज से इस फूट राक्षसी का काला मुंह करके निकाल दिया जाय और जैनसमाज के बिखरे हुये रत्नों को प्रेम के सूत्र में पिरो कर श्री वीर-प्रभु के नाम पर अर्पण कर दिया जाय। जब जैनमात्र अहिंसाधर्म के झण्डे के नीचे खड़े होकर एक आवाज़ से समाजोन्नति के मन्त्र का उच्चारण करेंगे तब सारे कार्य सिद्ध होते हुये दिखाई देंगे।

कहा जाता है कि प्राचीन समय में जैनियों की संख्या करोड़ों पर थी और अब कुछ लाखों पर ही आगई है। इसका कारण क्या है इस पर ध्यान देने की बड़ी ज़रूरत है। जिस तालाब का पानी निकलता और सूखता चला जाय और आवे एक भी बूँद तक नहीं–तब वह सूखेगा नहीं तो और क्या होगा। इसी प्रकार जैनसमाज का द्वार औरों के लिये बन्द है लेकिन इनका निकाल बराबर जारी है जिसके लिये बिरादरी से ख़ारिज कर देने का शस्त्र खूब काम देरहा है। दूसरे हज़ारों नवयुवक

विना विवाहे रह कर सन्तान उत्पन्न नहीं कर सकते । चाहे जिस शहर या नगर की विरादरी का हाल मालूम कर देखिये यही मालूम होगा कि अब से ५० वर्ष पहले यहां २०० घर जैनों के थे और अब ८० रह गये हैं । घर के घर नष्ट होगये हैं। नामोनिशान तक मिट गया है । कारण यही है कि निःसंतान मर गये हैं । अब इस संख्या की घटी को रोकने और लाखों से करोड़ों बनाने के लिये अजैनों मे जैनधर्म का प्रचार करना होगा और विवाह सम्बन्ध का क्षेत्र विस्तीर्ण करके अर्थात् बाल-विधवाओं का उद्धार और विजातीय विवाह चालू करके सन्तान उत्पत्ति का मार्ग खोलना होगा, तब जैनों की संख्या बढ़ सकेगी और लाखो से करोड़ो मे आसकेगी ।

समाजोन्नति का आन्दोलन जैनसमाज मे बहुत वर्षों से चल रहा है । सभा सोसायटियें स्थापित हो रही हैं । प्रस्ताव पास करके काले कागज़ किये जा रहे हैं और लम्बे चौड़े भाषण दिये जा रहे हैं, परन्तु सामाजिक उन्नति का कोसों भी पता नहीं है । समाजोन्नति के लिये सब से पहले जैनमात्र के संगठित होकर वीर-प्रभु के झंडे के नीचे आने की ज़रूरत है फिर विद्योन्नति के लिये विद्यालय, गुरुकुल, कालेज, स्कूल आदि खोलने, पुस्तकालय, अनाथालय, औषधालय आदि स्थापित करने, रीति रिवाजों को सुधारने, व्यर्थ व्यय को दूर करने और धर्म का सिंहनाद संसार भर में बजाने की ज़रूरत है. यदि यह सब कर दिया गया तब उन्नति का मैदान हमारा अपना है फिर तो जैनसमाज उन्नति के शिखर पर चढ़ा दिखाई देगा और उन्नति की घुडदौड़ में बाज़ी ले जायगा ।

श्री जैनधर्म के सर्वप्रिय अहिंसा सिद्धान्त को जहां भारत-वर्ष के करोड़ों मनुष्य अपनाने लगे हैं वहां अहिंसा का ढोल

पीटने वाले जैनी भाई हिंसक कार्यों में निमग्न दिखाई देते हैं रेशम के खूनी और विदेशों के चर्बी लगे हुए वस्त्रों का पहनना और दीन पशुओं के चमड़े को विविध प्रकार से काम में लाना यह सब हिंसा का कारण है, लाखों कीड़ों के प्राण हरण होने पर दो चार गज़ रेशम तैयार हो पाता है। रेशम के कीड़े खौलते हुए पानी में उबाल कर मारे जाते हैं तब रेशम का तार हाथ आता है जिसको साफ़ करके नाना प्रकार के रंगों में रंगते हैं और वस्त्र बनाते हैं इन खूनी वस्त्रों के लंहगे ओढ़ने चोली और साड़ियें हमारी वे मां बहनें पहनती हैं कि जो पर्व के दिनों में धर्म पालने के लिये बड़े बड़े महान् व्रत और संयम का पालन करती हैं। पानी के एक गन्दे छींटे से इस घिनावने शरीर को ऐसी अपवित्रता आचिमटती है कि विना स्नान किये नहीं छूटती, परन्तु इन खूनी वस्त्रों के पहनने पर अपवित्रता नहीं आती यह वास्तव में आश्चर्य की बात है। चर्बी आदि मांस तुल्य नापाक चीज़ों से चिकने और मुलायम किये वस्त्रों का पहनना भी अहिंसा धर्म की गर्दन पर छुरी चलाने जैसा है। कपड़े का पहनना शरीर को गर्मी सर्दी की बाधा से बचाने का साधन है जो हाथ के बुने हुए कपड़ों से भी पूरा हो सकता है या देश की उन मिलों का कपड़ा भी काम में लाया जा सकता है कि जिनमें चर्बी आदि वस्तुवें काम में नहीं लाई जाती।

इन सब बातों पर विचार करते हुए हमारी दयाशील मां बहनों को रंग विरंगे चटकीले और भड़कीले रेशमी वस्त्रों को सर्वथा त्याग देना चाहिये और धर्मबन्धुओं को धर्म की रक्षार्थ स्वदेशी वस्त्र ही काम में लाने चाहियें।

इस समय चमड़े का व्यवहार भी बहुत कुछ उन्नति कर गया है। पांव की जूती से बढ़ते २ सर तक पहुंच गया है।

एक जैन्टिलमैन कहलाने वाले व्यक्ति के पास स्लीपर, फुल-स्लीपर, बूट, फुलबूट, पैम्पशू, मनीवेग, हैण्डवेग, सूटकेस, बिस्तराबन्द, तश्मा, पेटी, हन्टर आदि कितनी ही वस्तुवें चमड़े की होती हैं जिनके लिये कम से कम एक पशु का चमड़ा भी नाकाफ़ी है। इसके अतिरिक्त वहियों के पुट्ठे, किताबों के गत्ते, घोड़ों की ज़ीन, गाड़ियों के साज़, गद्दे और अन्य बहुत सी चीज़ें चमड़े की काम में लाई जाती हैं जिससे लाखों पशुओं की गर्दनें बड़ी वेहरमी के साथ काटी जाती हैं। इसलिये दया-प्रेमी भाइयों का (वह जैन हों या अजैन) कर्तव्य है कि वे चमड़े को काम में लाने का सर्वथा त्याग करदें और यही क्यों, यदि बन पड़े तो दयाधर्म के नाम पर चमड़े का जूता तक भी पहनना छोड़ दें।

मारवाड़ देश की पूज्य देवियें सौभाग्य चिह्न के लिये हाथी-दांत का चूड़ा बड़े ही चाव के साथ पहनती हैं और इसकी प्रशंसा के गीत भी गाती हैं, परन्तु उनको मालूम होजाना चाहिये कि हाथीदांत हड्डी है, अपवित्र है और दयाधर्म के सर्वथा विरुद्ध है। यह तो छूने योग्य भी नही है फिर न जाने ऐसी अपवित्र और हिंसक वस्तु को सौभाग्य का चिह्न कैसे मान लिया और कैसे इसको ग्रहण कर लिया। जैसे हाड़, मांस, राध, रुधिर आदि शरीर के अवयव हैं उसी प्रकार दांत भी है, दांत चाहे हाथी का हो या सुअर का सब एक ही बराबर है। सौभाग्य चिह्न के लिये यदि चूड़े का पहनना आवश्यक ही है तब वह किसी शुद्ध धातु का बनवा कर पहनना चाहिये। आशा है कि पूज्य देवियें हाथीदांत के चूड़े का त्याग करके हिंसा के पाप से बचेंगी।

जैनसमाज में स्त्रियों की जो दशा है वह अत्यन्त शोचनीय

और हानिकर है। उनमें न धार्मिक शिक्षा है, न लौकिक अनुभव है और न आत्म-गौरव है। वे बेचारी पुरुषों के हाथो की कठ-पुतली बनी हुई हैं, अपने अधिकारों को भूली हुई हैं और उनका जीवन सर्वथा अंधकार में है।

स्त्री-रत्न पुरुष की अर्धाङ्गिनी है। उनको घर गृहस्थी के कामों में पूरा नही तो आधा अधिकार अवश्य है परन्तु उनको पूछता कौन है उनको तो पर्दे का भूत बना रक्खा है उनके लिये पर्दे की घातक प्रथा के कारण तमाम संसार सून्य है। स्वच्छ वायु और खुला प्रकाश उनके शरीरों तक कभी छूता तक भी नहीं। वे डरपोक, कायर, मूर्ख, असभ्य और अनुभवहीन बनी हुई हैं। उनकी इस अज्ञानता से सैकड़ों ठग, धोखेबाज़ और गुण्डे अनुचित लाभ उठाते हैं। दिन दहाड़े लूटते हैं और अपना उल्लू सीधा करते हैं।

जैन पुराणों से पता चलता है कि राज्य-माताओं ने भरे दरबारों में पधार कर अपने स्वामी के समीप राज्यसिंहासन पर स्थान पाया, स्वयं राज्य किये और उनकी रक्षा के लिये रण-क्षेत्रों में सम्मिलित होकर शस्त्र चलाये। उस समय पर्दे की इस घातक रस्म का कहीं ढूंढे भी पता नहीं था और इस समय भी जिन महाराष्ट्र, गुजरात और दक्षिण आदि देशों में पर्दा नहीं है, वहां की स्त्रियें पर्दे वाले देशों से कितने ही दर्जे उन्नतिशील हैं। पर्दे के अन्दर कितनी बुराइयें छिपी हुई हैं यदि उन पर ज़रा भी विचार किया जाय तो वे सब बुराइयें आंखों के सम्मुख आकर खड़ी होजायेंगी।

पर्दे ने पर्देवाली स्त्रियों को ऐसा वेकार बना दिया है कि वे संसार में आकर भी संसार को नहीं देख सकती। वे देख सकती हैं केवल अपने मकान की दीवारों को, क्योंकि मकान के अन्दर

पिंजरे के पक्षी की तरह से रात दिन बन्द रहती हैं और स्वतन्त्रता के साथ वोल तक भी नहीं सकतीं, क्योंकि भय लगा रहता है कि कहीं उनका वोल किसी के कानों में न पड़जाय और पर्दे की धज्जियां न उड़ जायं।

पर्दे की रक्षा के कारण ही स्त्रियें शिक्षा से वंचित रक्खी जाती हैं। अज्ञानावस्था में रह कर उनका जीवन चाहे भले ही धूल में मिल जाय, परन्तु पर्दे में फ़र्क़ न आजाय। पर्दे का दुष्परिणाम उस समय दिखाई देता है कि जव पर्दे की देवी किसी मेले ठेले या दूर देश की यात्रा में अपने कुटुम्बियों से जुदा होजाती हैं और गूंगे, बहरे और अंधे की तरह से भटकती हुई किसी गुण्डे के फन्दे में फंसकर अपना सव कुछ गंवा देती हैं और हमेशा के लिये छूट जाती हैं।

पर्दे में रह कर स्त्रियों के संस्कार कुछ ऐसे विचित्र होगये हैं कि वे पर्दे को अपने जीवन का साथी समझने लगी हैं और पर्दा उनका धर्म वन गया है। यदि किसी समय पर्दा ज़रा देर के लिये भी उड़ गया तो मानो उनके हाथों से धर्मरूपी पक्षी उड़ गया। यह सरासर अज्ञान अवस्था की सूझ बूझ है। पर्दा न शील संयम का रक्षक है और न कोई धार्मिक क्रिया है। सम्भव है कि यह पर्दा प्रथा किसी समय की आवश्यकता का साधन हो, परन्तु अब कोई ज़रूरत नहीं है। अव तो ज़रूरत इस बात की है कि स्त्रीसमाज पर्दे से बाहर निकल कर अपने अधिकारों की रक्षा का बल प्राप्त करे।

स्त्रियों के अशिक्षितपन ने भी स्त्रीसमाज को पतित बना दिया है। मिथ्याती देवों (भूत प्रेत, देवी, दिहाड़ी, काली, भैरों, शीतला मसानी, पीरपैग़म्बर आदि) को पूजना, पीरो फ़क़ीरों के

गण्डे ताबीज़ों पर विश्वास लाना, स्यानों चट्टों से झाड़ फूंक कराना, तरह २ के मिथ्याती त्यौहार मनाना, विवाहों के समय पर गन्दे गीत और भण्ड वचन (सीठने) गाना और घरों में क्लेश रखना इत्यादि क्रियाओं से इनका पतितपन भले प्रकार सिद्ध है। यदि स्त्रीसमाज में धर्मशिक्षा होती और धर्म-ज्ञान का अच्छा बोध होता, तब ऐसी पतित अवस्था कदापि न हो सकती इनका इस पतितावस्था से उद्धार करना पुरुषों का परम कर्तव्य है, इनकी इस गिरावट से ही हमारे घर नर्क का नमूना बने हुए हैं। यदि स्त्रीशिक्षा का प्रचार भले प्रकार किया जाय तब यह सब बुराइयें दूर हो सकती हैं और हमारे घर स्वर्ग के समान सुख शान्ति के देने वाले बन सकते हैं।

वैसे तो जैनसमाज में हिन्दू भाइयों की देखादेखी बहुतसे मिथ्याती त्यौहारों और संस्कारों ने अपना घर बना लिया है परन्तु होली का त्यौहार और विवाहसंस्कार तो बहुत ही खटकते हैं। लकड़ी कंडों के सैकड़ों मन ऊंचे ढेर में आग लगाकर पृथ्वीकाय, वायुकाय, अग्निकाय और साधारणतया जलकाय और वनस्पतिकाय के अनन्त जीवों का घात करना कितना भारी पाप है और लाखों त्रस जीव भी होली की आग में भस्मीभूत हो जाते हैं। होली जलाना, खाक धूल उड़ाना, काले पीले मुंह बनाना, गन्दगी उछालना, जूतों के हार पहनाना, भण्ड वचन बोलना, गन्दे गीत गाना, गालियें बकना और भङ्ग मदिरादि वस्तुओं का सेवन करना यह सब होली का त्यौहार है, एक दयाधर्म का पालन करने वाली सभ्यसमाज के लिये होली के नाम पर यह सब कुछ करना कितनी लज्जा और शर्म की बात है इसका सब भाई विचार कर सकते हैं। ज़रूरत इस बात की है कि यह प्रतिज्ञा धारण करली जाय कि होली का

कदापि न मनायेंगे और होली के हुड़दंग से जुदा रहकर अपने अमूल्य समय को धर्म ध्यान मे व्यतीत करेंगे।

खेद है कि हम जैनी लोग अपने धर्म से इतने विमुख हो गये हैं कि हमारे तमाम संस्कार जैनधर्म की विधि से न होकर मिथ्यात्व के तरीक़े से होते हैं। क्या जैनसूत्रों में संस्कारविधि नही है। है और सब कुछ है, परन्तु उसको भुला रक्खा है और तो क्या विवाह जैसे शुभ संस्कार भी अन्य धर्म के मंत्रों से ही कराये जाते हैं, जो अत्यन्त लज्जा की बात है। मिथ्या देवों के पूजन से अपने निर्मल श्रद्धान को मैला करना जैनियों के लिये किसी तरह से भी उचित नही है। अतः विवाहसंस्कार जैन-पद्धति के अनुसार अवश्य ही होने चाहियें।

समाज सम्बन्धी यह थोड़े से विचार समाज के सम्मुख रक्खे जाते हैं। आशा है कि समाज के मुखिया, नेता और इसको पढ़ने वाले भाई इन पर भले प्रकार विचार करेंगे और किसी अच्छे नतीजे पर पहुंच कर लाभ उठायेंगे।

यह ट्रेक्ट दो पैसा का टिकट भेजने पर निम्न पते से मिल सकेगा—

राजाबहादुर ला० सुखदेवसहाय ज्वालाप्रसादजी
जैन जौहरी (लाला-भवन)
महेन्द्रगढ़ (पटियाला स्टेट)

बाबू चांदमल चंडक प्रबन्धकर्ता वैदिक-यन्त्रालय के
प्रबन्ध से मुद्रित.

अथ

॥ श्री पांत्रीश बोलनो थोकडो प्रारंभः ॥

१ पहेले बोले नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति अने देवतानीगति ए चार गति जाणवी ॥

२ बीजे बोले एकेंद्रिय जाति, बेइंन्द्रिय जाति, त्रेंद्रिय जाति; चौरिंद्रिय जाति अने पंचेन्द्रिय जाति ए पांच जाति जाणवी ॥

३ त्रीजे बोले पृथ्वीकाय, अपकाय, तेउकाय, वायु काय, वनस्पतिकाय अने त्रसकाय ए छकाय जाणवी ॥

४ चोथेबोले श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसेन्द्रिय, अने स्पर्शेंद्रिय ए पांच इंद्रिय जाणवी ॥

५ पांचमे बोले आहार पर्याप्ति, शरीर पर्याप्ति, इंद्रिय पर्याप्ति, श्वासोश्वास पर्याप्ति, भाषा पर्याप्ति अने मनः पर्याप्ति जाणवी ॥

६ छठे बोले पांच इंद्रिय तथा मनबल, वचनबल अने कायबल ए त्रण बल एवं आठ अने नवमो श्वासोश्वास तथा दशमुं आयु, एदशप्राण जाणवा ॥

(२) उतराध्ययनसूत्र पाका पुंठानुं रु. ६-८-०

७ सातमे बोले औदारिक, शरीर, वैक्रिय शरीर, आहारक शरीर तैजस शरीर अने कार्मण शरीर ए पांच शरीर जाणवा ॥

८ आठमे बोले सत्यमनोयोग, असत्य मनोयोग, मिश्र मनोयोग, अने व्यवहार मनोयोग ए मनना चार योग तथा सत्य वचनयोग, असत्य वचनयोग, मिश्र वचनयोग अने व्यवहार वचनयोग ए चार वचनना योग तथा औदारिक काययोग, औदारिक मिश्र काययोग, वैक्रिय काययोग, वैक्रियमिश्र काय योग, आहारक काययोग, आहारक मिश्र काययोग अने कार्मण काययोग ए सात कायाना योग एवं स र्वेमली पन्नर योग जाणवा ॥

९ नवमे बोले मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान अने केवलज्ञान एवं पांचज्ञान तथा मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान अने विभंगअज्ञान एवं त्रण अज्ञान तथा चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन अवधिदर्शन अने केवलदर्शन एवं चार दर्शन मली बार उपयोग ॥

१० दशमे बोले ज्ञानावरणीय कर्म, दर्शनावरणीय कर्म, वेदनीय कर्म, मोहनीय कर्म, आयुकर्म, नामकर्म, गोत्रकर्म अने अंतरायकर्म ए आठ कर्म ॥

११ अगीआरमे बोले मिथ्यात्व गुणठाणु, शास्वादन गुणठाणु, मिश्र गुणठाणु, अव्रतिसम्यकदृष्टि गुणगाणु, देशविरति गुणठाणु, प्रमत्त गुणठाणु, अप्रमत्त गुणठाणु, निवृत्तिबादर गुणठाणु, अनिवृत्तिबादर गुणठाणु, सूक्ष्मसंपराय गुणठाणु, उपशांतमोह गुणठाणु-क्षीणमोह गुणठाणु, सयोगीकेवली गुणठाणु, अने अयोगीकेवली गुणठाणु एवं चोद गुणठाणां ॥

१२ बारमे बोले जीव शब्द, अजीव शब्द अने मिश्रशब्द ए त्रण विषय श्रोत्रेन्द्रियना छे तथा कालो, नीलो, पीलो, रातो अने धोलो ए पांच विषय चक्षुरिंद्रियना छे तथा सुरभिगंध अने दुर्भिगंध ए बे विषय घ्राणेद्रियनां छे तथा कडवो, कषायलो, खाटो, मीठो अने तीखो ए पांच विषय रसेन्द्रियना छे तथा सुंवालो, खरखरो, हलवो, भारे, शीत, उष्ण, लूखोअने चोपड्यो ए आठ विषय स्पर्शेद्रियना छे एवं सर्वे मली पांचे इंद्रियना त्रेवीश विषय जाणवा ॥

१३ तेरमे बोले जीवने अजीव करी जाणे ते मिथ्यात्व, अजीवने जीव करी जाणे ते मिथ्यात्व, धर्मने अधर्म करी जाणे ते मिथ्यात्व, अधर्मने धर्म करी जाणे ते मिथ्यात्व, साधुने असाधु करी सद्दहे

ते मिथ्यात्व, असाधुने साधु करी सद्दहे ते मिथ्यात्व. संवरभाव सेवन रूप मोक्षमार्ग तेने उन्मार्ग करी सद्दहे ते मिथ्यात्व, विषयादि सेवनरूप उन्मार्ग तेने मोक्षमार्ग करी सद्दहे ते मिथ्यात्व, वायरो आदिक रूपी पदार्थने अरूपी करी सद्दहे ते मिथ्यात्व, मोक्षादिक अरूपी पदार्थने रूपी करी सद्दहे ते मिथ्यात्व ए दश प्रकारनां मिथ्यात्व जाणवां ॥

१४ चौदमे बोले नव तत्त्वना जाणपणा विषे एकशोने पन्नर बोल धारवा ते कहे छे.

॥ प्रथम जीवतत्त्वना चौद बोल कहेछे. एक सुक्ष्म एकेंद्रिय, बीजा बादर एकेन्द्रिय, त्रीजा बेन्द्रिय, चोथा त्रेन्द्रिय, पांचमा चउरिंद्रिय, छट्ठा असन्नि पंचेन्द्रिय; अने सातमा सन्नि पंचेन्द्रिय, ए सात्त जातिना जीव छे तेने एक पर्याप्ता अने बीजा अपर्याप्ता एम बे बे भेदे करतां चौद भेद जीवना थाय छे ॥

॥ बीजा अजीवतत्त्वना चौद बोल कहे छे. धर्मास्तिकायनो खंध, देश अने प्रदेशए त्रण भेद तथा अधर्मास्ति कायनो खंध, देश अने प्रदेशए त्रण भेद तथा आकाशास्तिकायनो खंध, देश अने प्रदेश ए त्रण भेद [illegible] कालद्रव्यनो एकज भेद एवं दशभेद अरूपी अजी

वना थया तेनी साथे पुज्ञलना खंध, देश, प्रदेश अने परमाणुं ए चार ज्ञेदरुपी छे ते मेलवतां चौद ज्ञेद थायछे॥

॥ पुण्य नव प्रकारे बंधायछे ते नव ज्ञेद लखिये छैये. अन्नपुन्ने, पाणपुन्ने, लेणपुणे, सेणपुणे, वछपुणे, मनपुणे, वयपुणे, कायपुणे अने नमस्कार पुण एवंनव॥

॥ पाप अढार प्रकारे बंधाय छे ते लखीये छैये, प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोज्ञ, राग, द्वेष, कलह, अज्याख्यान, पैशून्य, रति अरति, परपरिवाद, माया मृषावाद, मिथ्यात्वशल्य एवं अढार ज्ञेद थया ॥

॥ आश्रव वीश प्रकारे कहे छे. १ मिथ्यात्वाश्रव, २ अव्रताश्रव, ३ प्रमादाश्रव, ४ कषायाश्रव, ५ योगाश्रव, ६ हिंसा करवी ते प्राणातिपाताश्रव, ७ मृषावादाश्रव, ८ चोरी करवी ते अदत्तादानाश्रव, ९ कुशीलाश्रव, १० परिग्रह राखवुं ते परिग्रहाश्रव, ११ श्रोतइंद्रियने मोकली राखे ते श्रोत्रेंद्रियाश्रव, १२ चक्षुरिंद्रियने मोकली राखे ते चक्षुरिंद्रियाश्रव, १३ घ्राणेन्द्रियने मोकली राखे ते घ्राणेन्द्रियाश्रव, १४ रसेन्द्रियने मोकली राखे ते रसेन्द्रियाश्रव, १५ स्पर्शेंद्रियने मोकली राखे ते स्पर्शेंद्रियाश्रव, तेमज मनादिक त्र-

णने मोकलां राखे ते १६ मनाश्रव, १७ वचनाश्रव, अने १८ कायाश्रव, १९ भंभोपकरणलेवा मूकवानी अजयणा करे ते भंभोपकरणाश्रव, २० सुचिकुसंग सेवनकरे ते कुसंगाश्रव एवं वीश भेद थया ॥

॥ संवरना वीश भेद कहेछे. १ समकीत संवर, २ व्रतपच्चख्काण संवर, ३ अप्रमादसंवर, ४ अकषाय संवर, ५ अयोग संवर, ६ प्राणातिपात संवर, ७ मृषावाद न बोले ते संवर, ८ अदत्त न लीये ते संवर, ९ मैथुन न सेवे ते संवर, १० परिग्रह न राखे ते संवर, ११ श्रोतेन्द्रियने वश करे ते संवर, १२ चक्षुरिंद्रियने वश करे ते संवर, १३ घ्राणेन्द्रियने वश करे ते संवर १५ स्पर्शेंद्रियने वश करे ते संवर, १६ मन वश करे ते मन संवर, १७ वचन वश करे ते वचन संवर, १८ काय वश करे ते काय संवर, १९ भंभोपकरणनी अजयणा न करे ते संवर, २० सुचि कुसंग न सेवे ते संवर ॥

॥ निर्जराना बार भेद कहे छे, १ अनशान तप, २ ऊणोदरी तप, ३ वृत्तिसंक्षेप तप, ४ रसत्याग तप, ५ कायक्लेश तप, ६ संलीनता तप, ७ प्रायश्चित्त

तप, ८ विनय तप, ९ वैयावृत्त तप, १० सज्झाय तप, ११ ध्यान तप, १२ कायोत्सर्ग तप, एवं बार ॥

॥ बंध तत्त्वना चार भेद कहे छे, प्रकृति बंध, स्थिति बंध, अनुभाग बंध अने प्रदेश बंध. एवं चार थया ॥

॥ मोक्षतत्त्वना चार भेद कहेछे. एक ज्ञान, बीजो दर्शन, त्रीजो चारित्र अने चोथो तप. ए नव तत्त्वना जाणपणा आश्रयी एकसोने पन्नर बोल कह्या ॥

१५ पन्नरमे बोले द्रव्यात्मा, कषायात्मा, योगात्मा, उपयोगात्मा, ज्ञानात्मा, दर्शनात्मा, चारित्रात्मा अने वीर्यात्मा ए आठ प्रकारना आत्मा कह्या छे ॥

१६ शोलमे बोले १ असुरकुमार, २ नागकुमार, ३ सुवर्णकुमार, ४ विद्युत्कुमार, ५ अग्निकुमार, ६ दीपकुमार, ७ दिशाकुमार, ८ उदधिकुमार, ९ स्तनितकुमार, १० वायुकुमार ए दश भुवनपतिना दश दंडक तथा सात नारकीनो एक दंडक तथा पृथ्वी काय, अपकाय, तेउकाय, वाउकाय अने वनस्पति काय ए पांच थावरना पांच दंडक तथा बेन्द्रिय, तेन्द्रिय अने चउरिंद्रिय ए त्रण विकलेन्द्रियना त्रण दंडक एवं उगणीश थया अने वीशमुं तिर्यंच पंचेन्द्रियनुं, एकवीशमुं मनुष्यनुं, बावीशमुं व्यंतरिक देवोनुं, त्रे-

वीशमुं ज्योतिषी देवोनुं अने चोवीशमुं वैमानिक देवोनुं एवं चोवीश दंरूक जाणवां ॥

१७ सत्तरमे बोले कृष्ण लेश्या, नील लेश्या, कापोत लेश्या, जाणवी ॥

१८ अढारमे बोले मिथ्यादृष्टि, समिथ्या एटले मिश्रदृष्टी अने समकीतदृष्टि ए त्रण दृष्टि जाणवी॥

१९ उंगणीशमे बोले आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्म ध्यान अने शुक्लध्यान ए चार ध्यान जाणवां ॥

२० वीशमे बोले धर्मास्तिकायादि ७ द्रव्य ७ तेने त्रीश बोले उंलखीयें ते कहे ७. तिहां प्रथम धर्मास्ति काय. द्रव्य ते द्रव्यथकी. एकद्रव्य, क्षेत्र थकी चौदरा ज लोक प्रमाण, काल थकी आदि अंतरहित, जाव थकी अरूपी, गुणथकी जीवपुद्गलने चालवानुं सहाय आपनार, ए पांच बोले धर्मास्तिकायने उंलखीये ॥

अधर्मास्तिकाय पण द्रव्यथकी एक द्रव्य, क्षेत्रथकी चौदराज लोक प्रमाण, कालथकी अनादि नंत, जावथकी अरुपी अने गुणथकी स्थिर रहेना सहाय आपनार ए पांच बोले उंलखीये ॥

॥ आकाशास्तिकाय, द्रव्यथकी एक द्रव्य, क्षेत्रथ-

की लोकालोक प्रमाण, काल थकी अनादि अनंत, न्नावथकी अरूपी अने गुणथकी अवकाश आपनार ए पांच बोले उलखीये ॥

॥ कालद्रव्य द्रव्यथकी एक द्रव्य, क्षेत्रथकी अढीद्वीप प्रमाण, कालथकी अनादि अनंत, न्नावथकी अरूपी, गुणथकी वर्त्तना लक्षण ए पांच बोले उलखीये.

॥ पुद्गलास्तिकायद्रव्य,द्रव्यथकी अनंता द्रव्य, क्षेत्रथकी चौदराजलोकप्रमाण, कालथकी अनादिअनंत, न्नावथकी रूपी अने गुणथकी पूरण गलन, सरुण परुण, विध्वंसण लक्षण, ए पांच बोले उलखीये ॥

॥ जीवास्तिकायद्रव्य.द्रव्यथकी अनंताद्रव्य, खेत्रथकी चौदराजलोकप्रमाण.कालथकी अनादि अनंत, न्नाव थकी अरूपी अने गुणथकी चेतन गुण लक्षण, ए पाच बोले उलखीये.एवं सर्व मली त्रीश बोल थया ॥

२१ एकवीशमे बोले एक जीवराशि अने बीजी अजीवराशि ए बे राशि जाणवी ॥

२२ बावीशमे बोले श्रावकना बारव्रत कहेछे तिहां पहेले व्रते त्रसजीवने हणे नही अने स्थावर जीवनी मर्यादा करे, बीजे व्रते पांच मोटका जुठ बोले नही, त्रीजे व्रते मोटकी चोरी करे नही, चोथे व्रते परस्त्री

नो त्याग करे अने पोतानी स्त्रीनी मर्यादा करे, पांचमे व्रते परिग्रहनी मर्यादा करे, छठे व्रते दिशिनी मर्यादा करे,सातमे व्रते पन्नर कम्मादाननी मर्यादा करे, आठमे व्रते अनर्थ दंडनी मर्यादा करे, नवमे व्रते सामायिक करे,दशमे व्रते देशावकाशिक करे,अगीआरमे व्रते पोसह उपवास करे,बारमे व्रते साधु मुनिराजने सुजतो शुद्ध आहार पाणी आपे, एवं बार व्रत जाणवां ॥

॥ २३ त्रेवीशमे बोले साधुनां पांच महाव्रत कहेछे. साधुजी, मने वचने कायाये करी कोइ जीवने सर्वथा प्रकारे पोते हणे नही, हणावे नही अने हणताने रुडुं जाणे नही ते प्रथम प्राणातिपात विरमणव्रत जाणवुं.

॥ साधु महाराज, मने वचने कायाये करी सर्वथा प्रकारे पोते जुठुं बोले नही, बीजाने जुठुं बोलावे नही अने जुठुं बोलताने रुडुं जाणे नही ते बीजुं मृषावाद विरमण व्रत जाणवुं ॥

॥ साधुजी, मने वचने कायाये करी सर्वथा प्रकारे पोते चोरी करे नही, बीजा पासे करावे नही अने ता प्रत्ये अनुमोदे नही ते त्रीजुं अदत्तादान विरमणव्रत जाणवुं ॥

॥ साधुजी, मने वचने कायाये करी सर्वथा प्रकारे मैथुन पोते करे नही, बीजा पासे करावे नही अने करताने रुडुं जाणे नही ते चोथुं ब्रह्मचर्यव्रत ॥

॥ साधुजी, मने वचने कायाये करी सर्वथा पोते परिग्रह राखे नही, बीजाने रखावे नही, अने राखताने रूडुं जाणे नही ते पांचमु परिग्रह विरमण व्रत॥

॥ हवे ए पांच महाव्रतना भांगा कहे छे ॥

॥ पहेला प्राणातिपात विरमण व्रतना भांगा एक्याशी थाय ते कहे छे.

९ पृथ्वीकायने हणे नही, हणावे नही अने हणताने रुडुं जाणे नही तेना मन, वचन अने काया ए त्रण योगे करी नव भांगा थाय.

९ अपकायने हणे नही, हणावे नही अने हणताने रुडुं जाणे नही मन, वचन, कायाये करी.

९ तेउकायने हणे नही, हणावे नही अने हणताने रुडुं जाणे नही मन, वचन अने कायाये करी.

९ वायुकायने हणे नही, हणावे नही अने हणताने रुडुं जाणे नही मन वचन अने कायाये करी.

९ वनस्पतिकायने हणे नही, हणावे नही, हणताने रुडुं जाणे नही मन, वचन अने कायाये करी.

१ बे इंद्रियने हणे नही, हणावे नही अने हणताने रुडुं जाणे नही मन, वचन अने कायाये करी.
१ त्रेन्द्रियने हणे नही, हणावे नही अने हणताने रुडुं जाणे नही मन वचन अने कायाये करी.
१ चौरिंद्रियने हणे नही, हणावे नही अने हणताने रुडुं जाणे नही मन, वचन अने कायाये करी.
५ पंचेन्द्रियने हणे नही, हणावे नही अने हणताने रुडुं जाणे नही मन, वचन अने कायाये करी.

बीजा मृषावाद विरमण व्रतना भांगा छत्रीश थाय ते कहे छे.

१ क्रोधना आवेशथी असत्य बोले नही, बोलावे नही, बोलताने रुडुं जाणे नही मन, वचन कायाथी.
१ हास्यथी जुठुंबोले नही, बोलावे नही अने बोलताने रुडुं जाणे नही, वचन अने कायाये करी.
१ भयथी जुठुं बोले नही, बोलावे नही, बोलताने रुडुं जाणे नही मन, वचन अने कायाये करी.
[illegible]थी जुठुं बोले नही, बोलावे नही, बोलताने रुडुं जाणे नही मन वचन अने कायाये करी.

त्रीजा अदत्तादान विरमणव्रतना भांगा
चोपन थाय ते कहेछे,

१ अल्प चोरी करे नही, करावे नही अने करताने रुडुं जाणे नही मन, वचन अने कायाये करी.
१ घणी चोरी करे नही, करावे नही अने करताने रुडुं जाणे नही मन, वचन अने कायाये करी.
१ न्हानी चोरी करे नही, करावे नही अने करताने रुडुं जाणे नही मन, वचन अने कायाये करी.
१ महोटी चोरी करे नही, करावे नही, अने करताने रुडुं जाणे नही मन, वचन अने कायाये करी.
१ सचित वस्तुनी चोरी करे नही, करावे नही, करताने रुडुं जाणे नही मन, वचन, कायाये करी.
१ अचित वस्तुनी चोरी करे नही, करावे नही, करताने रुडुं जाणे नही मन, वचन, कायाये करी.

चोथा मैथुन विरमणव्रतना भांगा सत्तावीश
थाय ते कहे छे,

१ देवतानी स्त्रीने भोगवे नही, भोगवावे नही, भोगवताने रुडुं जाणे नही मन, वचन, कायाये करी
१ मनुष्यनी स्त्रीने भोगवेनही, भो[illegible] नही भोगवतानेरुडुं जाणेनही मन,

१ तिर्यंचनी स्त्रीने ज्ञोगवेनहीं, ज्ञोगवावे नही, अने ज्ञोगवताने रुडुं जाणे नही मन, वचन, कायाथी.

॥ पांचमा परिग्रह विरमणव्रतना ज्ञांगा चोपन थाय ते कहे ले.

१ अल्प परिग्रह राखे नही, रखावे नही, अने राखताने रुडुं जाणे नही मन, वचन, अने कायाये करी.

१ घणोपरिग्रह राखे नही, रखावेनही अने राखेताने रुडुं जाणे नही मन, वचन, अने कायाये करी.

१ न्हानो परिग्रह राखे नही, रखावे नही, अने राखताने रुडुं जाणे नही मन, वचन अने कायाथी.

१ महोटो परिग्रह राखे नही, रखावे नही, अने राखताने रुडुं जाणे नही मन, वचन, अने कायाथी.

१ सचित्त वस्तुनो परिग्रह राखे नही, रखावे नही अने राखताने रुडुं जाणेनही मन, वचन, अने कायाथी.

१ अचित्त वस्तुनो परिग्रह राखे नही, रखावेनही अने राखताने रुडुं जाणे नही मन, वचन, कायाथी.

॥ एम ए पांचे महाव्रतना मली २५२ ज्ञांगा थया.

२४ चोवीशमे बोले व्रतनाज्ञांगाउगणपच्चाशकहे ले.

१ प्रथम एक करणने एक योगथी नव ज्ञांगा था-

य ते कहे छे. १ मने करी करुं नही. २ वचने करी क-रुं नही, ३ कायाये करी करुं नही, ४ मने करी करा-वुं नही, ५, वचने करी करावुं नही, कायाये करी करावुं नही, ७ मने करी अनुमोदुं नही, ८ वचने करी अनुमोदुं नही, ९ कायाये करी अनुमोदुं नही.

॥ हवे एक करणने बे योगथी नव भांगा थाय ते कहे छे. १ मने करी वचने करी करुं नही, २ म-ने करी कायाये करी करुं नही, ३ वचने करी कायाये करी करुं नही, ४ मने करी वचने करी करावुं नही, ५ मने करी कायाये करी करावुं नही, ६ वचने करी कायाये करी करावुं नही. ७ मने करी वचने करी अनुमोदुंनही, ८ मने करी कायाये करी अनुमोदुं नही, ९ वचने करी कायाये करी अनुमोदुं नही ॥

॥ हवे एक करणने त्रण योगथी त्रण भांगा थाय ते कहे छे.१ मने वचने अने कायाये करी करुं नही, २ मने वचने अने कायाये करी करावुं नही, ३ मने, वचने अने कायाये करी अनुमोदुं नही ॥

॥ हवे बे करण अने एक योगथी नव भांगा थाय ते कहे छे. १ मनेकरी करुं नही, करावुं नही, २ वचने करी करुं नही करावुं नही, ३ कायाये करी करुं

नही करावुं नही, ४ मनेकरी करुं नही, अनुमोदुं नही ५ वचने करी करुं नही अनुमोदुं नही, ६ कायाये करी करुं नही अनुमोदुं नही, ७ मने करी करावुं नही अनुमोदुं नही, ८ वचने करी करावुं नही अनुमोदुं नही, ९ कायाये करी करावुं नही अनुमोदुं नही ॥

॥ हवे बे करण अने बे योगथी नवभांगा थाय ते कहे छे. १ करुं नही करावुं नही मने करी वचने करी, २ करुं नही करावुं नही मने करी कायाये करी, ३ करुं नही करावुं नही वचने करी कायाये करी, ४ करुं नही अनुमोदुं नही मने करी वचने करी, ५ करुं नही अनुमोदुं नही वचने करी कायाये करी, ७ करावुं नही अनुमोदुं नही मने करी वचने करी, ८ करावुं नही अनुमोदुं नही मने करी कायाये करी, ९ करावुं नही अनुमोदुं नही वचने करी कायाये करी ॥

॥ हवे बे करण अने त्रण योगथी भांगा त्रण थाय ते कहे छे. १ करुं नही करावुं नही मने करी वचने करी कायाये करी, २ करुं नही अनुमोदुं नही मने वचने करी कायाये करी, ३ करावुं नही ोदुं नही मने करी वचने करी कायाये करी ॥

॥ हवे त्रण करण अने एक योगथी त्रण भांगा थाय ते कहे छे. १ करुं नही करावुं नही अनुमोदुं नही मने करी, २ करुं नही करावुं नही अनुमोदुं नही वचने करी, ३ करुं नही करावुं नही अनुमोदुं नही कायाये करी ॥

हवे त्रण करण अने बे योगथी त्रण भांगा थाय ते कहे छे. १ करुं नही करावुं नही अनुमोदुं नही मनेकरी, वचनेकरी, २ करुं नही करावुं नही अनुमोदुं नही मने करी कायाये करी, ३ करुं नही करावुं नही अनुमोदुं नही वचने करी कायाये करी ॥

हवे त्रण करण अने त्रण योगथी एक भांगो थाय ते कहे छे. १ मने करी वचने करी कायाये करी करुं नही करावुं नही अनुमोदुं नही ॥

॥ सरवाळे एक करणने एक योगथी नव, एक करणने बे योगथी नव. एक करणने त्रणयोगथी त्रण तथा बे करणने एक योगथी नव. बे करणने बे योगथी नव, बे करणने त्रण योगथी त्रण तथा त्रण करणने एक योगथी त्रण, त्रण करणने बे योगथी त्रण अने त्रण करणने त्रण योगथी एक एवं ४९ भांगा थया॥

२५ पच्चीशमे बोले पांच चारित्रना नाम कहे छे. १

सामायिक चारित्र, बीजो छेदोपस्थापनीय चारित्र, त्रीजो परिहारविशुद्धि चारित्र, चोथोसूक्ष्म संपराय चारित्र अने पांचमो यथाख्यात चारित्र एवं पांच ॥

२६ छव्वीशमे बोले नैगमनय, संग्रहनय, व्यवहार नय, रूजुसूत्रनय, शब्दनय, समभिरूढनय अने एवं भूतनय ए सात नय जाणवा ॥

२७ सत्तावीशमे बोले नामनिक्षेप, स्थापनानि क्षेप, द्रव्यनिक्षेप अने भावनिक्षेप ए चार निक्षेपा जाणवा ॥

२८ अठ्ठावीशमे बोले उपशमसमकित, क्षायोपशमसमकित, क्षायिकसमकित, शास्वादनसमकित अने वेदक समकित ए पांच समकित जाणवा ॥

२९ उगणत्रीशमे बोले श्रृंगाररस, वीररस, करुणा रस, हास्यरस, रौद्ररस, भयानकरस, अद्भुतरस, बिभत्सरस अने शांतरस ए नवरस जाणवा ॥

३० त्रीशमे बोले १ वडनीपींपु, २ पींपलनीपींपु, ३ उंबरना फल, ४ पींपरीनीपींपु, ५ कठुंबरना फल, ६ मधु, ७ माखण, ८ मांस, ९ मदिरा, १० हिम, ११ विष ते अफिण, सोमल प्रमुख, १२ करहा ते रो- ना १३ सर्व जातनी काची माटी, १४ रात्रिभोजन,

५ बहुबीज फल, १६ अनंतकाय कंदमूल फल, १७ बोलानुं, अथाणुं, १८ काचा गोरसमां करेलां वडां, १९ वंगण रींगणा, २० जेनुं नाम न जाणता होइयें एवा अजाण्यां फलफूल, २१ तुछफल ते चणा बोर तथा कुअली वस्तु अत्यंत काचां फल, तथा पीलूना पीचु प्रमुख २२ चलित रस ते सडेलुं अन्नादिक जेनुं काल पूरो थयाथी स्वाद बदल्युं होय, रस चलित थइ गयुं होय ते. ए बावीश अनन्त्य वर्जावां तेना नाम जाणवां ॥

३१ एकत्रीशमे बोले एक द्रव्यानुयोग, बीजो गणितानुयोग. त्रीजो चरणकरणानुयोग अने चोथो धर्म कथानुयोग ए चार अनुयोग जाणवा ॥

३२ बत्रीशमे बोले एक देवतत्त्व, बीजो गुरुतत्त्व अने त्रीजो धर्मतत्त्व ए त्रण तत्त्व जाणवां ॥

३३ तेत्रीशमे बोले काल, स्वभाव, नियत, पूर्वकृतते कर्म अने पुरुषकार ते उद्यम ए पांचसमवायजाणवा.

३४ चोत्रीशमे बोले एक क्रियावादीना एकसो ऐंशी भेद, बीजा अक्रियावादीना चोराशी भेद, त्रीजा विनयवादीना बत्रीश भेद अने चोथा अज्ञान वादीना सडसठ भेद एरीते चारप्रकारना पाखंडीना छे

तेना सर्वमली त्रणशें ने त्रेसठ भेद श्रीसुयगमांग सुत्रथी जाणवा ॥

३५ पांत्रीशमे बोले श्रावकना एकवीश गुणकहो देखाडे छे. १ क्षुद्रमति वालो न होय पण गंभीर होय, २ पांचेंद्रि स्पष्ट होय रूपवंत होय एटले अं गोपांग संपूरण होय, ३ सौम्यप्रकृति वालो होय, स्वभावे अपाप कर्मि होय. ४ सर्वदा सदाचारी होय माटे सर्व लोकने वल्लभ होय, प्रशंसा करवा योग्य होय, ५ संक्लिष्ट परिणामथी रहित होय, क्रूर चित्त वालो न होय, ६ इह लोक परलोकना अपायथी एटले कष्टथी बीहितो रहे तथा अपयशथी बीहितो रहे, ७ अशठहोय परने ठगे नही, ८ दाक्षिण्यता वालो होय परनी प्रार्थना भंग करे नही, ए स्वकुला दिकनो लज्जावंत होय अकार्य वर्जक होय, १० दया वंत होय, ११ सौम्यदृष्टि वालो होय, १२ गुणी जी- वोनो पक्षपाति होय, १३ भलि धर्म कथानो उपदेश करनार होय, १४ सुशीलादि एवा अनुकुल परिवार युक्त होय, १५ लंबाविचार वालो दीर्घदर्शि होय, १३ पात रहित पणे गुण दोष विशेषनो जाण होय, वृद्ध पुरुषो जे परिणत मतिवाला तेने सेवनारो

तेनी अनुजाइयें चालनारो होय, १८ गुणाधिक पुरुषनो विनय करनारो होय, १९ कर्या गुणनो जाण होय, २० निर्लोभी थको पोतानी मेले परोपकार करे, २१ लब्धलक्ष ते धर्मानुष्ठान व्यवहारनो लक्ष जेने प्राप्त थयो होय. ए एकवीश गुण जेमां होय ते प्राणी धर्मरूपरत्न पामवानो योग्यतावंत कहेवाय ए एकवीश गुण श्रावकना जाणवा ॥ इति पांत्रीशबोल समाप्त ॥

॥ अथ शीखामणना बोल ॥

१ कोइपण शुभकार्य करतां विलंब न करवो.
२ मतलब विना लवारो न करवो.
३ ज्ञानी थइने गर्व करवो नही.
४ बनता सुधी क्षमा अवश्य धारण करवी.
५ घरनुं गुह्य कोइने कहेवुं नही.
६ स्त्री तथा पुत्रनी कुवात कोइने कहेवी नही.
७ मित्रथी कांइपण अंतर राखवो नही.
८ कुमित्रनो विश्वास न करवो.
९ प्रेम राखनारी स्त्रीनो पण विश्वास न करवो.
१० कोइपण कार्य करवुं ते विचारीने करवुं.
११ मात, पिता, गुरु तथा महोटा पुरुषनो विनय करवो.
१२ स्त्रीने गुह्यनी वात कहेवी नही.

१३ पेट भरायाथी भोजननो संतोष न करवो.
१४ विद्या भणवामां संतोष न करवो.
१५ दान देतां अकलावुं नही.
१६ तपश्या करवामां पाछुं हठवुं नही.
१७ ग्रहण करेली प्रतिज्ञा भंग करवी नही.
१८ अन्यायथी द्रव्य उपार्जन करवुं नही.
१९ शरीरनुं बल विचार्या विना युद्ध करवुं नही.
२० माठा कार्यथी निवर्त्तवुं.
२१ दुःखना समये धैर्य तजवुं नही.
२२ बगलानी पेरे इंद्रियो गोपवी राखवी.
२३ कुकडानी पेठे प्रभाते सहुथी वहेलुं उठवुं.
२४ अंगथी प्रमाद दूर करवो.
२५ निद्रा चेततां करवी.
२६ चिंतवेलुं कार्य पार पड्या विना कोइनेकहेवुंनही.
२७ सासरेचतुराइधारण करवी अने मुरखाइ तजवी
२८ गुण लेवामां प्रयत्न करवो.
२९ नीच नरथी पण उत्तम विद्या लेवी.
३० सरखा साथे प्रीति करवी.
३१ क्लेशने स्थानके मौनपणुं धारण करवुं.
३२ मदोटा साथे वेर करवुं नही.

३३ लेवडदेवडमां, भोजनमां, विद्याभणवामां, व्यापारमां अने वैद्य आगल लाज करवी नही-

३४ क्लेशस्थानके उभुं रहेवुं नही.

३५ अग्नि, गुरु, ब्राह्मण, गाय, कुमारी अने शास्त्रना पुस्तक एटलाने पग लगाडवा नही.

३६ घी, तेल, दहीं, दूध, प्रमुख उघाडां मूकवां नही.

३७ वैद्य, अग्निहोत्री, राजा, नदी, व्यापारी वाणीयो ए पांच ज्यां न होय त्यां वसवुं नही.

३८ नीचथी विवाह करवो नही.

३९ जे थकी जीवने जोखम थाय ते धनपण वर्जवुं.

४० शत्रुनी उपर पण निर्दय थवुं नही.

४१ मूर्ख, कायर, अभिमानी, अन्यायी, अने दुष्ट एटलाने स्वामी करवा नही.

४२ मूर्खने हितोपदेश देवो नही.

४३ परस्त्रीने सर्वदा वर्जवी.

४४ इंद्रियो सर्वथा वश राखवी.

४५ मूर्ख मित्र करवो नही.

४६ लोभीने द्रव्यथी वश करवो.

४७ छती शक्तिये परनी आशा भंग करवी नही.

४८ गुणविना मात्र आडंबरथी रीझवुं नही.

४९ राजा रीझे तो पण विश्वास करवो नही.
५० एक अक्षर शिखवनारने पण गुरु करी मानवो.
५१ पाणी गलीने तथा जोइने पीवुं.
५२ प्राणांते पण सत्य बोलवुं वर्जवुं नही.
५३ पोताना अवगुण शोधी काढावा.
५४ राजानी स्त्री, गुरुनी स्त्री, मित्रनी स्त्री, सासु अने पोतानी माता ए पांच माता जाणवी.
५५ कार्य तथा सत्कार विना कोइने घेर जावुं नही.
५६ वचननुं दारिद्र राखवुंज नही.
५७ लेखण,पुस्तक अने स्त्री ए त्रणकोइनेआपवांनही
५८ आवक जोइने खरच करवो.
५९ हरएक विद्या मुखपाठे राखवी.
६० स्वामी प्रसन्न थये गर्वित थवुं नही.
६१ करियाणुं जोया वगर हाथो मेलववो नही.
६२ शस्त्र बांधनार तथा ब्राह्मण प्रमुखने धीरवुं नही.
६३ नट, विटलेल, वेश्या,जुगारीने उधार आपवुं नही
६४ गुप्त धनदेवुंतोहोशीयारीथी पक्काबंदोबस्तथीदेवुं
६५ बे चार साक्षी राख्याविना धन आपवुं नही.
६६ ऊधार लावेलुं धन मुदत पहेलांज आपवुं.
६७ घरमां पैसा छतां देवुं करवुं नही.

६८ देवुं होय तो ते आपवाना उद्यममां रहेवुं.
६९ प्रीतिवंत साथे प्राये लेवड देवड करवी नही.
७० चोरेली वस्तु जो मफत मले तोपण लेवी नही.
७१ दुराचारीने भागीदार करवो नही.
७२ लांघण करवी नही
७३ खात्रीदारने किलीदार करवो.
७४ आप्युं लीधुं होय ते लखवामां आलश न करवो.
७५ नवनवा गुमास्ता मेहेता (वाणोतर) करवा नही
७६ न्यातमां नम्रता राखवी.
७७ स्त्रीने मिष्ट वचनथी बोलाववी.
७८ शत्रुने पेटमां पेशी वश करवो.
७९ मित्र पासे पण शाक्षी विना थापण मूकवी नही.
८० एकाद बे महोटानी ओलखाण अवश्य करवी.
८१ बनता सुधी कोइनी साक्षी भरवी नही.
८२ परदेशमां केफी वस्तु सेवन करवी नही.
८३ उत्सव मूकी, गुरु अने पितानो अपमान करी, गोकरांने रोवरावी, हत्या करी, तैयार थयेलुं भोजन निभंछी, रुदन सांभली, मैथुन सेवी, वामीट करी, समीप आवेलो पर्व अवगणी, दू-

धनो भोजन करी एटला वानां करी आत्महितेच्छुये परदेश जवुं नही.

८४ जे घरमां कोइ माणस न होय ते घरमां न जवुं.

८५ कारण विना पिताना द्रव्यनी आशा न करवी.

८६ परदेशमां आडंबर धारण करवो.

८७ कोइनी वात कोइने केहेवी नही.

८८ माता पितानी आज्ञा लोपवी नही.

८९ माता पितानी सेवा चाकरी मन राखी करवी.

९० गुरु अने माता पिताना दररोज पग दाबवा.

९१ माता पिता आगल जुठुं बोलवुं नही,

९२ माता पिताना धर्मादिना मनोरथ पूरण करवा.

९३ महोटा भाइने पिता सरिखो जाणवो

९४ भाइनी दुर्दशा दूर करवी, कुमार्गथी निवारवुं.

९५ रोगमां, दुष्कालमां, शत्रुना भयमां, अने राज्य द्वारमां एटले स्थानके भाइनी सहायता करवी.

९६ कोइपण उत्तम कार्यमां भाइने भुलवो नही.

९७ नाटककौतुक घणा जनोमांस्त्रीने जोवादेवानही

९८ स्त्रीपासे सारी रीते सेवा कराववी.

९९ स्त्रीने रात्रे बाहेर जवा देवी नही.

१०० स्त्री रीसाइ होय तो तरत मनावी लेवी.

१०१ स्त्रीने घरना काममां द्रव्य आपी वर्त्तावची.
१०२ उत्सवना दिवसे सगांसबंधीने भुली जवां नही.
१०३ दुःखपामता एवा सगांसबंधीने सहाय करवुं.
१०४ सगा साथे कदापि विरोध करवो नही.
१०५ जे घरमां एकली स्त्री होय ते घरमां जवुं नही.
१०६ धर्मना काममां सगाउने जोरूवा.
१०७ बगासुं खातां, छींकतां उरूकारखातां अने हसतां एटले ठेकाणे मुख दाबवुं नही.
१०८ उंधुं तथा चितुं सुवुं नही.
१०९ जमता छींक आवे तो तरत पाणी पीवुं.
११० उभे उभे पीसाब करवो नही.
१११ उभे उभे पाणी पीवुं नही,
११२ सुती वखते छाती पर हाथ राखवो नही.
११३ कन्यासाराकुलमांआपवी, दुखीकुलमांनआपवी.
११४ कन्यानुं द्रव्य लेवुं नही.
११५ कन्यानो वर कन्याना वयथी वधारे वयनो करवो.
११६ रोगी, वृद्ध, मूर्ख, दारिद्री, वैरागी, क्रोधी अने न्हानी वयनो एटलाने कन्या आपवी नही.
११७ महोटो पुरुष घेर आवे तो उभा थइ सन्मान देवुं.
११८ दोस्तदारी मित्राचारी, पंडितो साथे राखवी.

११९ नवांनवां शास्त्रवांचवानो अभ्यास जाथु करवो.
१२० कोइपण ग्रंथ ज्ञणतां अधूरो मूकवो नही.
१२१ पोताना मुखथी पोतानी प्रशंसा करवी नही.
१२२ छता पराक्रमे निरुद्यमी थवुं नही,
१२३ कपटीना आडंबरनो विश्वास न करवो.
१२४ गइ वस्तुनो शोक न करवो.
१२५ शत्रु होय तेना पण मरण समये समशाने जावुं.
१२६ शूरवीर थइने निर्बलने दुःख देवुं नही.
१२७ अति कष्टे पण आत्मघात करवो नही.
१२८ हास्य करतां कोइनुं मर्म प्रकाशवुं नही.
१२९ हास्य करता काइ उपर क्रोध करवो नही.
१३० बे जण विचार करता होय त्यां जवुं नही.
१३१ पंच नाकारो करे ते काम करवुं नही.
१३२ माठुं काम करी हर्ष पामवुं नही.
१३३ तपश्या करी क्षमा धारण करवी.
१३४ ज्ञणेलुं शास्त्र नित्य प्रत्ये संज्ञारता रहेवुं.
१३५ पुरुषे रात्रिये दर्पण जोवुं नही.
१३६ सूवुं,मैथुन,निद्रा,आहार ए संध्या समये वर्जवां.
१३७ रोटलो आपवो पण ञटलो आपवो नही.
सर्वनी साथे ढलखाण पीछाण राखवी.

१३९ भोजन कर्याने एक प्रहर पूरण न थयो होय एटलामा फरी भोजन करवुं नही तेमज भाजन कर्या पछी बे प्रहर थाय के फरी जमी लेवुं. परंतु बे प्रहरथी उपरांत भूख्युं रहेवुं नही.

१४० स्त्रीनां वखाण तेना मरण पछी करवां.

१४१ राजा, देव, अनेगुरुनी पासे खालीहाथे जवुं नही

१४२ निर्लज स्त्री साथे हास्य न करवुं.

१४३ शुभ कार्यमां काल विलंब न करवो.

१४४ तरुकेथी आवी तरत पाणी पीवुं नही.

१४५ अर्द्ध रात्रे उंचस्वरे गुह्यनी वातो कहवी नही.

१४६ भोजननी वच्चे अने अंतमां जल पीवुं.

१४७ अजीरण थाय तो एक बे टंक भोजन वर्जवुं.

१४८ हरषना समयमां शोकनी वात्त तजवी.

१४९ कोइ क्रोधना आवेशथी निष्टुरवचन आपणने आवी कहे तो पण न्याय मार्ग मूकवो नही.

१५० माता, पिता, गुरु, शेठ, स्वामी, अने राजा एटलाना अवगुण बोलवा नही.

१५१ मूर्ख, दुष्ट, अनाचारी, मलीन, धर्मनी निंदा करनारो, कुशीलीयो, लोभी अने चोर एटला नो संग क्यारे पण करवो नही,

१५२ अजाण्या माणसनी कीर्ति करवी नही.
१५३ अजाण्या माणसने पोताना घरमां राखवुं नही.
१५४ अजाण्या कुल साथे सगाइ करवी नही.
१५५ अजाण्या माणसने चाकर राखवो नही
१५६ पोताथी म्होटा माणस उपर कोप न करवो.
१५७ म्होटा माणस साथे क्लेश करवो नही.
१५८ गुणवान माणस साथे वाद न करवो.
१५९ दारिद्र्य आवे आगली कमाइनी इच्छा राखे ते मूर्ख.
१६० पोताना गुणनां वखाण करे, ते मूर्ख.
१६१ माथे देवुं करीने धर्म करे, ते मूर्ख.
१६२ उधारे धन आपीने मागे नही, ते मुर्ख.
१६३ सज्जन साथे विरोध करे अने पारका लोक साथे प्रीति करे ते मुर्ख जाणवो.
१६४ न्याय मार्गे धन उपार्जन करवुं.
१६५ देश विरुद्ध कार्य न करवुं.
१६६ राजाना वेरीनी संगत न करवी.
१६७ घणा माणस साथे विरोध न करवो.
१६८ भला पडोसीनी पासे रहेवुं.
१६९ पोतानो धर्म मूकवो नही.
पोताने आशरे रह्यो होय तेनुं हित करवुं.

१७१ खोटा लेख लखवा नही.

१७२ देव गुरुने विषे भक्ति राखवी.

१७३ दीन अने अतिथिनी बनती सेवा करवी.

१७४ जे भाग्यमां हशे ते मलशे एवो भरोसो राखीने उद्यम मूकी आपवो नही.

१७५ चोरीनी वस्तु लेवी नही.

१७६ सारी नरमी वस्तु भली करी वेचवी नही,

१७७ आपदानुं वर्जन करवा राजनो आश्रय लेवो.

१७८ तपस्वीने, कविने, वैद्यने, मर्मना जाणने, रसोइ करनारने, मंत्रवादीने अने पोताना पूजनीकने एटलाने कोपाववा नही.

१७९ नीचनी सेवा आचरवी नही.

१८० विश्वासघात करवो नही.

१८१ सर्व वस्तुनो नाश थतो होय तोपण पोतानी वाचा अवश्य पालवी.

१८२ धर्मशास्त्रना जाण पासे वेसवुं.

१८३ कोइनी निंदा करवी नही.

१८४ मार्गे चालतां तंबोल न खावां.

१८५ आखी सोपारी दांते करी भांगवी नही.

१८६ पोते वात कही पोतेज हसे, जेम तेम

पंचपदानु पूर्वि रु. ०-१-०

लोक परलोक विरुद्धकाम करे ए मूर्खनां चिन्ह छे

१८७ उपद्रवना स्थानके रहेवुं नही.

१८८ आवक जोइने खरच करवुं.

१८९ द्रव्यानुसारे वस्त्रादिक पहेरवां.

१९० लोक निंदा करे ते काम करवुं नही.

१९१ खोटा तोलां, खोटा मापां राखवां नही.

१९२ घरेणां राख्याविना व्याजे नाणुं आपवुं नही.

समाप्त.

नित्य नियमरी पोथी. आवृत्ति चौदमी.

आ पोथीमां आनुपूर्वि, आनानुपूर्वि, बार भावना, शियलनी नववाडो, शियलनुं चोढालीयुं, नानी तथा मोटी साधु वंदणा, शिखामणना अठावीश बोल, समकितना ६७ बोल. श्रावकने चिंतववाना त्रण मनोर्थ सज्झायो तथा वैरागी पदो विगेरे घणा विषयो आपेला छे, आ पोथीना उपयोगीपणा विषे आ पोथीनी चौदमी आवृत्ति छपाइ बहार पडी छे तेज तेनी साबीती छे जोइए तेमणे मंगाववी. किम्मत बे आना. टपाल खर्च ०-०-६

ली. बालाभाइ छगनलाल शाह.

ठे. कीकाभट्टनी पोळ—अमदावाद.

※ श्री वीतरागायनमः ※

॥ अथ ॥

मध्यस्थ बोलकी हुंडी

॥ प्रारंभ ॥

(मुनि श्रीचतुरभुजजी महाराज कृत)

मङ्गलम्

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्रमहिताः सिद्धाश्च सिद्धिस्थिता,
आचार्या जिनशासनोन्नति कराः पूज्या उपाध्यायकाः ।
श्री सिद्धान्त सुपाठका मुनिवरा रत्नत्रयाराधकाः,
पञ्चैते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥ १ ॥

केवलज्ञानी को सदा, वंदु वेकर जोड ।
गुरुमुखसे धारण करो, अपनी हठको छोड ॥ २ ॥
जिन वचन तहमेव सत्य, समभाव नहीं ताण ।
जतनासे वाचो सदी, एहि प्रभुकी वाण ॥ २ ॥

संवत १९२१ भीषणजी रे चोथे पाट जीतमलजी रा टोला मांहि सु ऋषि चतुरभुज जी न्यारा हुवा, बोल छोड्या ते सूत्रकी साख

देई सक्षेप मात्र लिखते हैं, हलुकर्मी जीव होसी ते सुण सुण ने हर्ष पाम्सी, त्यांने न्यायमार्ग वताया शुद्धसाधां ने उत्तम जाणसी, कुगुरुने छोडने सद्गुरुने आदरसी ।

अथ प्रथम बोल ।

साधुने साध्वीने आचार्यने उपाध्यायने कपडां धोवणां नही, केईक कहे साधुसाध्वीने तो कपडां धोवणां नही, पिण आचार्यने उपाध्यायने धोवणा, इसी थाप करे छे, दोष सरधे नहीं तेहनो उत्तर—

"आचारांग सूत्रस्कंध दूजे, अध्ययने पांचमें, उद्देशे दूजे।" साधु साध्वीयांने कपडां धोवणां रंगणा वरज्या छे। तथा सुयगडांग सूत्रस्कंध १ अध्ययन ७में गाथा २१में शोभा निमित्ते कपडां धोवणा १, स्नान करना २, असणादिक रात्रीवासी राखना ३, ए तीन बोल सेवे तिणने सजमसुं दूर कह्यां। तथा निसीथ उद्देसे १५ में शोभा निमित्ते कपडादिक धोयां चौमासी प्रायच्छित कह्यो छे। इत्यादिक ठाम ठाम सूत्रमें भगवान साधु साध्वीने कपडां धोवणां वरज्या छे। "आचार्य्य-साधु साध्वी मांहि आय गया" साधु-रो आचार आचार्य रो आचार एकहीज छै। ते भणी आचार्यने अतिसयरे वास्ते कपडां धोवणां नहीं, बाकी तेहनो विस्तार तो बडी हुंडी में छे, तेहने देखने निर्णय करवो। तथा केईक ठाणांगसूत्र अर्थमें तथा टीकामें आचार्यना अतिसय रे वास्ते कपड़ा धोवणा इम कह्यो, ते पाठमें तो नहीं छै, अर्थ टीका री वात तो सूत्रसुं मीले ते

प्रमाण छे, सूत्रसुं मीले नहीं ते.प्रमाण नहीं। अर्थ टीका में तो घणी घातां विरुद्ध कही छै ते।वडी हुडी में छै ते जोय लेनी ॥ इति प्रथम बोल समाप्तम् ॥

अथ दूजो बोल ;—

साधुने महोच्छव रा नाम लेई वायां भाया ने वाधा कराय लोकांने भेला करणा नहीं,महोच्छव करणा पिण नहीं,केई करे छे तेहनो उत्तर—निसीथसूत्र उद्देशे १२ में, साधु साध्वी महोच्छव देखवा निमित्ते मन धारे, मन धारता ने भलो जाणे तो चौमासी प्रायच्छित्त आवे। तथा दशवैकालिकमें अध्ययन ६ में उद्देशे ४थे जश. महिमा रे वास्ते तपस्या करणी नहीं इम कह्यो छै। तथा उत्तराध्ययन आचारांग सूयगडाग आदि ठाम ठाम सूत्रमें साधुने महिमा पूजा मन करके वंछनी वरजी छै,ते भणी साधुने महोच्छव करणा नहीं, साधु रे तो सदा ही महोच्छव छै, साधुने कोई निंदे कोई वन्दे तो सम भाव राखना वाकी विस्तार ता वडी हुडो में छै ॥ इति २ बोल ॥

अथ तीजो बोल ,—

साधु साध्वीने वस्त्र मर्यादा उपरान्त राखना नही, केईक आ-चार्य रे वास्ते मर्यादा उपरात वस्त्र राखे, दोष गिणे नहीं तेहनो उत्तर तीन पछेवडी गिणतीमें उपरांत अधिक राखे तो चौमासी प्रायच्छित्त आवे। साख सूत्र निसीथे उद्देशे १में। तथा उपगरण री मरजादा

री विगत तो 'आचारांग' 'प्रश्नव्याकरण' आदि घणां सूत्र मांहें छे उस प्रमाणे राखना। साधुरो आचार्यरो एक प्रमाण कह्यो छे, पिण आचार्यरो प्रमाण शास्त्रमें कठेइ न्यारो चाल्यो नही, ते भणी साधुने दोढमास उपरांत वस्त्र अधिक राखे तो प्राच्छित आवे, तो आचार्यने तथा आचार्यरे वास्ते साधु दोढमास उपरांत वस्त्र राखे तो प्रायच्छित किम नहीं आवे! ॥ इति ३ बोल ॥

अथ चोथो बोल :—

साधु साध्वीने एक ओघो, एक पूंजणीसुं अधिक राखना नहीं, तथा दोढमास उपरांत पिण अधिक राखना नहीं केई आचार्यरे वास्ते ओघा और पूंजणी अधिक राख मेले छे, तथा दोढमास उपरांत पिण राखे छे, राखवारी थाप करे छे तेहनो उत्तर—

प्रमाण थी अधिक रजोहरण दोढमास उपरांत राखे तो मासीक प्रायच्छित आवे, निसीथसूत्र उद्देशे ५ में इम कह्यो छे। ते भणी साधुरो प्रमाण आचार्यरो प्रमाण एक छे। साधुने दोढमास उपरान्त ओघो पूंजणी अधिका न राखना, तो आचार्यने आचार्यरे वास्ते साधु साध्वीने ओघा पूंजणी दोढ मास उपरांत किम राखना ॥ इति ४ बोल ॥

अथ पांचमा बोल ;—

साधु साध्वीने प्रमाणसुं अधिक पात्रा राखना नहीं। केई आचार्यरे वास्ते प्रमाणसे अधिक पात्रा राखे छे तथा राखवारी थाप करे छै तेहनो उत्तर--

तीन पात्रा उपरांत अधिक पात्रा राखे तो चौमासी प्रायच्छित्त आवे इम कह्यो, साख सूत्र निसीथ उद्देशे १६ में, अठे साधु साध्वी रो आचार्यरो प्रमाण एक कह्यो छे ते भणी साधु साध्वी आचार्यने जन दीठ तीन पात्रा राखना, अधिका न राखना। मात्री (पड़गो) न्यारो छे ते वृहत्कल्पमें कह्यो छे, पिण सिंघारे दीठ एक राखनो, नेहमें आहारपाणी नहीं भोगनो, तथा पात्रा नवा जाचे अथवा साधु साध्वी चल जावे तेहना पात्रा रह जावे जद दोढ मास उपरांत साधु साध्वीने राखना नहीं, तो आचार्यने तथा आचार्यरे वास्ते साधुसाध्वी ने किम राखना ! । सूत्रमें तो कठेइ आचार्यरे वास्ते दोढ मास उपरान्त पात्रा राखना कह्यां नहीं ॥ ५ ॥ इति ५ बोल ॥

अथ छट्ठो बोल ;—

चरमलीरे वास्ते वस्त्र राखे तो चरमली बांधवाने काम आवे जीसा राखना, पिण चरमलीरा कल्पमें पला विछावणा आदि करना नहीं केई करे छे तेहनो उत्तर—

चरमली साधुसाध्वीने राखनी कही। वृहत्कल्प उद्देशे १ में चरमली राखनो कही छे ते सिंघारे दीठ एक चरमली राखनी ते आहार करे जद आडि बांधवाने ते चरमली कही, पिण ते ओढणी तथा पहेरणी नहीं पला प्रमुख करना नहीं। पला विछावणा रो कल्प न्यारो प्रश्नव्याकरण आदि सूत्रमें कह्यो तिण प्रमाणे राखना। तथा चरमली बांधवाने काम आवे इसो विछावण पलादिक करे तो अटकाव दीसे नहीं ॥ ६ ॥ इति छट्ठो बोल ॥

अथ सातमो बोल ;--

ग्रामादिक ने विषे शेष काल एक मास रहें वो कल्पे, साध्वीने शेषकाल दो मास रहे वो कल्पे। वृहत्कल्प उद्देशे १ में। तथा शीतकाले उष्णकाले एक मास रहै, वर्षाकाले चारमास रहै। ए कल्प मर्यादा उलंघी ने रहे तो काल अतिक्रान्त दोष लागे। साख सूत्र आचाराङ्गसूत्रस्कंध २, अध्ययन २, उद्देश २ में। तथा चौमोसा उतर्या पडिवा विहार करणो, आचारांगसूत्रस्कंध २ अध्ययन ३ उद्देश १। अठे साधुने एकमास उपरांत रहेणो नही, चोमासो उतर्या पछे पडिवा विहार करनो पिण सुखे समाधे रहेणो नही। केई कहे दीक्षा लेवे तो तेहने अर्थे पन्नरह दिन रहे तो दोष नहीं इसी परूपणा करे छे पिण सूत्रमें तो कठेइ दिक्षा लेवे तेहने वास्ते पनरह दिन अधिको रहेणो भगवान् कह्यो नही। सूत्रमें वर्षाकाले चौमासो शेषेकाल ए नवकल्प प्रमाण थकी अधिको रहे रहिताने भलो जाणे तो मासिक प्रायच्छित आवे, साख सूत्र निसीथ उद्देसे २ अथ अठे कल्प उपरांत एकरात्रि रहे तिणने मासिक प्रायच्छित आवे, तो कल्प उपरांत १५ दिन रहेवारी थाप करे दोष श्रद्धे नही तिणरा प्रायच्छि कांई कहेंणो! घणो विस्तार तो बड़ी हुंडी में छे ते जोय लेणो॥ इति ७ बोल॥

अथ आठमो बोल ;—

गाम नगरादिकने विषे साधु शेषेकाल एकमास रहे, चौमासे में चार मास रहे, गोचरी भेल संभेल करे; गाम नगर कोट प्रमुख

बाहिर घर हुवे वहां गौचरीने जावे, गाम नगर मांहि पिण गौचरी करे। इम भेल संभेल गौचरी करे तो चौमासो उतर्यां पछे, तथा शेषेकाल मास खमण रह्यां पछे गाम नगर कोट वारे रहे वो नहीं केई रहे छे तेहनो उत्तर—वृहत्कल्प उद्देशे १ में। साधुने ग्रामादिक ने विषे एकमास रहेणो कल्पे, ग्रामादिक मांहे गौचरी करणी कल्पे, साधु ने, ग्रामादिक कोट प्रमुख बाहिर मासखमण रहेणो, गौचरी पिण बाहिर करनी। इमहीज साध्वीयांने चार मास रहे वो। दोय मास ग्रामादिक मांहे, दोय-मास ग्रामादिक बाहिर, वृहत्कल्पसूत्रमें इम कह्यो छे ते प्रमाणे रयां दोष नहीं छे। केई गौचरी तो भेल संभेल करे ने ग्रामादिक बाहिर रहे छे ने इम कहे—"एक वडे साधु साथे ग्रामादिक मांहे रयां जीसमें वडे साधु वहार रो आहारपाणी भोगवे नहीं, जव वहार रहे तव एक वडो साधु मांहे लो आहार पाणी भोगवे नहीं" इम कहे छे, ने रहेवारी थाप करे छे। पिण भगवाने तो सूत्रमें इम कह्यो नही। भगवान तो सूत्रमें इम कह्यो कि मांहे रहै तो मांहै गौचरी करणी, वहार रहै जव वहार गौचरी करनी। भेल संभेल करनी नहीं, मास खमण उपरान्त रहेणो नहीं ॥ ८ ॥ इति ८ वोल ॥

अथ ९ मा वोल ;—

नित्यपिंड दूजा साधु साध्वीरो भी लायो आहारपाणी सुखे समाधे भोगवणो नहीं केई भोगवे छे। तेहनो उत्तर—नित्य

असणादिक आहार एकण घररो भोगवे तो अणाचारी कह्यां, साख सूत्र दशवैकालिक अध्ययन ३। तथा नित्यपिंड एकण घररो आहार भोगवे त्यांने छकायनी हिंसा लागे। द्रव्यलिङ्गी जति होय। साख सूत्र दशवैकालिक अध्ययन ६ गाथा ४९ मी। तथा एक घररो आहार लेवे भोगवे तो मनुष्यभव छोड़ी दुर्गतिमें जावे, साख सूत्र उत्तराध्ययन का अध्ययन २० गाथा ४७ मी। तथा नित्यरो नित्य असणादिक आहार एकण घरनो भोगवे तो मासिक प्रायच्छित आवे, साख सूत्र निसीथ उद्देशे २ जे। इत्यादिक ठाम ठाम सूत्रमें साधुने नित्यपिंड आहार भोगवणा वरजा छे, तेभणी साधुने असणादिक ४ आहार सुखे समाधे भोगवणा नहीं। केई पहेले दिन तो आप आहारादिक भोगव्यो पिछै दूजे दिन तिण-हीज घरनो परगामसुं साधु आर्या आया त्यांकनासुं आहारादिक मंगाई भोगवे छे। तथा आहारादिकरे वास्ते गाम वाहिर तथा परगाम साधु साध्वीयां ने भेजे छे दूजे दिन बूलाई त्यांकनासुं नित्यपिंड आहारादि मंगाई भोगवे छे, भोगववारी थाप पिण करे छे दोष श्रद्धे नही। भगवाने तो एक दिन नित्यपिंड भोगवे तिणने मासिक प्रायच्छित कह्यो छे तो सदाई नित्यपिंड भोगववारी थाप करे तिणरा प्रायच्छितरो कांई कहेनो! विस्तार तो बड़ी हुंडीमें छै॥ इति ९ बोल॥

अथ दशमा बोल ;—

पहेले दिन जिसकी हवेलीमें असणादिक वहेरे, दूजे दिन उस-

का हो हवेली बाहिर, दिवानखाना, दुकान, नोरा आदि गाम मांहे कहीं भी हो वहां नहीं वहेरना, केई वहरे छै तेहनो उत्तर--मास-खमण कोट मांहि रहेवो कल्पे, तथा कोट बाहिर मासखमण रहेवो कल्पे। एवं दो मास साधुने रहेवो कल्पे। कोट मांहे रहे जब कोट मांहि गोचरी करवी कल्पे, कोट बाहिर रहे जब कोट बाहिर गोचरी करवी साख सूत्र 'बृहत्कल्प उद्देशे १ ले' इम कह्यो। ते भणी। कोट मांहे रहे जब मासखमण हुवा पछै कोट मांहि कहीं भी रहेणो नहीं। कोट मांहे एक क्षेत्र कह्यो छै। रहे-वारे ठिकाने एक मास रो कल्प छे। वहेरवारे ठिकाने एक दिन रो कल्प छै। बुद्धिमान होय ते विचारी जोवो॥ इति १० बोल॥

अथ इग्यारवाँ बोल :—

साधुने टुणा जत्रमंत्रादिक करना नहीं केई करेछै तेहनो उत्तर-साधुने सर्पादिक डक देवे उसी समय गृहस्थ ने भी सर्पादिक काटे यहा झाडो देवाने (सर्पादि उतारवाने) आवे मंत्रादिक गुणे वहां साधुने पगादिक राखना कल्पे इम कह्यो, साख—'व्यवहार सूत्र उद्देशे सातवें'। तथा साधु वशीकरण डोरा जंत्रमंत्रादिक करे, करताने भलो जाणे तो मासिक प्रायच्छित आवे, साख-'निसीथ सूत्र उद्देशे तीजे' इम कह्यो छे। ते भणी साधु साध्वीने जंत्रमंत्रादिक में टुणा पिण आया। तथा 'उत्तराध्ययन अध्ययन पांचवें' कुविद्या सब दोषने उपजावे अनंताकाल तक संसार में रुलावे इम कह्यो ते भणी जंत्रमंत्र टुणादिक कुविद्यामें दिसे छे ते

भणी साधु साध्वीने करना नहीं। विस्तार तो बडी हुंडी में छे॥ इति ११ बोल॥

अथ बारहवाँ बोल :—

साध्वीने हाट चहुटाने विषे रहना नहीं कई रहे छै तेहनो उत्तर-साध्वीने हाट चहुटाने विषे रहना कल्पे नहीं, साख सूत्र 'वृहत्कल्प उद्देशे पहले बोल १२, १३,। तथा साध्वीने पुरुष रहेता हुवे ते उपाश्रयमें रहना कल्पे नहीं,स्त्री रहेती जाती हों त्यां रहना कल्पे। साख सूत्र 'वृहत्कल्प उद्देशे पहेले बोल २९, ३०'। इम कह्यो। ते भणी साध्वीने हाट चहुटाने विषे उपाश्रये रहे वो नहीं। केई हाट उपर मालीया प्रमुख हुवे वहां पुरुषांरो प्रवेश घणो छै, आवण जावण घणो छै, मनुषारो समुह घणो रह्यां करेछै, नीचे हाट खुले छै, पगथीया बजारमें छै, रात्रि में मात्रा बडी नीति प्रमुख परठववाने आवे जब पुरुषां रो भेल संभेल हुवारो ठिकानो छै, एहवी जगामें साध्वी उतरे छै, उतरवारी थाप करेछे दोष श्रद्धे नहीं, भगवान तो सूत्रमें इम कहिं कह्यो नहीं, आपरे मनसुं थाप करे छै। तथा अलायदी जगा हुवे, पुरुषारो प्रवेश घणो हुवे नहीं, नीचेकी दुकान खुले नहीं, एहवी जगामें साध्वी उतरे तो दोष नहीं॥ इति १२ वाँ बोल॥

अथ तेरहवाँ बोल ;—

साधुने गृहस्थ रे घर मांहि बैठ कर स्त्री रहेती हुवे वहां धर्म-

कथा कहेनी नहीं। बोलचाल शिखावणा नहीं। केई सिखावे हैं तेहनो उत्तर—साधुसाध्वीने गृहस्थ रे घरमें जाकर खडा रहना १, वेसना २, निद्रा लेनी ३, चार आहार नो करणो ४, उचार ५, पासवणादिक परठना, सज्भाय करना इत्यादिक साधुने गृहस्थके घर जाकर करना नहीं। पिण इतना विशेष-रोगी, स्थीवर, तपस्वी, जोजरी देह, मूर्च्छा पामे इत्यादि कारण हो तो वेठना सोना सज्भाय करनी कल्पे। साखसूत्र 'बृहत्कल्प उद्देसे तीजे बोल इक्कीसमें'। तथा साधु साध्वीने गृहस्थरा घरने विषे वैठकर चारगाथा तथा पांच गाथा जुदा जुदा विस्तार करने कथा वार्त्ता गुणकीर्त्तन आदि बखान करना कल्पे नहीं। इतना विशेष-एक हेतुसे अधिक कहना, एक गाथासे अधिक कहना, एक प्रश्नसे अधिक कहना, एक श्लोकसे अधिक कहना कल्पे नहीं। पिण खडा रहकर एक हेतु, एक गाथा, एक प्रश्न, एक श्लोक कहना कल्पे। साख सूत्र 'बृहत्कल्प उद्देशे तीजे बोल २२में। तथा गृहस्थरे घरने विषे कारण विना वैठे तो अनाचार, साख सूत्र 'दशवैकालिक अध्ययन तीजे। आत्म संयमनी विराधना हुवे ते माटे गृहस्थरे घरने विषे वेसे नहीं, सुवे नहीं, संसार भमवानो हेतु जाणीने ग्रहस्थ रे घरने विपे वेसवो सुवो परीहरे। साख सूत्र 'सुयगडांगसूत्रस्कंध पहेले, अध्ययन नवमें गाथा २१ में'। गृहस्थरा घरने विपे साधु वैसे तो मिथ्यात्व नो फल पामे, ब्रह्मचर्यनो विणास हुवे, प्राणी नो वध हुवे, सजम नो विणास हुवे, भीखारीने अंतराय थाय, घररा धणीने क्रोध उपजे, नववाड भाजे,

स्त्रीने पिण शंका उपजे,कुशील वधवानो ठाम छै ते भणी गृहस्थरे घरे साधु बेसवो दूरथकी वरजे । पिण जरा पराभव्यो हुवे तपस्वी रोगी ए तीनो ने बेसवो कल्पे । साख सूत्र दशवैकालिक अध्ययन छठ्ठा गाथा ५७,५८,५६,६० में छै' इत्यादि सूत्रमें घणी ठोर साधुने गृहस्थरा घरने विषे बेसणो वरज्यो । ते भणी साधु साध्वीने गृहस्थरे घरने विषे बसने धर्मकथा वार्त्ता चरचा तथा बोल शिखावणा नहीं । बखाण प्रमुख देना नहीं । विस्तार तो बडी हुंडीमें छै ते जोय लेणो ॥ इति १३ बोल ॥

अथ १४ बोल ;—

साधुने गृहस्थरे घर मध्ये जायने मालीया प्रमुखरे विषे उतरवो नहीं केई उतरे छै तेहनो उत्तर—साधुने स्त्री रहेती हुवे ते उपाश्रये रहेवो न कल्पे । साधुने पुरुष रहेता हुवे ते उपाश्रय रहेवो कल्पे । साध्वीने पुरुष रहेता हुवे ते उपाश्रय रहेवो न कल्पे । साध्वीने स्त्री रहेती हुवे ते उपाश्रय रहेवो कल्पे । साख सूत्र 'वेदकल्प उद्देशे पहेले' । तथा साधुने गृहस्थरा घरने मध्य भागे जईने रहेवो न कल्पे । तथा साध्वीने गृहस्थना घरने मध्यभागे जईने रहवो कल्पे । साख सूत्र 'वेदकल्प उद्देशे पहेले' इम कह्यो छे । ते भणी साधुने गृहस्थरा घर मध्ये लुगाया रहेती हुवे ते घरमें मालियादिक में रहेणो नहीं । केई घरमें पिण रहे छे, रहवारी थाप करेछे दोष श्रद्धे नही । केई मालिया प्रमुखमें रहेवे पिण छे रहेवारी थाप पिण करेछे ॥ इति १४ वोल ॥

अथ १५ बोल :—

स्त्री बेठी हुवे ते जगा अन्तर्मुहूर्त्त टालणी, केई टालते नहीं है तेहनो उत्तर—'उत्तराध्ययनसूत्र अध्ययन १६ में'। स्त्री साथे एक आसन पीड पलंग बिछाणे उपर बैसे नहीं। तथा अर्थमें स्त्री बेठी हुवे ते जगा भी अंतर्मुहूर्त्त टालणी। केई अंतर्मुहूर्त्त टाले नहीं। अंतर्मुहूर्त्त जघन्य सभारी कहीने स्त्री बैठके उठे जब साधु जदका जद बंठे छे बेठवारी थाप पिण करेछे इमहीज साध्वी पुरुष बंठे जठे पिण बैठे छे बेठवारी थाप पिण करेछे बेठ वारे ठिकाने अंतर्मुहूर्त्त सभारे नहीं। अठे तो अंतर्मुहुर्त्त जघन्य एक घडीमें ठेरी संभवे। उत्कृष्टी दोय घडी में ठेरी संभवे छे। विस्तार तो बडी हुंडीमें छे ॥ १५ बोल ॥

अथ १६ बोल :—

ओसर व्याह प्रमुखरे वासते मिठाई आदि जो चीजां कीधी ते जान प्रमुख जीम्यां पहेली लावणी नहीं। तथा घणा लोक जीमे वहां गौचरी जावणो नहीं तेहनो उत्तर—जे दिशामें जीमणवार हो उससे पश्चिम दिशामें जावणो। इमहीज चार दिशामें जावणो। सुखडीने आण आई देतो थको गौचरी जाय इत्यादि घणो विस्तार छे। साख सूत्र—'आचारांग दूजे अध्ययन पहेले उद्देशे पहेले तथा घणा लोक जीमें तथा पांतने विषे जीमणवार बैठी वहां उभो रहेणो नहीं। साखसूत्र-उत्तराध्ययन अध्ययन पहेले गाथा ३२ मो'। तथा पावणा जीम्यां पहेला तथा पावणारी परे नोतर्या

तेहना भात जीम्यां पहेला लेवे, लेवताने अनुमोदे तो चौमासी प्रायच्छित पामे, साख सूत्र 'निशीथ उद्देशे नवमें' इत्यादि अनेक सूत्रोंमें भगवाने वरज्यो छे। तिणसुं जान प्रमुखरे वास्ते मीठाई आदि चीज कीधी, तथा अट्ठाई रे पारणे सीरो प्रमुख कीधो, तथा वनोरा आदिरे अर्थे सीरादिक कीधा ते जीम्या पहेला लावणा नहीं। केई लावे छे, लाववारी थाप पिण करे छे दोष श्रद्धे नहीं इम पिण कहेछे पानामें नाम उतारे जद तो जावां नही। पिण भगवाने तो सूत्रमें कठे इम कह्यो नहीं एतो आपरे मनरी थाप छे ॥ इति १६ बोल ॥

अथ १७ बोल :—

औषध भैषज तमाखु ओसो प्रमुख वासी राखना नहीं, केई-रखते हैं तेहनो उत्तर-पहिले दिन वहेर्यो ते दूजे दिन भोगवे तो चौमासी प्रायच्छित आवे। साख-सूत्र 'निसीथ उद्देशे ११।' तथा वासी राखे तो अणाचारी कह्यां। साख-'दशवैकालिक सूत्र अध्ययन तीजे।' तथा 'निशीथ सूत्र उद्देशे ११' मोहादिकरे जोगसु वासी राखे पिण भोगवणी नहीं, इम अनेकसूत्रमें कह्यो छे, तिणसुं साधुने औषध भैषज आदि कांई स्थानकमें वासी राखना नहीं। दूजे दिन गृहस्थोरी आज्ञा लेई भोगवणा नहीं। केई गृहस्थरे घरसुं औषध भैषज गृहस्थरे घर हाट प्रमुखसुं लावे वधे सो स्थानक में मेले, पिछे गृहस्थने भूलावे पिछे गृहस्थरी आज्ञा लेईने भोगवे छे भोगवारी थाप करेछे विस्तार तो वड़ी हुंडीमें छै ॥ इति १७ बोल

अथ १८ बोल ;—

आहारादिक औषध भैषज सूई कतरणी प्रमुख साधुरा भावसुं साहमा आणी स्थानक प्रमुखमें देवे ते लेणा नहीं केई लेते है। तेहनो उत्तर-वस्त्र पात्रादिक आहारपाणी साहमो आण्यो लेवे तो आनाचारी कह्यां। साख-'दशवैकालिकसूत्र अध्ययन ३।' तथा आहार पाणी वस्त्रादिक साहमो आण्यो लेवे भोगवे तो सबलो दोष लागे। साख-'दशाश्रुतस्कंध सूत्र अध्ययन दूजे। तथा साहमो आण्यो वस्त्रादि लेवे तो चौमासिक प्रायछित आवे। साख 'निसीथसूत्र उद्देशे १८। तथा तीन बारणा उपरांत आण्यो आहार लेवे तो मासिक प्रायच्छित आवे। साख-निसीथसूत्र उद्देशे तीजे। तथा साहमो आण्यो आहार लेवे तो द्रव्यलिंगी यति कह्यां। साख-दशवैकालिकसूत्र अध्ययन छट्ठे। इत्यादि ठाम ठाम सूत्रमें साधुने साहमो आण्यो आहारादिक लेणो वरज्यो छे। केई गृहस्थ औररे घरे पात्रादिक देखीने आपरे घरे आणीने वहेरावे, तथा वस्त्र औषध भैषज आदि चीज हाट थी घरे साधुरे अर्थे आणी वहेरावे तथा केई बाईयां साधारे ठिकाने आवे जब घडी प्रमुखमें खाटो सुपारी औषध भैषज मिश्री विदाम सूई कतरणी प्रमुख लावे छै सामाइक प्रमुखमें तो खावे पिण नहीं तो क्युं लावे! तेतो साधुरी लहेरसु (भावसु) लावता दिसे छै। साधुरे वास्ते घडी प्रमुखमें राखता दीसे छे ते लेणा नहीं केई साधु साध्वी लेवे छे॥ इति १८ बोल॥

अथ १६ बोल :-

बाजोटादिक वस्त्र पात्र औषध भैषज आदि गृहस्थरे घरसु' लावे ते पाछा थानकमें सोंपणा नहीं केई सूंपेछें है तेहनो उत्तर-गृहस्थ हाथे कारज (काम) करावे नहीं, साख-'दशवैकालिक सूत्र अध्ययन सातमें गाथा ४७।' तथा गृहस्थ अगे भार उपडावे तो चौमासी प्रायच्छित आवे। साख-'निसीथ सूत्र उद्देशे १२ में' इत्यादिक अनेक सूत्रमे साधुने गृहस्थकनासु' काम करावणा वरज्या छे। केई साधुसाध्वी औषध भैषज सुई कतरणी वस्त्र आदि अनेक पडिहारी वस्तु लावे ते पाछी गृहस्थ रे हाट प्रमुख में देवाने जावे नहीं, आप रहे जठे स्थानकमें सोंपे ते गृहस्थ आपरे घरे ले जावे ते साधुरी खेचल मेटी ते भणी गृहस्थ कनासु' काम करायो कहिजे॥ इति १६ बोल॥

अथ २० बोल :--

साधु रे ठिकाने जायने आर्याने १४ बोल करना नहीं। इमहीज साधव्यारे ठिकाने साधुने जायने करना नहीं। कई करते है तेहनो उत्तर-वृहत्कल्पसूत्र उद्देशे तीजे।' उभो रहेवो १, बेसवो २ सुयवो ३, निद्रा करवी ४, विशेष उंघवो ५, चार आहार करवो ६, बडीनीति ७, गलानो कफ ८, नाकनो मेल ६, लघुनीति १०, सज्झायरो करणो ११, ध्यान ध्यायवो १२, काउसग्ग करवो १३, पडिमा काउस्सग्ग करवो १४, एतला बाना साधुरे ठिकाने साधु मुंढ़े आगे साध्वीयांने करना नहीं। इमहीज साध्वीयांरे ठिकाने

साध्वीयांरे मुंढे आगे साधुने करना नहीं इम कह्यो छे। कठेइ अर्थमें विकटवेला ते सूर्य आथम्यां पीछे साधुरे ठिकाने साध्वीयांने १४ बोल करना नहीं इम कह्यो। केई विकट वेला पिण साध्वीयां साधारे ठिकाने उभी रहे छे, उभी रहेवारी थाप पिण करे छे। तथा व्यवहारसूत्र उद्देशे सातमें सज्झाय करणी, तथा समवायांगमें १२ संभोग कह्यां, तिणमें आहारादिक नो लेणो देणो कह्यो, वंदणा करणी कही, तथा व्यवहारसूत्र उद्देशे ७ में साधु साध्वीने दीक्षा देवे, गौचरी प्रमुख विधि शिखावे। इमहीज साध्वी साधाने दीक्षा देवे गौचरी प्रमुखरो विधि शिखावे, इत्यादि सूत्रमें करणा कह्यां तिण प्रमाणे करे तो दोष नहीं ऐसे केई कहेवे छे। पिण सूत्रमें तो वरज्यां छे ते साधांरे ठिकाने साधारे मुंढे आगे करना नहीं। केई साधांरे ठिकाणे साधारे मुंहढे आगे दिन उगासु' लेईने दिन आथमे जठा-ताई साधव्यां रहेषो करे छे, आहारादिक करवो करे केई साधव्यां सुवे पिण छे, लघुनीति बडीनीति पिण करे ते किम करना। डाह्या होय ते विचार जोवो ॥ इति २० बोल ॥

अथ २१ बोल ;--

कोई गृहस्थ कारण विशेषे दर्शन करवाने आवे नहीं तो तेहने दर्शन देवाने जावणो नहीं, और उपकार हुवे तो जावणो, केई ऐसेही जाते है तेहनो उत्तर—जेणे कुले रूडो आहारादिक मिले तेणे कुल जे कोई रसग्रहधी छतो जाय जायने धर्म कहे ते गुणवन्त साधुने

सो में अंश नहीं, एतावता लाख क्रोडमें भाग आवे नहीं, साख-सूयगडांगसूत्र स्कंध पहेला अध्ययन सातमें गाथा २४।' केई साधु साध्वी बडी बाईयां तथा मोटका भायांरे घरे वियोग हुवे तथा शरीरमें कारण विशेष हुवे जद दर्शन देवाने रोज मिति घणां दिन तांई जावे छै जाय जायने धर्मकथा, चरचा वार्त्ता, वखाण वाणी ढाल प्रमुख सीखावे सुणावे छै, पिण सगलारे जावे नहीं, आछो आहारादिक वहेरावे तिणरे घरे विशेष जाय जायने धर्म कहे छै तथा उपगार जाणे तो भगवान जायने धर्म कहे, साखसूत्र-'सूयगडांग सूत्र स्कंध दूजा अध्ययन छट्ठा गाथा १७।' तथा भगवंत गौतम ने कह्यो महारो अंतेवासी महासतक श्रावक संथारामें रेवती स्त्री ने कठोर बचन कह्यां ते कल्पे नहीं, तूं जायने कहे, जब गौतमजी आयने सर्व संबन्ध कहीने प्रायच्छित देईने सुद्ध कियो, साख सूत्र 'उपासग दशांग सूत्र अध्ययन आठमें।' तथा आणंद श्रावक संथारो संलेषणा कीधी इम सांभलीने गौतमजी मनमें इम इच्छा उपजी आणंदने देखुं। गौतमजी आणंदरे घरे गया। साख सूत्र-'उपासगदशासूत्र अध्ययन पहेले' अथ अठे भगवान गौतमने महासतक कने भेजा ते शुद्ध हुतो जाणने। पिण किणही बाईयां भाईयांरी कहेणेसु दर्शन देवाने भेजा नहीं। तथा गौतमजी आणंद कने गया ते भाईयां बाईयांरी कहेणासु दर्शन देवाने गया नहीं आपरे मनसु देखवाने गया छै। ते भणी दर्शन देवाने तो जावणो नहीं, संथारो प्रमुख करतो हुवे तो जायने करावे ॥ इति २१ बोल ॥

अथ २२ बोल ;--

साधु ने गृहस्थरे घरे गौचरी गया जद तो आहारादिक असुजता छे खीरा प्रमुख सचित लागती हुवे तो, ते चीज पछे दुजी वार तीजी वार जायने लावणी नहीं। केई लाते है तेहनो उत्तर-साधु गया पहेली गृहस्थरे काजे उतर्या चावल, गया पछै उतरी दाल, चावल लेणा कल्पे, दाल लेणी कल्पे नहीं। इमहीज साधु गया पहेला उतरी दाल गया पिछे उतर्या चावल, तो दाल लेणी कल्पे, चावल लेणा नहीं कल्पे। पहेला दोनु उतर्या तो दोनुंइ लेणा कल्पे। दोनुंइ गया पिछे उतर्या तो दोनुइ कल्पे नहीं। साख-'व्यवहारसूत्र उद्देशे छठ्ठे' कह्यो। ते भणी साधु गौचरी गया जद तो आहारपाणी असुजतो पड्यो छे खीरा प्रमुख सचित लागे छे तो ते वस्तु फेर दूजी वार तीजी वार जायने लावणी नहीं ॥ इति २२ बोल ॥

अथ २३ बोल;--

आखो थान राखणो नहीं, पछेवडी प्रमुखना मान जुदा जुदा करने राखना, केई आखा थान रखते है तेहनो उत्तर—न कल्पे साधु ने आखो थान राखवो। पछेवडी प्रमुखना मान जुदा जुदा करने राखणा कल्पे, साख सूत्र-वेदकल्पसूत्र उद्देशे तीजे बोल ६—१०।' तथा अभेदाणो अखंड वस्तु राखे राखताने भलो जाणे तो मासिक प्रायच्छित आवे साख सूत्र—निसीथ सूत्र उद्देशे दूजे कह्यो। ते भणी आखो थान राखणो नहीं, पछेवडी

प्रमुखरा मान जुदा जुदा करने राखणा । केई कलावुत प्रमुखरी धारी फाड़ीने आखो थान राखे छे, राखवारी थाप पिण करे छे, पिण धारी फाड्यां थान भेदाणो नहीं दोय चार टुकड़ा करे जद भेदाणो कहीजे डाह्यो होय ते विचार जुवो।। इति २३ बोल ॥

अथ २४ बोल ;--

साधांरे ठिकाणे आयने कहे काले अट्ठाई प्रमुखरो पारणो छै आप पधारजो इम नुतो देवे तो जावणो नहीं। तेहनो उत्तर-पांच पदारी वंदणामें नुतीया जावे नहीं, तेडिया जीमे नहीं, इम कह्यो। तथा भमरारी परे-जिम भमरो फूलने विषे जाय, तिम साधु गृहस्थरा घरने विषे जाय साख सूत्र-'दशवैकालिकसूत्र अध्ययन पहेला।' केई गृहस्थ साधारे ठिकाने आयने विनति करे काले अट्ठाई प्रमुखरो पारणो छे, तथा जवाई प्रमुखरे वास्ते सीरो आदि चीज करसां सो आप काले मोडा पधारजो। इम नुतो दीया जावणो नहीं, केई जावे छे जावारी थाप पिण करे छे ॥ इति २४ बोल ॥

अथ २५ बोल ;-

सागी सागो त्याग वार वार करावणो नहीं, केई वार वार कराते हैं तेहनो उत्तर-साधुपणो एक वार पचक्खणो चाल्यो छे, साख-दसवैकालिकसूत्र। तथा वार वार त्याग करे भांगे तो सबलो दोष लागे, साख—दशाश्रुतस्कंध सूत्र अध्ययन तीजे।' वार वार पचखाण भांजे तो चौमासी प्रायच्छित आवे साख-'नि

सीथसूत्र उद्देशे १२ में।' अथ हाजरीमें सदाई त्याग कर करने भाजे तिणरा प्रायच्छितरो कांई कहेणो। तथा ठाणांगसूत्र ठाणं १० में प्रायच्छित दश कह्या छे। तथा निसीथसूत्रमें अनेक प्राय-च्छित चाल्या छे, पिण त्यागतो पहेला कीयो तेहीज छै, दोष लागे नेहनो प्रायच्छित देवे ते भणी सागी सागी त्याग रोजमिति दिन दिन प्रत्ये करावणा नहीं। केई सागी सागी त्याग दिनप्रत्ये हाजरीमें करावे छै, पानामें अक्षर मंडावे छै। भीखू भारीमल ऋषिरायरी जीतरी मर्यादा सब कबुल छै, खोलीमे सास रहे जठे ताई, लोपवारा त्याग छै। पिण किणहीने सूत्रके न्याय कोई बोल खोटो भासे ते किम मानसी। छद्मस्थ तो अजाण पणे कोई बोल खोटो पिण थापदेवे, ते सुत्र वांचता ग्राज (निगह) आय जावे जद छोड देवे पिण मतरी टेक राखणी नहीं, तिणसुं छदमस्थरी बाधी मर्यादा तो चोखी जाणे जीतेतो राखणी, खोटो जाणे तो छोड देवे तो त्याग भांगे नहीं। घणो विस्तार तो बडी हुंडीमें छै तिणमें देख लेणो॥ इति २५ बोल॥

अथ २६ बोल :—

साध्वीने सुजती जायगा मिलता थकां असुजति लेणी नहीं। नथा साधाने देखने तालादिक खुलायने ओर जायगामें साध्वीने उतरणो नहीं केई उतरते हैं तेहनो उत्तर—उपासरो चार आहार वस्त्र पात्रा एव चार वाना अकल्पनीक वरजे। कल्पनीक लेवे, साखसूत्र-दशवैकालिकसूत्र अध्ययन छट्ठा गाथा ४८ मी।' तथा

अकल्पनीक लेवे तिणने चोर कह्या साख सूत्र-'आचारांग सूत्र स्कंध पहेला अध्ययन।' ते कोई साध्वीयाने सूजती छती जायगा मिले तो पिण कीवाड खोली उतरे छे, उतरवारी थाप पिण करे छे, तथा आप उतरी ते जायगा साधाने देवे और जायगा तालो खोलायने उतरे उतरवारी थाप करे छे, तथा रातरा सूवे जद तो जडवो कह्यो तिण रीते जडे तो अटकाव नहीं पिण दिन रात जडणो खोलणो नहीं ॥ इति २६ बोल ॥

अथ २७ बोल ;—

वास प्रमुखमें परठावणीयो आहार करे जद पाधरो वास नही कहणो कई कहते हैं तेहनो उत्तर—साधु वास करे जद तिणमें पांच आगार कह्या छे-अजाणपणेथी भांगे नहीं १, आफइ मुखमें पड़े तो भांगे नहीं २, मोटी निर्जरा जाणे तो पच्चखाण पडे तो भागे नहीं ३, परठावणिया आहार करेतो भांगे नहीं ४, रोगादिक उपजे मरणांत कष्ट उपजे औषधादिक लेवे तो भांगे नही ५, साख सूत्र-'आवश्यक सूत्र अध्ययन छट्ठा।' ए पांच आगार छे तिणमें अजाण पणे थी आफइ मुख मांहे पडे ते साधुने खबर नहीं, तिण पाधरोवास कहणो, पिण उपरला तीन आगार मे तो जाणने आहार करे तिणसुं पाधरो वास नहीं कहणो। केई पाधरो वास कहे छे कहवारी थाप पिण करे छे ॥ इति २७ बोल ॥

अथ २८ बोल ;—

गृहस्थरे माथे हाथ देणो नहीं, खुंवो हाथ प्रमुख पकडणा नही

केई हाथ प्रमुख पकडते हैं तेहनो उत्तर-गृहस्थरे माथे हाथ प्रमुखसुं ढंके ढकताने भलो जाणे तो चौमासी प्रायच्छित्त आवे साख सूत्र -'निसीथ सूत्र उद्देशे ११ ।' तथा सामायिकमें आत्मा श्रावक नी अधिकरण ही साख सूत्र-भगवती शतक सातमे उद्देशे १० में।' केई गृहस्थरे माथे हाथ देवे छै खुंवो प्रमुख करे छे। केई गृहस्थरे माथे तो हाथ देवे नहीं, हाथ देणो पिण नहीं इम कहे छे, केई गृहस्थरो खुंवो हाथ प्रमुख पकडे छैं, हाथ पकडने सुणो सुणो इम पिण कहे छे। माथे हाथ दियां चौमासी प्रायच्छित आवे, तो खुंवो प्रमुख पकड्यां प्रायच्छित किम नहीं आवे ? माथे हाथ दियां संभोग लागे तो खुंवो प्रमुख पकड्या संभोग किम नही लागे ? गृहस्थरो शरीर सर्व अधिकरण छै ॥ इति २८ बोल ॥

अथ २९ बोल ;--

पहेले पोहरमें वहेर्यो औषधादिक ते छेहले पोहरमें भोगवणो नहीं केई भोगवते हैं तेहनो उत्तर—न कल्पे साधु साध्वीने पहेला पोहरनों वहेर्यो छेहले पोहर भोगववो, पिण गाढा गाढे कारण भोगवो कल्पे। तथा आलेपन औषध न कल्पे पहेले पोहरनो छे-हले पोहर शरीरे चोपडवो। पिण गाढागाढे कारणे कल्पे चोपड़वो। साख सूत्र-'वेदकल्प सूत्र उद्देशे पांचमें बोल ४७, ४८, ४९।' तथा 'निसीथ सूत्र उद्देशे बारमें।' पहेले पोहर वहेर्यो छेहले पोहर भोगवे भोगवताने भलो जाणे तो चौमासी प्रायच्छित पामे इम कह्यो। ते भणी आहारपाणी औषध भैषज ओसो तमाकु आदि

पहेले पोहररो वेहयो छेहले पोहरमें भोगवणो नहीं, लेप पिण नहीं करणो। पिण गाढा गाढे कारणे भोगवे तो दोष नहीं। केई गृहस्थरी आज्ञा लेई भोगवे छे, साधुने कने रहे जीतरे साधुरी चीज छे, साधु जापता करे छे, गृहस्थरी चीजरो साधुने जाबतो करणो कल्पे नहीं, तिणसुं साधुरी चीजरी गृहस्थीरी आज्ञा चले नहीं। भगवान तो सूत्रमें गाढा गाढा कारणे भोगवो कह्यो, पिण गृहस्थरी आज्ञा लेई भोगवणो तो सूत्रमें कठेई कही नहीं। तथा औषध भैषज आदि पडिहारी चीज वधे सो गृहस्थने सोंप देनी, सोंप्या पिछै गृहस्थरी छै, साधुरे चाहीजेतो गृहस्थ कनासुं जांच लेणी, पिण थानके आज्ञा लेईने भोगवणी नहीं ॥इति २९ बोल॥

अथ ३० बोल ;—

दो कोश उपरांत आहार पाणी औषध भैषज ओसो तमाकु ले जाय भोगवणा नहीं कई भोगवे हैं तेहनो उत्तर—दो कोश उपरांत आहार ले जावणा नहीं, साखसूत्र-'वेदकल्प सूत्र उदेशे चोथे।' तथा अर्ध जोजन उपरांत ले जाय भोगवे तो चौमासी प्रायच्छित पामे। साख सूत्र-'निसीथ सूत्र उदेशे बारमें।' कई दो कोश उपरांत औषध भेषज तमाकु आदि ले जावे छे गृहस्थरी आज्ञा लेई भोगवे छे ॥ इति ३० बोल ॥

अथ ३१ बोल—

सात आठ वरसरा ने साधुपणो देणो नहीं केई देते हैं तेहनो —आठ वरस उणा जनम्याने दिक्षा देणी न कल्पे, आठ वरस

जनम्याने थया तेहने दिक्षा देणी कल्पे। साख सूत्र-'व्यवहारसूत्र उद्देशे दशमें बोल १८, १६, में।' अठे जनम्या पीछे आठ बरस थया नवमो वरस लागा पीछे साधुपणो देणो। पिण पहिला साधुपणो देणो नहीं। केई गर्भरा नवमास जाजेरा गिणने सात वरस जाजेरा जनम्यां ने दीक्षा देवे छे देवारी थाप पिण करे छे। भगवान तो सूत्रमें कठेई कह्यो दीसे नहीं। सूत्रमें तो जनम्या पीछे वधाइ दीवी, जन्म महोच्छव चाल्या छे, पिण गर्भमें उपजे तिणने जनम्या नहीं कह्यां। हिवडां कोई पूछै थारो कदरो जन्म छै, जद कहै फलाणे मासरो फलाणी तिथिरो जन्म छै, पिण गर्भमें उपन्यो तेहने जनम्यो कह्यो नहीं, केई आपरा मनसु' गर्भमें उपनो तेहने जनम्यो ठहरावने नवमास जाजेरा गर्भरा जाणने सात वरस जाजेरा जनम्याने दीक्षा देवे छै, ते प्रत्यक्ष विरूद्ध दीसे छै। तथा प्रवचनसु' विपरीत प्ररूपे तिणने भगवान निन्हव कह्या। सूत्र 'उववाइ' मध्ये ॥ इति ३१ बोल ॥

अथ बतीसमा बोल ;—

सावद्य आमना करनी नहीं केई करते हैं तेहनो उत्तर-गृहस्थने कहे बेस, इहां आव, कारज कर, सुय, उभो रहे, जाय इहांथी, इम बोले नहीं। साख सूत्र-'दशवैकालिकसूत्र अध्ययन सातमें गाथा ४७।' अथ केई गृहस्थरे आवण जावणरो पिण कहे छै, साधु कने आदमी रहे छै त्याने आमना करने साधव्यां साथे मेले छै, आमना करने गाम परगाम साधु साधव्यांने समाचार

पिण कहवावे छे। पूजजी दीसा जावे जद लाठी प्रमुख लेई आगे चाले छै, श्रीपूज्य रे छरीदार आगे चाले तिम चाले छै। कदे साथे नहीं आवे जद ओलंभो पिण देवे छै। तथा सानी कर गृहस्थने बुलावे पिण छै। कई आमना करने कागद पिण लिखावे छै, केई आदम्याने आमना करने द्रव्य पिण दरावे छै, पांचमो महाव्रत भागो कहीये॥ इति ३२ बोल॥

अथ ३३ बोल ;—

साधु रे भूत प्रमुख लागे तो कूटा पीटो करणो नही। केई कूटा पीटो करते है तेहनो उत्तार-जक्ष प्रवेशकी साध्वीने साधु ग्रहे तो आज्ञा अतिक्रमे नहीं। तथा उनमाद पाम्या वायरे जोरे साध्वीने साधु ग्रहे साख-सूत्र वेदकल्प उद्देशो छट्ठे बोल ११, १२'। ते भणी साधु साध्वीने भूत प्रमुख लाग्या तथा वायरे जोरे उपद्रव्य करे नाचे कुदे भागे जद पकड लेणो, डोरी प्रमुखसुं बांधी राखे पिण वस पुगे जीते जावा देणो नही। केई साधु नाम धरायने कूटा पीटो करे छै, साधुने कोई मारे कूटे तो पिण पाछो मारे कूटे नहीं। शास्त्र में घणी ठोर कह्यो छे। बाईस परिसहमे वध परिसह है ते जीतनो कह्यो॥ इति ३३ बोल॥

अथ ३४ बोल—

थारे रोगादिक मिट जावे तो तथा भरतार प्रमुख प्रदेशसुं राजी खुसी आय जावे तो पूजजीरा दर्शन करना, इतरा दिन सेवा करणी एहवो बंधो करो। उपदेश देईने बंधा करावणा नहीं,

तेहनो उत्तर—गृहस्थरी शाता पूछै तो अणाचारी कह्या, साख सूत्र दशवैकालिक अध्ययन तीजा ।' अथ केई तो गृहस्थरी शाता पूछै छै । वलि शाता पूछनी तो जिहांई रही, गृहस्थरा शरीर री शाता वछनी पिण नहीं । थारा शरीर रो रोगादिक मिट जाय तो पूजजीरा दर्शन करो, पूजजीरी आसता राखो, इम कहे ते गृहस्थरा शरीर री शाता वंछी कहीजे । तथा भर्त्तार पुत्रादिक रो रोग मिट जावे, तथा प्रदेशसु ं राजीखुसी आय जावे तो पूज-जीरा दर्शन रो वंधो करो, इम कहे तो गृहस्थरा शरीर री शाता वंछी कहिजे । संसार की शीख देवे तो पांचमो महाव्रत भांगो कहिजे । संसारकी शीख तो धनरी शरीर री वेटा प्रमुख सर्व परिग्रहमें छै । तथा गृहस्थरो शरीर छकायरो शास्त्रमें कह्यो छे । केई संसारकी शीख पिण देवे छे । केई गृहस्थरा शरीरकी शाता हुवारो उपाय पिण वतावे छै ॥ इति ३४ बोल ॥

अथ ३५ बोल ;—

गृहस्थने वधो कराय फलाणो गाम ताइ पुंहचावो, इम बन्धो करायने साथ ले जावणा नहीं कई ईस माफक वन्धो कराइले जाते है तेहनो आहार पाणी पिण लेना नहीं । तेहनो उत्तर—सथवारादिक अणमिल्या साधुलिंग फेरै । साखसूत्र—व्यवहार उदेशे पहेले बोल ३२ में ।' अथ अठे सथवारादिक अणमिल्या भेष पलटे पिण वन्धा कराय गृहस्थने साथे लीया चाल्या नही । तथा वलभद्रमुनि आदि वनमें रह्या छे पिण गृहस्थने वनमें सेश

करो इम उपदेश दियो चाल्यो नहीं, तथा सूत्रमें कठेई उपदेश तथा बंधा कराई, विहारमें साथे लीया चाल्या नहीं। केई साधु साध्वी उपदेश देई तथा बन्धा कराई फलां गाम तांई पुंहचावो इम गृहस्थने भाया बायाने साथे ले जावे छे, आहार पाणी वहेरता जावे छे केई बाया तथा केई भाया कटोरदानादिक मिठाई प्रमुखसुं भर ले जावे छै, आगे ग्रामादिकमें जाय रसोई पिणकमें जाय रसोई पिण करे छै। ते साधारी लेहरसुं वेतो पिण करता दिसे छै। केई साधारी लहेरसुं मिठाई प्रमुख पिण वेतो ले जावता दिसे छे। केई बाया राखरो पाणी घडामें भरने करे छै, ते पिण साधु साध्वीयांरी लेहरसुं वे तो करता दीसे छै। साधु साधव्या मनमें पिण केई जाणे छे। ग्रामादिक छोटो साधु साधव्यां घणी छे पिण आहार पाणी री संकडाई तो पडती दीसे नहीं, बायां भाया साथे छे, इम जाणी घणो ठाणा साथे राखता दीसे छै॥ इति ३५ बोल॥

अथ ३६ बोल ;—

दोषीलो आहार पाणी लेणो नहीं, तथा शङ्का सहित आहार पाणो लेणो नहीं कई लेते है तेहनो उत्तर—साधु थई आधाकर्मी अन्नपाणी उपाश्रयादिक भोगवे तो सात कर्म ढीला बंध्या हुवे तो गाढा वन्ध वांधे, चीकणा वांधे, चारगति ससारमांहि परिभ्रमण करे, पोताना धर्मथी हेठो पडे छकायरी दया रहे नहीं साखसूत्र 'भगवती सूत्र शतक पहला, उद्देशा नवमा।' तथा आधाकर्मी

अन्नपाणी उपाश्रयादिक भागवे तो सबलो दोष लागे। साखसूत्र -'दशाश्रुतस्कध अध्ययन दूजा।' आधाकर्मी अन्नपाणी उपाश्रयादिक भोगवे तो चौमासी प्रायच्छित आवे, साखसूत्र—'निशीथ उद्देशा दशमा।' आधाकर्मी जे कहीये साधु रे अर्थे छकायरो आरंभ करी अन्नपाणी उपाश्रयादिक नीपजावे सहु दोष मांहि मोटो ए दोष आठ कर्म दृढ बन्ध करे। चार गति मांहि घणो काल भमे, जे यति अशुद्ध आहार भोगवे तेहने दीये दया रहै नहीं, अने सूत्र धर्म चारित्र धर्म नाशे; अने देणहार गृहस्थ सजम धन हरवाथी धाडवी सरीखो अल्प आयुष बांधे। तथा आधाकर्मी जे लीधे अधोगति जाय। तथा संजमथी हेठो करे ॥२॥ जे चारित्र आत्मनी घात करे ॥ ३ ॥ जे ज्ञानावरणादि कर्म आत्मा उपर चिणे ॥४॥ ते भणी ए आहार साधु न लेवे। अने उत्तम गृहस्थी नहीं देवे, साखसूत्र-'भगवती शतक। तथा साधु अर्थे आंधणमे अधिक ऊरे ते दोष, साखसूत्र 'दशवैकालिक अध्ययन पांचमा, उदेशा पहेला गाथा ५५॥' तथा मोल लीयो अन्नपाणी वस्त्र पात्रादिक भोगवे तो अणाचारी कह्यां, साखसूत्र-दशवैकालिक अध्ययन तीजा गाथा पहिली। तथा मोल लीधो आहारादिक भोगवे त्यांने द्रव्यलिंगी यति कह्यां साखसूत्र 'दशवैकालिक अध्ययन छट्ठा गाथा ४६।' तथा अन्नादिक कल्पनीक छै के अकल्पनीक छे तेहने विषे शंका उपजे तो एहवो अन्नादिक न कल्पे साखसूत्र—दशवैकालिक अध्ययन पांचमा उद्देशे पहिले गाथा ४४।' तथा पाणी त्रिहु प्रकारना छै सचित्त १ अचित्त २, मिश्र ३, तिहां साधुने सचित्त

अने मिश्र ए अजोग्य न कल्पे, एक अचित्त लेवो कल्पे छे ते अचित्त एक स्वभावे छे, बीजो बाहिर शस्त्रे करी व्यवहारनय छे, तिहां स्वभावे ते यद्यपि अतिशयज्ञानी जाणे तो पिण साधु ने लेवो व्यवहारे प्ररूप्यो नहीं जे शस्त्रे करी वर्णादिके फिर्यो निर्दोष एषणीय लेवो प्ररूप्यो साखसूत्र—'आचारांगसूत्र स्कंध पहेला अध्ययन पहेला उद्देशा तीजा।' अथ केई बायां भायां आज पूजजी पधारसी इम जाणी अधिको आहारादिक नीपजावता दीसे छे। तथा मिठाई प्रमुख पिण मोल मंगावता दीसे छै। केई बायां कांदा प्रमुखरी तरकारी पिण करती दीसे छै। तथा घणां साधु साध्वी जाणने अधिको आहार पाणी केई नीपजावता दीसे छे। केई बायां तथा भायां पाको पाणी तो एक दोय आदि पीवें, पाणी राखरो घडा मटक्यां मूंणा प्रमुख भर राखे छै, थोडी राख घाले जद्तो सचित्त रहे तो दीसे छे। कदा कोई घणी राख घाले वर्णगंध रस प्रमुख फिर जावे जद्तो अचित्त पिण होय जावे। भाया बायां एक दोय आदि पिवावारी पाणी मणाबंध करे ते साधारी लेहर लायने करता दीखे छै। केई कपडो कुसटो आदि साधारी लेहरसुं अधिको पिण मंगावता दीसे छै। तथा केई बायां बदाम मीश्री खाटो सुपारी प्रमुख घणी मंगावे छै, इतरी खाती तो दीसे नहीं, ते पिण साधारे वास्ते अधिक मंगावता दीसे छै। केई साधु पिण तथा साधव्यां पिण जाणता दीसे, ए आहार पाणी आदि बिदाम मीश्री खाटो प्रमुख अधिको साधारे वास्ते करे छै, तथा मोल बिदाम प्रमुख मंगावता दीसे छै, ने

जाण जाणने अशुद्ध वहरावे छै । केई साधु साधव्या जाण जाणने अशुद्ध आहार पाणी विदाम मीश्री खाटो आदि अनेक वस्तु वहरता दीसे छै, डाह्या होय ते विचार जोवो ॥ इति ३६ बोल ॥

अथ ३७ बोल;—

चोमासामें विहार करणो नहीं कई करते हैं तेहनो उत्तर—न कल्पे साधु साधव्यांने वरसाते विहार करवो । शेषे काले विहार करवो कल्पे साखसूत्र-वेदकल्प उद्देशे पहिले बोल ३६, ३७ ।' तथा पाउस (वर्षा) ऋतु लाग्यां पिछै विहार करे तो (वर्षाकाले विहार करे तो, चोमासी गुरु प्रायच्छित आवे । साखसूत्र-'निसीथसूत्र उद्देशे दशमें । केई कहे चौमासामें विहार करीने परगाम जाय तो दोष नहीं पिण पाछो आय जावणो रात्रिको रहणो नहीं; इसी प्ररूपणा करे छै । चौमासामें विहार करीने पांच तथा तीन चार कोश जायने पाछा आवे छे दोष गिणे नहीं । एक दिन चोमासामें विहार करीने परगाम जाय तो चौमासी प्रायच्छित आवे । चौमासामें घणी वार विहार करे, तथा विहार करवारी थाप पिण करे तिणरा प्रायच्छितरो कांई कहणो । तथा भगवान चौमासामें पांच कारण विहार करवो कल्पे-राजादिकरा भयथी १, दुर्भिक्षका भयथी २, कोई उपद्रव होय तो ३, उदकनो (पाणीनो) प्रवाह आवतो जाणी ४, कोई मोटो अनार्यसुं हणातो होयतो ५, । वली पाच कारणे विहार करवो कल्पे ज्ञानने अर्थे १ दर्शनने अर्थे २, चारित्रने अर्थ ३, आचार्य उपाध्याय संथारो कर्यो होय

तो ए कारणे कल्पे ४, आचार्य, उपाध्याय नी वैयावच्चने वास्ते ५, इत्यादिक भगवाने कह्यो तिण रीते चौमासामें विहार करने दूजे गाम नगर जाय रहे तो दोष नहीं, पिण विहार करने दूजे गाम नगर जायने चौमासामें पाछो आवणो, रात्रि रहणो नहीं इम तो किण ही सूत्रमें कह्यो दीसे नहीं ॥ इति ३७ बोल ॥

अथ ३८ बोल ;—

नाम लेईने आहार पाणी जायगा प्रमुखरा त्याग करावणा नहीं केई नाम लेकर त्याग कराते हैं तेहनो उत्तर-भगवानने वन्दना करीने आणंद श्रावक कहे आज पिछै अन्य तीर्थना साधु, तथा अन्यतीर्थना देव, तथा अन्यतीर्थ परिग्रहीत चैत्य ते साधुने वांदवा नहीं, नमस्कार करवो नहीं, पहिला तेहने बोलाववा नहीं, तेहने असनादिक चार आहार देवा नहीं। साखसूत्र—उपासग-दशांग अध्ययन पहिला। तथा इग्यारे श्रावकनी प्रतिमा ते समकीति निरमली पाले पांच परमेश्वर बिना अनेराने नमस्कार करे नही-साख सूत्र '—आवश्यक अध्ययन चोथा'। तथा दशाश्रुत-स्कन्ध उववाइ अंग आदि सूत्रमें पिण इग्यारे पडिमारो अधि-कार छे। अथ अठे आणंद आदि श्रावका आप भगवंत कह्यो छै पिण भगवान तो कह्यो नहीं, थे अन्य तीर्थाना साधाने बंदणा कीजो मती, आहार पाणी जायगा प्रमुख दीजो मती, तथा त्याग पिण कराया नहीं कठेइ सूत्रमें नाम लेई वंदणा आहार पाणी त्याग कराया चाल्या नहीं। केई आपरा श्रावक श्राविकाने महारे टोला

मांहिं सु न्यारा हुवे त्याने वंदणा करणी नही, एहवो कहीने त्याग करावे छै केई आहार पाणी जायगा प्रमुख पिण त्याग करावता दीसे छै। पिण अन्य तीर्थीरा साधाने वंदणा नमस्कर प्रमुखरा त्याग करावे नहीं। महारे मांहिसु न्यारा विचरे त्याने वदणा आहार पाणी रा त्याग करावे ते प्रत्यक्ष दोष दीसे छै। तथा सोल-ह सुपनामें कह्यो ते लिखीये छीये— ढाल-चंद गुपत राजा सुणो। सु स करसी साधु वांदवा, कर कर ऊंधी चरचारे। वैरीने शोक जिम वरतसी, घणा पाखंड्या रा परचारे॥ चन्द्र गुपत राजा सुणो॥१॥ चवक विकल होसी घणा, कुगुरु कहेसी तिम करसीरे। श्रावक विधि नहीं समजसी, परभवसुं नहीं डरसीरे॥ चंद गुपत राजा सुणो॥ २॥ इति ३८ बोल॥

अथ ३९ बोल;—

देवता देखे नहीं, कहे देवता देखुं तो महामोहणी कर्म बांधे। तथा देवतारा कहेणसुं असुद्ध आहारादिक लेणा नहीं, तथा पखा-ण पिण जोडणा नहीं, केइ जोडते है आहार पाणी पिण लेते हैं तेहनो उत्तर—देवता देखे तो नहीं कहे देवता देखुं छुं। इम कहे तो महा मोहणो कर्म बाधे साख सूत्र'—दशा श्रुतस्कंध अध्य-यन नवमा।' केईक साधव्यां कहे प्रत्यक्ष विमानिक देवता आवे छे वंदणा भाव करे छे। केई साधुजी पिण कहे छै भव पिण बतावै छै गोचरी जावे जद बाई प्रमुखरे बीजादिक लागता हुवे जद केई कहे देवताने पुछो, जद देवताने समरे जब कहे

देवता आयो छे। जद केई साधु पूछे इण वीजादिकमें जीव छेके नही जद कहे यह वीजादिकनो जीव चव गयो जव असुजती बाई प्रमुख गोणे नही। सूत्रमें देवता आगे प्रत्यक्ष भगवान रा तथा गणधर प्रमुख साधारा दर्शन करवाने आवता, पिण देवतारी कहणस्युं आहार पाणी लीयो चाल्यो नही, देवतारी प्रतीत पिण नही। आपरे व्यवहारमें शुद्ध जाणीने आहार पाणो लेणो। अशुद्ध जाणे तो छोड देणो। अवारु तो देवता आवे जिणरी ठीक पिण नही। और साधु साधव्याने तो दीसे नहीं। एक जणीने दीसे तेहनो कुण जाणो। ज्ञानी वदे ते प्रमाण छे। पिण अवारू विमाणिक देवता तो आवणा दुर्लभ छे॥ इति ३९ बोल॥

अथ ४० बोल '—

सिज्यातर नो आहार पाणी लेणो नहीं। तथा अच्छा आ— हारादिकरे वास्ते जायगा छोड़ने रात्रि का और जायगा सुवणो नहीं केई सोते है आहारादिक लेते है तेहनो उत्तर—एक गृहस्थरो घर होय तो ते घरनो आहार न लेणो, बे त्रण चार जणानो होय तो ते मांहि एक ना घर सज्यातर थापवो, और शेष घर नो आहार लेवो, साख सूत्र '—वेद कल्प उदेशे दूजे।' सज्यातरना नातीला जुदा जुदा चोका रूप घर छै, जूदा जूदा चूला छै, सज्यातरनो लूण पाणी भेलो हुवे तो न कल्पे तेहनो आहार पाणी। तथा तेल वेचवारी शाला छै अनेरो वेच तो हुवे

तेहने सज्यातरनो सीर हुवे तो न कल्पे। इमहीज गुलनी शाला इमहीज वजाजनी शाला, इमहीज सुखडी कंदोईनी शाला, इमहीज औषध्रनी ए सर्वमें सज्यातर नो सीर हुवे तो न कल्पे। साख सूत्र—व्यवहार उद्देशा नवमा में घणो अधि-कार छै। तथा सज्यातरनो पिंड ग्रहे तो, सज्यातर पिंड भोगवे तो सज्यातरनो घर जाण्या विना गोचरी उठे तो मासिक प्रायच्छित आवे साख सूत्र-निसीथ उदेशे दूजे। तथा खरचादि गोठादिक नो भांत उद्यानने बिषे ले जाता देखी भातनी आशाये आपणो थानक मूकी ते रात्रि अन्य थान-के रहे रहेताने भलो जाणे तो गुरु चौमासी प्रायच्छित आवे। साख सूत्र — निसीथ सूत्र उदेशे ११ बोल ८३। अथ केई आछो आहारादिक जाणीने रस लपटी थका सज्या-तरनो आहार भोगवे छै। आथण का ओर जायगा जाय सुवे छै, सुवारी थाप पिण करे छे, दोष श्रद्धे नहीं। भगवान तो सूत्रमें भातनी आशाए आपणो थानक मूकीने रात्रि अन्य स्थानक रहे तो चोमासी प्रायच्छित कह्यो। केई भातनी आशाए रात्रिका अन्य स्थानकमें रहवोइ करे छै। तथा रहवारी थाप पिण करे छै वारे प्रायच्छितरो कांई कहणो!। तथा जायगारा धणी हुवे तेहनी आज्ञा लेणी। तथा भुलावण हुवे तेहनी आज्ञा लेणी, गाममें धणी हुवे तो तेहनो सज्यातर टालणो। तेहनो घर पुछ पने चोकस करीने गोचरी उठणो। तथा धणी परगाम हुवे तो जायगारी भुलावण हुवे तेहनो घर सिज्यातर टालणो, पिण पर-

गाम नगरमें धणी हुवे तेहनो सज्यातर टालणो नहीं। तेहने घरे तो गौचरी किम जावे॥ घणा कोस छे तिणसु' तेहनो घर सज्यातर किम थापीजे। केई आज्ञा तो भुलावण हुवे तेहनी लेवे, सज्यातर धणी परगाम घणा कोस छै ते गाम प्रमुख जठे रहे छै तेहनो घर सज्यातर थापे छै। साधु रहे ते गाम नगरमें सज्यातर टल्यो किम कहिये। डाह्या होय ते विचार जोवो॥ इति ४० बोल॥

अथ ४१ बोल,—

हाथमें लाठी प्रमुख तथा ओघा पूंजणीरी डांडी आदि जन दीठ एकसु' अधिक राखनी नही। तथा रङ्ग स्याही डोरा प्रमुखरो घणो सञ्चो करणो नहीं, कई करे छै तेहनो उत्तर—व्यवहारसूत्र उद्देसे आठमें। साठ वरसरा थिवरने इग्यारे उपगरण ओर साधुसु' अधिक राखना कह्यां। तिणमें हाथमें छड़ी राखनी कही बूढ़ारी अपेक्षा, रोगी, गिलानी, गोडा प्रमुख दुःखे जदा ओर साधु पिण हाथमें छड़ी राखनी तथा प्रमाण गिणतीसु' उपधि अधिक राखे तो चौमासी डंड आवे, साख सूत्र—निसीथ उद्देशे १६ में। अथ केइ छड़ी ओघा प्रमुखरी डांडी घणी सारी अधिकी राख मेले छे तथा स्याही, हींगलु, हरताल प्रमुख रंग तथा डोरा सूत मेंण प्रमुख दश पन्नरह शेरसु' अधिक राखता दीसे छै। कोई पूछै जद कहै ए खालसेका है तथा राजरा छै, इम कहेता दिसे छ। साधुने पछेवडी प्रमुख सीवाने डोरा, लिखवाने स्याही प्रमुख, पात्रा रंगवाने हींगलु प्रमुख राखणा ते रीत

प्रमाणे राखणा । पिण संचो करने सेरां बंध रीत उपरांत राखणा नहीं । केई रीत उपरात सेराबंध संचो करने राखे छे, राखवारी थाप करे छे ॥ इति ४१ बोल ॥

अथ ४२ बोल ;—

मोरण बाजरीरो, जुवार रो, जव गहु रो लेणा नहीं । तथा केला, काकडी, खरबुजारी फाड़, मतिरारो पाणी लेणा नहीं केई लेते है तेहनो उत्तर-दशवैकालिक सूत्रमें शंका सहित आ-हारादिक लेणा नहीं इम कह्यो, तिणसुं बाजरी प्रमुखरो मोरण लेणा नहीं । बाजरी प्रमुखरा दाणा सगला सीकता दीसे नहीं । केई काचा पिण रहता दीसे छै । तथा काकडी खरबूजारी फाड, मतीरारो पाणी, ए पिण शंका सहित दीसे छै । तथा का-कडी खरबूजारी फाडरे खांड लगाया पिण सर्व जीव फरसता दीसे नहीं तिणसुं लेणा नहीं । तथा ओर पिण शंका सहित काई चीज लेणी नहीं ॥ इति ४२ बोल ॥

अथ ४३ बोल ;—

रूई रे गिद्दारा उपर बैठा हुवे ते उठने वेहरावे तो तेहना हाथ सुं लेणो नहीं, तथा गिद्दारा उपर चीज पड़ी हुवे ते पिण लेणी नहीं । तथा अगरखो रजाई प्रमुख ओढवाने हुवे तेहना हाथसुं वेहरणो नहीं । तथा पांच सात वरसरी हुवे रगी हूई हुवे तो दोष नहीं तेहनो उत्तर—भगवतीसूत्र मध्ये व्रीहि, गहुं जुवार धानरी उत्कृष्टे तीन वरस लगे सचीत योनि रहे पीछे

अजीव होवे, जीव पणो मीटे। तथा कोद्रव आदि धानरी कितरा-एकरी सात वरस पीछे अजीव हुवे, जीव पणो मीटे इम कह्यो। तिणसुं पांच सात बरस पीछे रुईमें काकरो रह जावे ते अजीव हूवे।तथा रुई रंग्या पीछे काकरो अजीव होय जावतो दीसे छे। तिणसुं वहरेतो दोष नहीं। पिण पांच सात वरसा पहेला रुईरा गिद्‍रा रजाई प्रमुखमें कांकरामे जीव रहेतो दीसे तिण-सु तेहने संगटे वहरणो नहीं॥ इति ४३ ॥

अथ ४४ बोल ;—

जालीरो कपडो रात्रिका तथा वर्षा छांट में ओढ़ने बारे जाव-णो नही केई ऐसां कपडा ओढ़ कर जाते हैं तेहनो उत्तर-भगवान सूत्रमें साधुने रात्रिका अछायामें रहणो नही। मा-त्रो प्रमुख परठवाने रात्रिका अछायामें जावे जद तथा दिनरा मेह वरसे जद दिसा जावणो पडे तो, तथा मात्रा प्रमुख परठ-वाने जावे जद सरीर ढकने जावणो उघाडे शरीर नही जावणो इम कह्यो। तिणसूं जालीमें शरीर उघाडो रहें छै पाधरी शरीर रे छांट लागती दीसेछै। शरीर रो फरस तातो घणो कह्यो छे। बल बलता तवा उपरे पाणी री बिंदु नाख्यां छणणांट करे, तिम शरीर रो फरस अपकायरे छे, तिण सूं जालीरो कपडो रात्रि-का तथा वर्षा छांट में ओढने बारे जावणो नही ॥इति ४४ बोल॥

अथ ४५ बोल ;

रग चालता वाता करणो नही। तथा मारग चालता खाव-

णो नहीं केई मारग चालतो वात करते हैं तेहनो उत्तर— मारग चालता वात करणी वरजी, सज्झाय पिण करणी नही। पांच इन्द्री नी विषय पिण चिंतवणी नहीं, साख सूत्र-उत्तराध्ययन अध्ययन २४ गाथा। अथ केई विहार करे गौचरी प्रमुख जाय, ठरले जाय जब मारग मांहि चालतां वातो करता जायवो करे छै। निरंतर चालता वाता करवो करे उपयोग राखे नही, त्यांने छकायनी वीराधना ना करणहार कहिये। मार्ग चालता केई सुपारी खाटो मिश्री आदि खायवो करे छै। मूहढे में चिवलवो करे त्याने पिण सजमरा विराधण हार भगवंतरी आज्ञारा लोपण हारा कहिये॥ इति ४५ बोल॥

अथ ४६ बोल ;—

सूत्रमें भगवान साधु ने कार्य करणा वरज्या तेहनी आचार्य ने थाप करणी नहीं केई करते है तेहनो उत्तर-पांच व्यवहार ते कहे छै-आगमः- ते केवली मन पर्याय अवधि चउद पूर्वधर नव पूर्व उपरांत ते एतला स्वयमेव प्रवत्तेता हुई तेहनी आज्ञामे आचार व्यवहार प्रायच्छित नी विधि प्रवर्त्ते ते आगम व्यवहार कहिये॥ १॥ सुए-आचारांगादिक नव पूर्व लगे प्रवत्तेता हुई तेहनी आज्ञाये प्रवर्त्ते ते सूत्र व्यवहार॥ २॥ आणा-ते गीतार्थनी आज्ञाये प्रवर्त्ते ते आज्ञा व्यवहार॥ ३॥ गीतार्थनी समीपे धार्यो हुई तिम प्रवर्त्ते ते धारण व्यवहार॥ ४॥ जीत-ते पूर्व आचार वर्त्ते जिम समाचरे॥५॥ आगम व्यहार हुवे तो आगम०

हार थापे ॥१॥ आगम व्यवहार न हुवे तो सूत्र व्यवहार थापे ॥२॥ सूत्र व्यवहार न हुवे तो आज्ञा व्यवहार थापे ॥ ३ ॥ आज्ञा व्यवहार न हुवे तो धारणा व्यवहार थापे ॥ ४ ॥ धारणा व्यवहार न हुवे तो केड़ाकेड़ चल्यो आवे ते जीत व्यवहार थापे ॥ ५ ॥ ए पांच व्यवहार प्रवर्त्तावतो थकों श्रमण निर्ग्रन्थ आज्ञानो आराधक हुवे साख सुत्र-व्यवहार उद्देशे दसमें। हिवडा आगम व्यवहार तो नहीं छै सूत्र व्यवहार प्रवर्त्ते छे ते भणी सूत्रमें साधुने कार्य करवा कह्यां छै ते कार्य करवा। पिण सूत्रमें कार्य करवा वरज्या ते करणा नहीं। केई सूत्रमें साधुने कार्य करवा वरज्या ते करवानी थाप करे छै, जीत व्यवहार नो नाम लेवे छै पिण सूत्रमें वरज्यो तेहनो जीत व्यवहार थापीजे नहीं। केई परंपरासुं सेवतो आवे पीछै सूत्रमें आय जावे ए बोल साधुने सेवणो नहीं इम जाणे तो ते बोल छोड़ देणो। पिण मतरी टेक राखणी नही। जीत व्यवहार तो आप आपरा मतमें सगलारे छै। परंपरासुं दान दयादिकरा बोल सेवता आवे छै। कितायकने दोष पिण भासे नहीं त्यारो साधु-पणो किम जावे। पिण सूत्र वरज्यो ते बोल जीत व्यवहार में थापीजे नहीं ॥ इति ४६ बोल ॥

मध्यस्थ बोलनी सार, हुंडी कीधी चूंपसु ।
ऋषि चतुरभुज उदार, आगम साख देई करी ॥ १ ॥
अजाण पणमें कोय विरुद्ध वचन आयो हुवे ।
मिच्छमि दुक्कड मोय, अनंत सिद्धारी साखसुं ॥ २ ॥
॥ इति मध्यस्थ बोलरी हुंडी समाप्तम् ॥

॥ ॐ ॥

रूढ़ियों से धर्म में हानि

प्रकाशक—

जवेरचन्द बोकड़िया

बाबू श्रीदुर्गाप्रसाद के प्रबन्ध से श्रीदुर्गा प्रेस, धानमंडी

अजमेर में छपकर प्रकाशित किया।

प्रति २०००

वीर सम्वत २४५६
विक्रम संवत १९८६

मूल्य)॥

॥ श्रीवीतरागायनमः ॥

मंगलाचरण ।

शिवमस्तु सर्व जगतः परहित निरता भवंतु भूतगुण ।
दोषा प्रयान्तु नाशं, सर्वत्र सुखी भवतु लोकः ॥

अर्थ-सर्व जगत् का कल्याण हो, प्राणिमात्र पराये हितमें लगे रहें, सब दोषों का नाश हो और सारे जगत् के जीव सुखी हों।

इस क्रान्तिकारी युग में जब कि तमाम जातियां अपनी २ बुरी रूढियों को हटाकर उन्नति करने का उपाय सोच रहे हैं, और उन्नति कर रहे हैं, ऐसे समय में हमारा जैनजाति अपनी पुराणी रूढियों के चक्कर में पड़कर और उनमें अन्ध विश्वास रख कर अपने को रसातल में लेजा रही है।

हमारा जैनधर्म बहुत विशाल और उदार है, लेकिन इसी धर्म का नाम लेकर कितनेक नामधारी

जैनियों ने अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये, अपनी भक्ति एवं मान बड़ाई के लिये, शास्त्रों का मनोकल्पित अर्थ करके भोली समाज को भ्रमजाल में डाल रक्खी है। इसका हम लोगों को पहिले विशेष अनुभव नहीं था, परन्तु जबसे स्वनाम धन्य श्रीपूज्य जवाहिरलालजी महाराज साहब का इस प्रान्त में पधारना हुआ, और उन्हों ने अपने सदुपदेशों द्वारा समाज को सच्चे धर्म का मार्ग बताना शुरू किया उस वख्त से हमको इन नामधारी जैनियों के पंथ में ऐसी २ खराब रूढियें मालूम होने लगी, कि जिनका जैन समाज में होना बिलकुल असंभव है।

श्रीपूज्यजी के उपदेशों का असर इस प्रान्त के लोगों पर इतना पड़ा कि कई एक भव्यआत्माओं ने तो सच्चा मार्ग धारण कर लिया, और उन नामधारी जैनियों के सिद्धान्तों को सुनकर जैनधर्म के प्रति घृणा रखने वाले इतर समाज वाले भी पूज्यश्री के व्याख्यानों को सुनकर पूज्य महाराज के भक्त बनगये।

लेकिन ये सब बातें उन विरोधी लोगों को कब बरदाश्त हो सकती थीं। वे लोग अपनी भक्ति मान

प्रतिष्ठा कम होती देखकर भोले लोगों को श्रीपूज्यजी का व्याख्यान सुनने तथा उनसे प्रश्नोत्तर करने का निषेध करने लगे। इतना ही नहीं बल्कि प्रतिज्ञाए तक कराने लगे, जिससे उनके रौब में आकर बेचारे भोले श्रावकों ने पूज्यजी के व्याख्यान में आना तक बन्द करदिया।

श्रीपूज्य महाराज साहब ने इनके श्रीपूज्यजी के साथ ज्ञानचर्चा करने के लिये बहुत चेष्टा की यहाँ तक कहला दीया के अगर शान्ति के साथ उनकी चर्चा करने की मरजी होतो हम उनके स्थानपर आकर ही, चर्चा करना चाहते है लेकिन वह लोग चर्चा कब करें अगर श्रीपूज्य महाराज से चर्चा करलें तो सब पोल ही खुल जावे और विचारे भोले श्रावक जो अन्ध विश्वास में पड़े हुए हैं असली सिद्धान्त को समझ जावें इसलिये उन्होंने चर्चा करने से साफ़ इनकार कर दिया।

उन नामधारी जैनियों की समाज के जो सिद्धान्त हैं, वे तो बिलकुल ही अजब हैं। उनका यहां पाठकों के सन्मुख, कुछ जिक्र करना ज़रूरी समझता हूं।

(१) जीव की रक्षा करना एकान्त पाप।

(२) किसी दुष्ट से मारे जाते हुए जीव को बचाना एकान्त पाप। मनुष्य तथा गायें लाय में जल रही हों, उनको बचाना तो दूर किनार रहा, बल्कि उस मकान का किवाड़ खोलना तथा उन मरते हुओं के प्रति दया लाना भी एकान्त पाप।

(३) किसी दुष्ट ने साधु को फांसी पर लटका रक्खा हो, अथवा साधु ऊपर से पड़ रहा हो तो उसकी फांसी काटना तथा ऊपर से पड़ते हुए को सम्हाल कर रखना एकान्त पाप।

(४) कोई भूख प्यास से मर रहा हो उसके प्रति अनुकम्पा करके रोटी देना अथवा अचित जल पिलाकर उसकी रक्षा करना एकान्त पाप।

(५)--इन्हीं नामधारी साधु, साध्वियों के सिवा अन्य किसी को किसी प्रकार का दान देना एकान्त पाप।

(६) साधु के सिवाय अन्य को असंयती कहते है और उनको दान देना, कुपात्रदान कहते हैं और उसको मांसादि सेवन, व्यसन कुशीलादिक, सेवन करने वाले की ही श्रेणी में गिनते हैं जैसे कुपात्रदान देने वाला, मांसादि सेवन करने-

वाला, व्यसनकुशलादिक सेवन करने वाला यह तीनोंही एक मार्ग के पथिक बतलाते हैं,

(७) माता पिता आदि गुरुजनों की सेवा भक्ति करना उनकी व्यावच करना उनको खिलाना पिलाना आदि सब कार्य करना एकान्त पाप बतलाते हैं,

(८) इग्यारहवी प्रतिमाधारी श्रावक को भी कुपात्र मानते हैं और उसको निर्दोषदान देना भी एकन्त पाप बतलाते हैं

(९) पोषद में पुंजना पड़िलेहन करना पुंजना मुखपती रखना एकन्त पाप बतलाते हैं और शास्त्रकार पोषद में पुंजन पड़िलेहन नहीं करेतो अतीचार बतलाते हैं सिर्फ साधु बन्दना को छोड़ कर बाकी के श्रावक के सब कार्य जैसे, चलना उठना बैठना खाना पीना आदि सबमें एकान्त पाप बतलाते हैं,

कहां तक लिखा जाय ऐसे २ अनोखे सिद्धान्त हैं कि जिनको सुनकर अकल हैरान हो जाती है। कोई दुष्ट किसी निरपराध को मार रहा है अगर उसको कह दो कि 'मत मार' तो उस मत मार कहने वाले को हिंसा लग गई । कहां तक कहा

जाय, जैन धर्म का नाम लेकर जैन धर्म को ऐसा कलङ्कित कर रक्खा है कि इनके सिद्धान्तों को सुन कर लोग घृणा करते हैं। इनके सिद्धान्त तो संक्षेप से बतौर नमूने के ऊपर कहे जा चुके। अब रही आचार और रूढियों की बातें, सो जिनके जैसे अजब सिद्धान्त हो, उनके आचार और रूढियां इसी ढङ्ग की हो, उस में तो कोई आश्चर्य नहीं, लेकिन उन रूढियों से बेचारी भोलीभाली समाज का कितना पतन हो रहा है, इसको देख कर दुःख हुए बिना नहीं रहता। कितनी एक रूढियां तथा आचार पाठकों के ज्ञानार्थ लिखदी जाती हैं–ये नामधारी साधु अपने को ब्रह्मचारी कहलाते हुए साध्वियों से आहार मंगवाते हैं। साध्वियें उनको जिमाती हैं, उनकी शय्या बिछाती है, उनकी पछेवड़ी, धोती की पलेवना करती है, और परस्पर में आहार पानी आदि वस्तु विना कारण लेते देते हैं। गर्ज कि शास्त्र में ब्रह्मचारी के लिये जिन २ बातों का विना कारण करना मनाह किया है उन सबको करते हैं। सूर्योदय से सूर्यास्त तक साधुवों के मकान पर विना कारण ही साध्वियों का जमघट लगा रहता है, गृहस्थ की

साक्षी नहीं होते हुए भी उनसे परस्पर वातचीत करते रहते है। यह तो हुई साध्वियों की बात, अब रह गई गृहस्थ सेठाणियाँ। जो खूब अच्छे गहणों कपड़ों से सज कर, साधु वन्दन, व्याख्यान श्रवण, तथा सेवा करने के लिये रात के ३-४-बजे से लेकर दिन भर और अगली रात के ९-१०-बजे तक जाती आती रहती हैं और इसी तरह श्रावक लोग साध्वियों के स्थान पर जाते हैं।

अपने को ब्रह्मचारी कहने वाले साधु, उनसे सेवा करवाते हैं, उनके सम्मुख बैठकर व्याख्यान देते हैं। दिन को ही नहीं वल्कि रात को भी ९-१०-बजे तक इसी तरह साधुओं के ठिकाने पर इन श्रीमती देवियों का जमघट बना रहता है।

उत्तराध्ययन सूत्र में, आचाराङ्ग सूत्र में ब्रह्मचारी को स्त्री संसर्ग वाले स्थानक में रहना सर्वथा वर्जित कहा है। अगर साधुके वन्दना आदि कार्य के लिये स्त्री विकाल में अथवा रात्रि में आवे तो उस मकान में रहना ब्रह्मचारी के लिय मनाह है। तथा निषिद्ध सूत्र में रात्रि के समय स्त्रियों की पुरषदा में साधु अगर अपरिमाण कथा कहे तो चोमासिक प्रायश्चित्त लिखा है। और अपरिमाण

कथा का अर्थ शास्त्र कारों ने किया है कि "आव-श्यकता पड़ने पर ३-४-५-प्रश्नों का उत्तर दे सकते है", । धर्म कथा कहना तो सर्वथा मना है लेकिन् सुने कौन ! इनको शास्त्रों से जरूरत क्या! इनके वचन ही शास्त्र समझे जाते हैं ।

अब पाठक स्वयं विचारें कि जिन ब्रह्मचारियों की यह दशा है, उनका ब्रह्मचर्य कैसे अखंड रह सकता है !

जिस समाज में इतनी अन्धभक्ति है कि शास्त्रीय प्रमाण देने पर भी कुछ नहीं सुनते उन के आहार का तो कहना ही क्या है । जिस रोज पांतरा होता है उस रोज उनके घरकी रसोई की सजावट देखें तो मालूम होगा कि अच्छे २ बाजार के हलवाई भी ऐसी सजावट नहीं कर सकते । जो घरमें सबसे श्रेष्ठ आहारादिक वस्तु होती है वही साधुजी को भक्तिपूर्वक दी जाती है ।

अब रही पानी की बात, सो पानी भी ऐसा निर्मल मिलता है कि गङ्गाजल भी उससे निर्मल शायद ही हो । वह भी गर्मियों के दिनों में दो दो दिन का वासी ठरा हुआ, थोड़ी राख मिलाई कि पक्का पानी हो गया । वह राख भी आरणे छाणों

क्यों कि जिसका स्पर्श बिलकुल ही कड़ा नहीं। दशवैकालिक सूत्र में मिश्र पानी पीना साधु के लिये बिलकुल मना है। उसकी पहचान किस तरह हो सकती है इसके लिये शास्त्रकारों ने बतलाया है कि "जिसका वर्ण, गंध, रस, स्पर्श बदल गया हो वही अचित समझा जाता है" अन्यथा नहीं, अब पाठक स्वयं विचार कर सकते हैं कि ऐसा निर्मल पानी जिसका वर्णादि स्पर्श कुछ भी नहीं पलटा है वह अचित किसतरह हो सकता है।

कपड़ा भी वाचपी और गिलास का नैनसुख तथा चौकड़ी की वढिया मलमल इनके रजिस्टर्ड ट्रेडमार्क है, क्योंकि उपरोक्त कपड़ों के बिना उन महात्माओं की सजावट नहीं होसक्ती।

ऐसा पौष्टिक आहार तथा निर्मल पानी और स्त्रियों का संसर्ग ब्रह्मचारी के लिये कहां तक ठीक है यह मैं नहीं कहना चाहता, पाठक स्वयं विचार लेवें। रातको तरुणी तथा तरुण विधवायें अकेली साधुओं के व्याख्यान का नाम लेकर घरसे जाती हैं और रास्ते में क्या क्या अनर्थ होते हैं यह तो परमात्मा ही जाने मैं इसका जिक्र करना नहीं चाहता।

इन रूढियों के कारण साधुओं का व्रत भंग होता है और उनको भागना पड़ता है। ऐसी २ घटनायें इस समाज में बहुत होती है लेकिन इन की अन्धभक्ति के कारण जहां तक होता है उनको प्रसिद्ध नहीं होने देते।

सुना है कि भादरा में भी ऐसी ही घटना हुई थी, जिसके कारण एक साधु को तो गच्छ से निकाल दिया, और दूसरा जो उस ही का सह-चारी था उसे शामिल रख लिया।

और अभी हाल ही में ऐसी एक घटना लाडणू में भी हुई है, जिससे एक पंडित साधु को भ्रष्ट होकर रात को ३ बजे भागना पड़ा। यह इस तरह रात को क्यों भागा यह तो प्रसिद्ध ही है मैं यहां पर इस विषय को ज्यादा लिखने में असमर्थ हूं क्योंकि मुझे शर्म आती है पाठक स्वयं विचार लें कि इस साधु के भागने से समाज में बहुत हलचल मच गई, यदि मामूली साधु होता तो कौन इतना विचार करता था परन्तु यह तो मुखिया श्रावकों का रिस्तेदार और मंत्री महाराज का प्राइवेट सेक्रे-टरी था, इससे सुबह होते ही साधुजी की खोज के लिये मोटरें और घोड़े दौड़ाये गये लेकिन कुछ

पता नहीं चला। लोगों का अनुमान था कि पैदल ४-५ कोश से ज्यादा क्या जा सकते हैं, लेकिन साधुजी तो बहुत हृष्टपुष्ट थे और चंचल भी बहुत थे, ऐसी दौड़ लगाई की डीडवाने से भी दूर पहुंच गये। इनका विचार शायद लूकागच्छ का श्रीपूज्य होने का था, क्योंकि वह गद्दी आजकल नागोर में खाली पड़ी हुई है और उसकी अधिकारिणी केवल सुराणा जाति ही हो सकती है।

अस्तु तीसरे रोज खोज करते करते पता लगा श्रावक लोग उनके पास गये, उनको बहुत कुछ कहा सुना और कहा कि-आप हमारे साथ चलिये हम लोग कोशिश करके किसी तरह आपको फिर दीक्षा दिलवादेंगे, यह सुनते ही साधुजी ने ऐसा मुँहतोड जबाब दिया कि उसको सुनकर बेचारे श्रावकजी हैरान हो गये, उन्होंने कहा कि पहले और साधुओंको वह खाशकर मंत्री को ही नई दीक्षा दिलाइये, फिर मुझसे बात कीजिये, मैं ऐसा वैसा नहीं हूं जो अकेला ही नई दीक्षा लेलूं, मुझे फिर वी जाने की जरूरत नहीं है। यह सुनकर वेचारे श्रावक अपनासा मुँह लेकर वापिस पूज्यजी के पास आये और सब हाल कह सुनाया। यह सुन

कर पूज्यश्री दुविधा में पड़ गये अगर इस तरह इसको शामिल लेवें तो जनता में विश्वास उठ जायगा और यदि उसको न लें तो वैसे खराबी होगी इत्यादि पसोपेश में पड़कर मुखिया श्रावक जी को तार द्वारा चूरू से बुलाया गया। और मन्त्री महाराज और मुखिया श्रावकजी के साथ सलाह परामर्श करके यह ठहराव ठहरा कि किसी तरह उसको ले आओ॥ पूज्यश्री से मंत्री महाराज ने कहा- कि अन्नदाता! इतना विचार क्यों करते हो, मैं वेचारे भोले भाले श्रावकों को ऐसा समझा दूंगा कि वे लोग सब उसे निर्दोषी कहने लगजायेंगे।

अब भक्त लोग दौड़े दौडे उसके पास गये और उसको बहुत समझा बुझाकर कोलकरार के साथ फिरसे लाडणू लाये हैं। देखें अब क्या चाल चली जाती है किसतरह सचको झूठ करते हैं! कैसे भोली समाजकी आंखों में धूल गेरते हैं! यह सब प्रगट हो ही जायगा। मगर याद रखिये झूठ कभी छिपाये नहीं छिप सकेगी, ज्यों ज्यों उसे छिपाने की चेष्टा की जायगी त्यों २ वह जोर से भभकेगी।

अगर ऐसी ही हालत रही तो शेष नतीजा बहुत बुरा होगा। आखिरकार मैं परमात्मा से प्रार्थना

करता हूं कि वह उनको सद्बुद्धि दे, जिससे अब भी चेत जावे और खोटी श्रद्धा और रूढियों को त्यागकर अपनी आत्मा का कल्याण करें।

लभन्ति विमला भोए, लभन्ति सुरसम्पदा॥
लभन्ति पुत्र मित्रंच, एको धम्मो न लब्भई॥

अर्थ–इस संसारमें लक्ष्मी मिल सकती है, इसके ज्यादह पुण्यके उदय से देवकी समृद्धि मिल सकती है परन्तु धर्म का मिलना अत्यन्त कठिन है:—

इसलिये धार्मिक ज्ञान चर्चा करने की बड़ी आवश्यकता है परन्तु दुःख के साथ कहना पड़ता है कि कोई भाई सौभाग्य वश ऊपर बताई रूढियों को धर्मशास्त्र से समझने के लिये कोशिस करता है, और वह समझकर कहता है कि रूढियां जैनशास्त्र से खिलाफ़ है, तो स्वार्थी धर्मगुरू उसको श्रद्धाहीन मिथ्यात्वी कह देते है और उस भव्य आत्मा को महावीर सिद्धान्त का विकाश होने से रोकते हैं।

यदि हमारे नवयुवक सभ्य भाई धर्म के सिद्धान्तों को समझने में पूरा प्रयत्न करेंगे तो बगैर सिद्धान्त की खोटी रूढियों को धर्म के नाम से पोल में चल रही है, जिनसे दया दान का नाश होकर जैन साहित्य में कलंक आता है ऐसे असूलों

को नष्ट करके भगवान महावीर के दया धर्म को विश्वव्यापी बनावेगा, इस प्रांत में पुस्तकों शास्त्र के विरुद्ध रचकर भोले लोगों को भ्रम में डाला, उन सिद्धान्तों में से नौ बातों का अवलोकन कराया है इन पुस्तकों में प्रथम मंगलाचरण की वासतक नहीं है और रूढ़ियों को मानने वाले मोहवश शुद्ध साधु वाकी प्राणी मात्रको कुपात्र की श्रेणी में रख कर मनमानी तृप्ती की है। इससे देश का समाज का हित नहीं है गिरती हुई समाज को सच्चा महा वीर धर्म समझने में सबका हित है। ॐ शांति शांति